University of Mysore

Oriental Library Publications
SANSKRIT SERIES No. 63

(मुहूर्तदर्शनम्)

विद्यामाध्वीयम्

विद्यामाधवविरचितम् विष्णु गर्मविराचित मुहूर्तदीपिकायुतम प्रथमसंपुटम् १-५ अध्यायाः

THE

VIDYĀMĀDHAVĪYAM

OF

VIDYA MADHAVA

WIIH

VISHNUSARMĀ'S MUHURT MADIPIKĀ

PART I-CHAPTERS 1-5

EDITED BY

Dr. R. SHAMA SASTRY, B.A., PH.D., M.R.A.S.,

Curator, Government Oriental Library, Mysore, Director of Archwological Researches in Mysore, Periodical Lecturer to the Post-Graduates'
Classes of the Calcutta University, and B.B R A.S.
Campbell Memorial Medalist

PREFACE.

THE Edition of the Vidyamadhaviya with its commentary Muhurtadipika is based upon the following manuscripts:

- (1) A palm-leaf manuscript written in Tulucharacters, borrowed from the Sringeri Mutt.
- (2-3) Two palm-leaf manuscripts, No. 4426-7, belonging to the Oriental Library.
- (4-9) Six paper manuscripts, No. B. 66, B. 67, B. 106, B. 109, B. 110 and B. 119, all belonging to the same Library.

Of these manuscripts, the manuscript of the Sringeri Mutt Library is found to furnish correct readings while the rest are faulty throughout. It may therefore be taken that the present edition is almost a copy of the Sringeri manuscript with the exception of the first leaf in which the first verse together with a quarter of the second verse among the commentator's introductory verses is lost owing to the top of the leaf being torn off to the extent of 1sth of an inch throughout. The commentator's introduction consists of fourteen verses in different metres, of which only the first and the last two are found in other manuscripts. The importance of these verses lies in giving the names of the kings under whose patronage the anthor flourished. however strange that such important verses should be found only in one manuscript. As parts of some of these verses are lost, they are all given in their mutilated form in foot-note below. From these verses and the colophon it appears that the commentator called Vishnu was the son of Vidyâmâdhava, the author of the Vidyâmâdhavîya, and flourished under the patronage of Mallappa, son of the Vijayanagar king Bul.karâya, and ruler over the East of Mysore (A.D. 1363).

The Vidyâmâdhavîya is an exhaustive treatise on the Horary Astrology of the Hindus, and with its commentary it consists of about fifteen thousand granthas, about one-third of which is comprised in this first volume. While to the faithful of the Hindus the work is welcome as an authoritative consulting book on the proper occasion of their varied religious rites, it will be no less important to the historian of India for information on the Sociology of the Hindus in the middle ages and even in modern times.

Mysore,
16th July 1923.

R. Shamasastry,

Curator.

सन्याख्यस्य विद्यामाधवीयस्य विषयस्चनी.

विषवा:			पृष्ठसञ्जयाः
संज्ञाध्याय:—			1-78.
मङ्गळाचरणम्	व्या	मूले 1 श्लो·	2
मूल स्थम ङ्गल पद्यव्या ख्या	,,	****	1-9
स्वस्य मन्यकरणप्रवृत्तिप्रयोजकप्रदर्शन-			
पुरस्सरं प्रेक्षावत्प्रवृत्तयेऽनुबन्धचतुष्टर	7-	0	
प्रदर्शनपूर्वकं च प्रतिज्ञा	• • • •	,, 2-3-4 ,,	10
सविमर्शे तद्विवरणम्	,,	****	9-14
संज्ञाध्यायप्राथम्ये हेतुः	****	,, 5 ,,	14
राशीनां संज्ञाः	****	,, 6-8 ,,	15
सविचारं तद्विवरणम्	**** ;;	****	15-17
राशीनां संज्ञान्तराणि	••••	,, 9 ,,	17
राशीनां सामान्यपंजाः	••••	,, 10-,,	"
भावशब्दवाच्यानां राशीनां संज्ञाः	****	,,11-13 ,,	18-19
भात्मतनुमूर्तिपदानां विषये शङ्कापरिहारी	ì ,,	••••	19
आस्पदशब्दविषये शङ्कापरिहारी, मूलस्थ	य -		
तुशब्दार्थश्र	*** 25	*	19-20
लप्रादिष्वित्यादिप्रतिशायामनुपपत्तिशङ्का-	•		
परिद्वारी	,,		20-21
भावशब्दार्थः, लमसाधनऋमः भावानयन	क्रमः,		
प्रमाणं च	,,	•••	21-23
मावाद्यन्तावगमोषायः	**** 33	****	23
भाषान्तावस्थितस्य प्रइस्य नैष्फल्यम्	**** 37	****	"
महस्य भावफलदान विषये विशेषः, प्रमा	णंच "	***	***
भावपलो १ चया दिहेतुः प्रमाणं च	*** 22		24
भावफळविषे मतविरोध।शङ्कापरिहारौ	,,	, 6,6 e e	22.

विषया:	ह्य	। मृ		श्ली		पुटस ङ्घया
राशिसावफलयोः कल्पनायां भूयान्						
े भेदः, तत्र मतभेद विरोधशङ्कापरिह	ाराः ,,				3404	24-25
फलविभागः, तल मतभेदाः	4. 9.	,				25
शुमिक्रयासु पूर्वोक्तरीत्या भावकल्पनाव	३ य-					
कता प्रमाणं च	**** 55					25-26
भावसंज्ञाः (त्रिकोणादयः)			,14-1	5 ,	5	26-27
नानासंज्ञासमावेशस्य छे निर्णयः	**** 55	3			****	2.7
युगयुक् पदयोरर्थः लोकतस्संख्यावगतिः	a	3	, 16	,,		,
मूलोपात्तादिपदार्थप्रदर्शनेन विवरगम्	99					27-28
राशीनां शीर्षीदयपृष्ठोदयसंज्ञे		33	17	25		28
मृठोक्तार्थविशदीकरणं प्रमाणं च	99					28-29
मृलोक्तसंज्ञ प्रयोजनं प्रमाणं च	25	,			***	29
चरास्थिरत्वयोरेव प्रकृतिता उनथस्योभय	रूक्ता च	Γ			****	7;
राशीनामूर्घमुखादिसंज्ञाः	****		, 18	25	****	97
मूळाके प्रमाणोपन्यासः	**** **				424	30
रा चिषु पुष्करसंज्ञका अंश ः			, 18	32		2.7
मृह्येक्तेऽर्थे प्रमाण नवांशेष्वपि पुरक्रशंश	1:			-		
े प्रमःणं च	9,				****	30-31
प्रहाणां प्रकाशकादितंज्ञाः	****	,,	19	,,		31
म्ठोकार्थे प्रमाणोपन्यासः मतमेदाश्च	,,					31-32
प्रहाणां नवत्वे विस्तरेण विचारः))					32-36
सुमपा प पर्यायाः		35	20	55	****	36
मुहूर्तशब्दार्थः	*** 55					1,
काल मेद प्रदर्शनं तत्र राङ्कावरिहारः प्रमा	णो-					
पन्यासश्च	95				****	36-37
ज्योतिश्वाखेनक्फल्यशङ्कापरिहारी	,,				,	37-42
उचनीचादि गः यं शः	****	5.7	21	,,		42
विशदं मूलविवरणम्	**** **				****	
राशिषु मूलिकोणसंज्ञका मागाः	****		22	32	****	43

विषया:—		व्या•	मॄ्∙	Ę,	हो∙	पृष्ठसङ्ख्या:
मूलविवरणं, प्रमाणोपन्यासः, वराहमिहि	₹ -					
सतदूषणं च	••••	,,			***	43-44
प्रहर्सबन्धिनो वर्गाः			5,	23	99	44
मूलोक्तेऽर्थे प्रमाणम्		55			••••	45
राज्यादीनामधिपतयः	•••,		57	24	,,	45-46
मूळोक्तेऽर्थे प्रमाणम्	••••	,,			****	46-47
देकाणहोगासंज्ञका भागाः तत्तद्धिपतयः						
तत्र मतभेदाश्व			33	25	,,	47
म्लोकार्थे प्रमाणं तत्तन्मतमेदाश्र	••••	"			••••	47-48
आहत्य द्रेकाणहोरातत्स्वामिनां संख्या	****	,,			5 × = 10	48
त्रिशांशाधिपतयः			55	26 ;	,,	"
मृलोक्तार्थे प्रमाणोपन्यासः	***	5>			****	49
मूळानुक्ताः सप्तांशाधिपतयः, प्रमाणं च	****	,,			••••	,,
महागां दछय:	••••		33	27	",	"
विशदं मृलविवरणं दृष्ट्यानयनाविषये						
तत्तन्मतप्रदर्शनेन विचारः	****	7,9				49-53
यहाणां मि त्र शत्रुसमाः	****		,,	28 ,)) ****	53
मूलविवरणं प्रमाणोपन्यासः तत्र मतभेदा	শ্ব	,,			••••	53-54
ब्रहाणां तात्कालिकशत्रुमित्रत्व	****		59	29,	· · · · ·	54-55
म्लोकार्थे प्रमाणे।पन्यासः तल भतान्तर	[-					
दूषणं च		,,			****	55
कालहोराधिपाः	****		رر	30	,,	56
मूळविवरणं मतभेदाः तत्तत्ममाणानि च	****	,)			***	56-57.
नक्षत्रसंख्याविशेषाः	****		2>	31	,	57
नक्षत्राणां देवताः			"	32	,,	5 8
मृलोक्तार्थे मतान्तरं तद्दूषणं च	****	,,			••••	58 – 59
केषांचित् संज्ञान्तरं	• • • •		,,	33 - 34	,,	59
ञ्घुर्नक्षत्राणां निर्देश:	****		, ,	35	,, **	60
नक्षत्राणाम्ध्वमुखत्वादि	****		"	36 ,	,, ,,,,	22
The state of the s						

विषया:		व्या.	मू:		श्लो		वृष्ठसङ्घर्गाः
मूलोक्तार्थे श्रीपातिवचनोपन्यासः		,,					61
नक्षलाणां क्षिप्रादिसंज्ञाः			"	37	,,		,,
मूलोकेऽर्थे प्रमाणोदाहरणम्		"					62
नक्षत्रेषु पुस्त्वादि	••••		,,	38	,,		62
मूलविवरणम्	••••	"					62-63
नक्षत्रे बाह्यान्तरङ्गसंज्ञे	••••		,,	39	"		63
मूळीक्तसंज्ञाप्रयोजनम्		,,					,,
तिथीनां संज्ञाः	****		,,	40	"		63-64
रह्मत्रेपन्यासः मतान्तरं प्रमाणं च	****	,,					64-65
करणानि	••••		35 ⁴	11-4	2-,,		65
मूलविवरणं प्रमाणीपन्यासश्च	****					****	65-66
करणयोनयः	****		"	43	"	***	66
वारयोनयः			"	,,	,,		67
म्लविवरणं वारदेवताश्च		y»					,,
पञ्चाङ्गादीनि			,,	44	7,7	* * * *, *	"
म्ळाभिहिते ऽ र्थे प्रमाणीपन्यासः षडङ्गत्व-							
सप्ताङ्गत्वे, राशिषु वर्गोत्तमांशविषये	Ī						•
प्रमाणंच	****	25					67-68
राशिषु द्विपादादिसंज्ञाः			7.7	45	57	***:	68
मूळविवरणं गार्ग्यवचनोदाहरणं च	****	53				****	68-69
महाणां जाति: वेदाधिपत्यदिगाथिपत्ये च	ł		27	46	,,		69
म्लोक्ते ऽर्थे प्रमाणम्		55				****	, ,
महाणां भीत्वदि	,		59	47	,,	****	70
प्रहाणां रूपवय:प्रभृते र त्राप्रदर्शने हेतु:			57	47	,,		,,
मूलाभिहितार्थे प्रमाणम्	****	77				****	>7
मूले प्रकृतानपेक्षिततयोक्तं कस्यचिजिज्ञार							**
स्यादिति सौकर्याय तत्तत्प्रदर्शनम्	***	"					71-78
अध्यायोपसंहारः	****		37	48	>"	1991	78

विषया:— द्वितीयो	दोषाध्यायः	ج 	या.	मू.	3	ह्ये.		पृष्ठस ङ्ख्याः 79-195
दोष निरूपणार्थी प्रतिज्ञा	•••			,,	1	99		79
दोषप्रारेगणना .								79-80
विशइं म्लविवरणम् .	• • •		"	•,		′′	****	80-81
दुष्टनक्षत्रादीनि .			"	25	5	5,		82
दुष्टनक्षत्रादेस्त्याज्यत्वे प्र								•
विशदं मूलविवरणम्			,,					82-84
विषघिटकाः .		****		32	6-7	,,	••••	84
विशदं मूलविवरणं, प्रमा	णोपन्यासः विष	-						
घटीफलं, योगेष्वपि	विषनाडिकासद्भ	[-						
ववादिनां मतं च .	•••		,,					84-85
धूमादयः पञ्च दोषाः .	•••			55	8	55	****	85
मृलोकार्थे प्रमाणम्		***	,,				••••	86
भूकम्पादयो दो षाः .	•• •			25	9	55		86-87
मूलाभिहितेष्वर्थेषु प्रमाण		[
मूलविवरणम् मतमे		****	,,				***	87-88
दिवसरात्र्योरष्टभागाधिप		••••	•	"	10	"		89
गुळिकदोषाः		****		,,	11	53		. 25
मूळामिहितेऽथे प्रमाणोपः		दिं-						
प्रदर्शनेन मूलविशदी			25					8 <i>9-</i> 91
दिनगददिनमृत्युदेश <mark>िय</mark> योरा			•	33	12	,,		91
प्रमाणोपन्यातादिपूर्वकं			,,	••				91-92
सम्बद्धोषः तत्फलानि				,,	13	"	•••	9 2-93
मूलोक्ते ऽर्थे प्रमाणीपन्य			.,	.,				93
वृष्ट्यदयदोषः			••	,,	14	,,,		
ावष्टयुद्यदापः प्रमाणोपन्यासमतभेदयोः		****						*
प्रमाणापस्यातमतम् ५५०। विवरणम्			5,				••••	94-96
विष्कम्भादयो यागाः				,,				96
विष्कम्भादिषु निन्दिता				**	16	33	••••	97
तत्तन्मतप्रदर्शनपूर्वकं मू			5,3				•••	97–98
V. MADHA	VIYAM	•						B

विषया:—	व्या प ०ने
दुष्टा वारतिथियोगाः	व्या. मू. श्ली. पृष्ठसङ्ख्याः
मूलोक्तार्थे प्रमागोपन्यासः	···· , 17-18 ,, 98 - 99
दुष्टा वारर्क्षयोगाः	99–100
प्रमाणोपन्यासपूर्वकं मूळविवरणम्	,, 19-20 ,,
तिथिवारर्क्षयोगाः	···· " ···· 101-103
मूलाभिहिते थे साण च	" 21 ", 103-104
तिथ्युक्ष्ये गः	104
तत्तत्त्रमाणो ज्यांन म्लवि रणम्	,,22-23,,
तिथिराशियोगाः	105
प्रमाणमुखेन मूलविव र णं मूलानुक्तापेक्षि	···· , 24 ,, 106
निरूणं मतभेदप्रदर्शनं च	•
ब हुकृप दे।ष:	106-108
तिथिकूपदोष:	,, 25-26 ,, 108
उडुतिथिकूपदोषफलम्	,, 27 ,,108-109
प्रमाणोपन्यासमतभदपदर्शनाभ्यां	,, 28 ,, 109
मूलविवरणम्	
काळदोष:	**** >5
मत मेद प्रइशेन प्रमाणोपन्यासाभ्यां	,, 29 ,, 110
मृळविवरणम्	
चक्राधेव्यतीपातदोषः	···· ,,
दोषपरिज्ञानोपायंविशदीकरणेन प्रमाणो-	,, 30 ,, 111
पन्यासन च मलविवसाम	
पातऋसम्	,111-114
देशवाज्यतायां प्रमाणीयन्यासः वित्रान्तरः	··· ,, 31 ,, ···· 114
गन्दगर्भूणद्वाषाः	171
मूलार्थविवरणं प्रमाणोपन्यासश्च सन्यक्षेत्रः	, 32 ,, 117
म्ह त्यु दाष:	110
र नाग्य प्राचीय प्रमाणा प्रसाराध्य	,, TIG *
- ***	,, 34 ,, 119

विषया:—			ठ्या •	मू.		श्लो	• पृष्ठस	ह्वयाः.
मूलविवरणं प्रमाणोप	ान्यास श्च	••••	,,				119-	
अन्धनक्षत्राणि		••••	,,	11	35		****	
मू अविवरणं तत्तन्मत	मेदप्रदर्शनं च	••••	99	,,		,	120-	
अन्नार्थे गुरुमतम्	****	****	,,	,,	36	,,	****	
मूलोक्तार्थे प्रमा णोप न	यासः, मतान्तरनि	ारासः				,		
मूलानुक्ता अर्थवि	ારો ષાશ્વ	• • • •	,,				121-	-122
उष्णशिखादोष:	****	****		99			****	
मूलविवरणं प्रमाणीप	न्यासश्च	****	,,				122	
गण्डदोष:	••••	••••		,,	38	,,	••••	123
जन्मादयो दोषाः	****			,,	39	,,	****	2)
म्लविवरणं प्रमाणीप	न्यासश्च	****	,,				****	
शुभकर्मसु त्याज्या दे	विविशेषाः	****		,,	40	,,		
मूलविवरणपुरस्सरं त								
प्रमाणानि च	****	****	,,				124-	-127
वैनाशिकदोष:	****	***		,,	41	,,	•••	127
मूलविवरणं मतभेदप	र्दशनं प्रमाणापन्य	गसश्च,	,,				****	128
एकार्गळदोष:	* > 4	****		"	42	,,	****	25
मूळविवरणं प्रमाणाप	न्यासश्च	***	,,				128-	
शून्या राशयः	****	****		,,	43	,,	****	129
मूलविवरणं प्रमाणोप	न्यासश्च	****	,,				129-	130
शृन्यास्ताराः		****		"	44	,,	••••	130
म्लविवरणं प्रमाणोप	न्यासः, मतान्तर-	•					1.20	4 24
ं निगसश्च	• * * *	****	"				130-	
शून्यास्तिथयः				,,	45	22	120	
मृलविवरणं प्रमाणोपः	न्यासः मतभदपद	शन च	"		1.0		132-	
शून्यमासाः				9.7	40	"	••••	134
मृलविवरणं प्रमाणीपः	त्यासः अथावशयः						4.0.1	4.02
मतभेदश्च	****	****	"				134-	
दग्धनक्षत्राणि	****	****		77	47	"	****	135

विषया:	ब्याः	ਜ਼-	श्लो∙	पृष्ठसङ्ख्या:
मूलविवरणं प्रमाणोपन्यासः वक्तव्यविशेषश्र	,,	-		.135–136
ज्वालादियोगाः	"	,,		
मूलविवरणं प्रमाणोपन्यासथ	,,	"	10. ;,	
मासपदार्थः	,,	,,	49	.137-138
मूळविवरणं प्रमाणोपन्यासः मूलानुक्तार्थ-		"	27 77 ***	10, 100
विशेष: मतभेदप्रदर्शनं च				.138-139
संक्रमाः	• •	••	50 ,,	
मूलविवरणं प्रमाणोपन्यासः तत्तन्मतप्रदर्शनं		,,	. ,,	. 109
संकान्तिफलप्रदर्शनं च	11			139-145
संक्रान्तेः शुभकर्भसु त्याज्यता		••	51 ,,	_
मूलाभिद्दितार्थे प्रमाणीयन्यासः तत्तन्मतानि व	,,	,,		1.45-146
सौरादयोऽब्दाः	,,	,,		147
मूलविवरणं प्रमाणोपन्यासः सूलानुक्तार्थः		,,	,,	3, 1 8
विशेषतत्तनमतविशेषप्रदर्शनानि च	17			147-148
सौराद्यब्दान्तादिषु त्याज्यदिनानि			53 ,,	
विशदं मतभेदप्रदर्शनपूर्वकं च मूलविवरगम्	,,	,,		148-150
श्रीदिनानि		"	54 ,,	
मूळविवरणं शीदिनानयनोपायः प्रमाणं च	• •		,,	151
श्रीदिनादीनि सप्त दिनानि तेषां शुभाशभवे च		, ,	55 ,,	"
अपेक्षितार्थावरेशपत्रदर्शनप्रमाणोपन्यासी ,		•	,,	152
गुरुशुक्रयोरस्तादयो दोषाः	,	,	56 ,,	"
दोषस्वरूपविवेचनप्रमागोपन्यासाभ्यां			,,	,,
मृलविवरणम् , ,	,		1	52-153
गुरुशुक्रयोगीत्यं धद्धत्वं च	,	,	57 ,,	
तत्तनमतभेद्रवर्शनश्रमाणोपन्यासी ,				54-155
प्रहवेधः	,	,	~ ^	155
अर्थविशेषप्रदर्शनं प्रमाणीपन्यासथ ,			****	'
वास्तुकर्माण निषिद्धो वेधः	,,		59 ,,	
मूलाभिहितार्थे प्र.ार्ण दोषफलं च ,,)			56 – 1 <i>5</i> 7

विषया:	व्या	. मू.	श्लो.	पृष्ठम ङ्खयाः,
शूलदोषः तदानयनोपायश्र	••••	,,	60 ,,	157
दें। षफलं प्रमाणं मूलानुक्तार्थं विशेषश्च	,,			157-159
अधिमासा:	****			159
अधिमः साविषये मतभेदाः तत्तरत्रमाणानि	च ,,			160-163
केतूदयादयो दोषाः	••••	,,	62 "	163
विशदं मूलविवरणं तत्तत्प्रमाणोपन्यासः				
अर्थविशेषाश्च	,,			103-170
वेधदोषः तदानयनोपायश्च	••••	,,	63 "	170-171
तत्तन्मतभेदप्रदर्शनं प्रमाणोपन्यासथ	;;			171-173
अभिजिद्धक्तिः तत्स्थप्रहस्य रोहिणी वेध	कता च	,,	64 "	173
मूलोकार्थे वचनोपन्यासः अर्थविशेषश्च	,,			173-174
महशुद्धिनियमस्थानानि तत्तदुचिताक्रिया	बे-			
शेषाश्व		,,	65 "	174
प्रमाणोपन्यासः मतभदप्रदशनं च	**** ;;			174-175
चौळादिषु वर्ज्यः कालः		٠,		175-176
मूलोक्ते ऽर्थे प्रमाणोपन्यासः तत्तन्मतभेद	唱 "			176-180
रात्रिवर्ज्यानि कर्माणि	****	,,		180
प्रनाणोपन्यासः मतभेदप्रदर्शनं च	**** ,,			180-181
रात्रिनिषिद्धेषु कर्मसु कर्णवेषगृहप्रवेशयो	শ্বা-			
वश्यापेक्षिता प्रहस्थितिः		"	68 "	
५डशीतिमुखदोषः	••••	22	69 "	182
मूलोक्तार्थे प्रमाणोपन्यासः	****			,, .
गण्डान्तदोष: तत्र त्याज्या नाडिकाश्च	••••	22	70 ,,	
प्रमाणोपन्यासः मतान्तरप्रदर्शनं च	**** 35			183-184
रुप्रदोषाः	****	,,	71 ,,	184
प्रमाणोदाहरणं मतभेदप्रदर्शनं च	**** 5			184-186
चन्द्रदोषाः	****		72 ,,	187
प्रमाणप्रदर्शनं सप्रमाणं मतान्तरोपन्यास	翘 ,			187-188
वर्ज्यवेलाद्यानयनापायः	****	"	73 ,,	188-189

विषया:—	ब्या.	म्.		श्लो.	पृष्ठ र	ङ्ख्याः.
अपेक्षितिवंशेषाः प्रमाणं च	**** ,,				****	189
चन्द्रक्रियाः	****	,, 7	4-7	7,,	189	-190
मूलविवरणं मूलोक्तार्थे प्रमाणोपन्यासश्च	,,				190	
चन्द्रावस्थाः	••••	25	78	,,	••••	192
प्रमाणोपन्यासः मतान्तरप्रदर्शनं च	,,				192	
चन्द्रवेलाः	••••	,, 7	9-8	1,,	****	194
म्लार्थे प्र मा णोदा हर णम्	,,				194	
दोषाध्यायोपसंहार:	••••	,,	82	"	••••	195
अथ अपवादाध्यायस्तृती	यः				196	- 260
अपवादिनिरूपणप्रतिज्ञा	***4	,,	1	22	••••	196
मूलार्थ उपपत्ति: प्रमाणीपन्यासश्च	**** 39				••••	
छिददोषापवादः	***,	,,	2	11	197	
मूलाभिहितेऽर्थे प्रमाणं अर्थविशेषश्र	,,				****	
पापत्रारापवादः		"	3	,,	198	-199
विशदं मूलविवरणं, तत्तत्प्रमाणानि च	**** ,,				199	-2 09
चन्द्रवर्गापवाद:		33	4	,,	****	210
प्रमाणोपन्यासः अर्थविशेषश्च	**** 55				••••	22
पापवारे निषिद्धस्यापि कर्मणः करणाहां	गन्त-					
रकाल:	•••	,,	5	,,	****	,,
पापवारेऽपि रात्रौ दोषाभावः	• • • •	"	6	"	••••	211
म्लाभिहितेऽर्थे प्रमाणापन्यासः	**** 35				****	
पापराज्यपवाद:	2005	**	7	,,	211	
प्रमाणप्रदर्शनं मतभेदप्रदर्शनं च	**** 55				212	
तिथोनामुत्तमादिविभागः	4444	,,	8	29	****	
म्लार्थे प्रमाणादाहरणम्	,,				214	
अहः पञ्चधा विभागः, अपराह्णस्य वज्य		,,	9	"	****	215
मूलाभिहितेऽर्थे प्रमाणीपन्यासो विशेषार्थ	খ ,,				215	-216
धूमादिदोषपश्चकापवाद:	****	,,	10	,,	••••	216
प्रमाणोपन्यासः					****	

विषय:—		व्या.	मू.		શ્લો.	પૃષ્ટસ	ख्व यन
सी रदोष ।पवाद:	•		,,	11	"	••••	217
मूलाभिहिते ऽर्थे प्रमाणं, तस्यव च			,,		••		
विद्युद्दोष परिहाररूपता च	• • • • •	,,				217-	-218
अर्धप्रह रा दीना मपवादः	••••		,,	12	,,		218
गुळिक िद्दोषपरि हारान्तरं			,,	13	,,	••••	,,
प्रमाणोपन्यासः मतभेदप्रदर्शनं विशेषार्थः	3	,,				218	
दिन मृत्युरोगदेश्वभङ्गः			,,	14	,,	219	-220
प्रमाणोपन्यासः निशाम्बसोर्दूषकत्वे विशेषः	শ্ব	,,				****	220
रिष्टदोषमङ्गः	• • • •		"	15	"		220
प्रमाणोपन्यासः मतभेदः त्रिशेषार्थश्च		"				220-	-221
दुष्टयाग भ ङ्गः	••••		"	16	"	221	-222
मूलार्थे प्रमाणं मतभेदः विशेषार्थश्र		,,				222	-223
द्ग्धराव्यपवादः			"	17	,,	• • •	223
म्लार्थे प्रमाणोगन्यासः	••••	"				****	,,
कूपदोषभङ्गः			")	18	,,	****	,,
म्ळार्थे प्रमाणोपन्यासः		,,				••••	224
कालगण्डभङ्ग:	••••		,,	19	,,	••••	"
कण्टकादिदोषभङ्गः	•••		,,	20	,,	••••	"
मूलार्थे प्रमाणं, परिकारान्तरं तत्र प्रमाणं	ਕ	,,				••••	225
दग्धरार्यादिभङ्गः	••••		,,	21	,,	••••	225
मूळार्थे प्रमाणं परिहारान्तरं च प्रमाणं च	••••	"				••••	,,
अन्धदेशियञ्जः	••••		,,	22	,,	****	226
मूलार्थे प्रमाणं विशेषार्थश्र		,,				226	-227
जन्मक्षंकृखम्			,,	23	,,		
मृलार्थे प्रमाणं, विशेषविषयश्व	••••	"				227	-218
विपद।दिभङ्गः	•••		,,	24	,,	****	228
म्लार्थे प्रमाणं, विशेषार्थः मतभदश्च		,				228	
अष्टमराशिविनाशर्क्षदोषयो: परिहारौ	••••		,,	25	"	4002	230
प्रमाणोपस्यासः विशेषाश्च	****	12				 230	- 231

विषय—		ह्या.	म्.	ક્ષો.	पृष्टसङ्ख्या.
एकार्गळदोषभङ्ग:	1116				231
मूळार्थे प्रमाणोपन्यासः	****	••			231-232
जून्यादिभङ्ग:	****	.,			232
म्लार्थे प्रमाणोपन्यासः अनुकार्थसंद्रह	थ	٠.			232-233
दंग्धराशिभङ्गः	****		29		233
मूलोक्तेऽर्थे प्रमाणं विशेषश्व					233-234
दग्धदोषपरि हा गन्तरम्	***				234
प्रमाणोपन्यासः विशेषविमर्शश्च	**** 1				234 235
अनुक्तभङ्गानां सामान्योऽपवादः	****		32		235
मूलार्थे प्र माणं	**** 34			,,,	236
गुरुशुक्रास्ताधिमासादिषु कर्तव्यानि	****		3.3	,	-
मूलार्थे प्रमाणं अनुक्तार्थविशेषाश्र	**** 55				36-238
रात्रिदोषमङ्गः	****	5.5	3-4		238
मूलार्थे प्रमाणं विशेषाश्च	**** **	3)			38-240
लप्रदोषभङ्ग:	,,	*.	35		240
मूलार्थे सर्वसिद्धिवचनं	/exe 55	13		****	
पपपूर्णदष्टिमङ्ग:	****	,,	36 .		241
पापोद्य द ष्टिभङ्कः	****	2.7 5.7		y ****	
प्रमाणतो मूळाववरणं मूलानुकार्थश्र	,,,,	27	. ,		,, +1-2+2
उभयपापदेषभङ्गः	****	13	38	, ,,,,	
तत्प्रमाणं	**** 15	•,	, ,		12-243
अनिष्टस्थानगतश्रहदोषभङ्गः तत्प्रसाणं च	****	33	39 ,,	****	
चन्द्रदे।षभङ्गः	****	,,		****	
तत्प्रमाणं	**** 55	,,	77		3-244
पर्ष्णिशस्वांगदोषभङ्गः	****	11	41	****	
म्लार्थे प्रमाणं मतान्तरं च	**** ,,	,,		24	
पापवर्गादिभङ्गः		11		24:	
पापयोगराष्ट्रिभङ्गः तत्र प्रमाणं विशेषार्यश्च	**** ,,			*** ***	
सर्वदाधाणां साधारणा अङ्गः	****			247	
तत्र भमाणानि	**** 79	**	- 71	247	
	•				.36

xvii

विषयाः		ह्या.	म्.	क्षे. पृष्ठ सङ्ख्याः.
अपवादो प संहार:	••••	****	19	50 ,, 258
अ ग्वादपाबल्य दें। बेल्यर	गेदिंशाचारो व्यवस्थ	गपकः	11	51 ,,258-259
तत्र प्रमाणं		,,		259
दोष।पवादपरिमहाईदः	ıı	****	23	52 ,,259-260
तत्र गुरुवचने।पन्यासः	4177	,,		**** ***
मूलटीकयोरपवादाध्य।	गे पसं हार:	****		260
अथ गुण	ष्यायः तुरीयः			261-322
गुणनिरूपणप्रतिज्ञा	****	****	"	1 ,,261-263
सप्रमाणं मूलविवरणं	****	,,		****);
गुणविभागः	••••	••••	,,	2 ,, 263-264
म्लार्थविमर्शः		,,		,,,,
महागुणाः	••••	••••	,,	3 "264–265
प्रमाणं मतान्तरं च	••••	**** ,,		**** 77.
पञ्चाङ्गादिगुण ।:	••••	••••	"	4 ,, 266
तत्र प्रमाणं	••	,,		,,
उत्तमोत्तमगुणस्य मुक्तं	तैकलभ्यना		,,	5 ,, ,,
प्रहाणां गोचरगुणः	****	••••	,,	6 ,, 267
तत्र प्रमाणं	****	•••• ,,		****
पूर्णपञ्चकयोगः	••••	****	,,	7 ,, 267–268
तत्र प्रमाणं	•••	**** 1,		****
ताराकलशनामा योगः	****		"	8 ,,268-270
प्रमाणं मतान्तरं च	••••	,,		270
मुहूर्तपरिमाणं संख्या र	¥	** *	"	9 " "
तत्र प्रमाणं	••••	,,		****))
मुहूर्तानां तारकामयत्वं		••••	,,	10 , 270-271
प्रमाणं मूलार्थे	••••	,,		••••
मुद्दानां गुणदोषौ दैव	तं च	••••	,,	11 "271-274
मतमेदा: प्रमाणानि च	****	;;		274
शुभाशुभमुहूर्तगणना		****	22	12 ,, ,,
VIDYAMA	DAVIAM			C

xviii

विषया:—		व्या.	मू.		श्लो.	पृष्ठस	ह्वयाः.
अभिजिन्मुहूर्तेगुण:			,,	13	,.	****	275
प्रमाणपुरस्सरं मूलिववरणम्	••••	,,				275	
वारेषु वर्ज्यमुहूर्ताः	••••		,,	14	,,	****	276
मूलार्थे प्रमाणं विशेषार्थश्च	>***	,,			,,	276-	-277
मुदूर्तानां पुराणप्रासिद्धास्संज्ञाः			,,	15	,,	****	277
मूलार्थे प्रमाणं	•••	,,				277-	- 278
पौरााणिकाश्शुभमुहूर्ता र सप्त			,,	16	"	****	278
मूलोक्तेऽर्थे प्रमाणोपन्यासः विचारश्च		"				****	,,
पञ्चकल्याणाख्यः प्रशस्तो योगः			"	17	,,	****	"
मूलार्थे प्रमाणम्	••••	"				****	279
शुभवारर्भयोगा:	••••		,,18	3-19	,,	***	,,
मूलार्थे गुरुवचनोदाहरणम्						4	280
अमृतयोगा:	••••		,,20)-21	"	****	281
गुरुवचनोपन्यासः विशेषार्थश्र		"				281-	-282
व!रयोगा:			,,	22	,,		282
मूळार्थे गुरुवचनं प्रमाणं, मतभेदास्तत्प्रम	1-						
णानि च		,,				282-	-284
पूर्वोत्तायोगेषु वक्तव्यविशेषः			"	23	"	*447	285
मतान्तरं प्रमाणं च	••••	"				••••	286
अमृतघटिका			29	24	,•	286-	-287
तत्र प्रमाणं	••••	,,				****	288
अमृतघटीफलम्			,,	25	"	****	"
काळगुणः	••••		"	26	13	288-	289
तत्र प्रमाणं विशेषार्थश्च	****	,,					289
अष्टवर्गगुण:	••••		"	27	"		"
म्लविवरणं प्रमाणोपन्यासः विशेषार्थश्र	••••	"				289-	295
सप्ताङ्गगुणानिरूपणोपसंहार:			,,	28	,,		296.
निमित्तगुणाः	***4		,,	29		****	
सप्रमाणं सप्रपत्रं च तत्तदर्थविवरणं	****	12			,	296-	-304

विषया:—		व्या.	म .		ક્ષો.	पृष्ठसङ्ख्या.:
दैवज्ञप्रशंसा	****					304
मृलार्थे गुरुवचनं प्रमाणं	****		"			305
दैवजसत्कारतदभावाभ्यां सम्हण्यवैगुण्य	••••	,,	••			306
सप्रपर्श्व मूलविवरणं	****	,,	,,		,,	306-318
लोकसंतोषाय दैवज्ञेन लगतद्धिपादिवल	गदि-	•				
शुभचिह्र ऋथनावश्य कता			11	32	11	318
म्ल थीववरणं प्रमाणं मतान्तरं च	•••.	,,	• •			319-821
गुणाध्यायाः संहारः	••••		,,			321-322
अथ बलाबलाध्यायः पञ्चमः						323-380
बलाव लपरिज्ञानस्यावश्यकत्वम्	••••		,,	1	,,	323
तिथिबलं			,,			323-324
प्रमाणं		"				324
पूर्वोक्तार्थे मतान्तरं			,,	3	"	,,
सविमर्शे सप्रमाणं च मूळविवाणं	••••	,,				324-325
तिथिप्राबल्याविषये श्रीपातिमतं			"	4	,,	326
मूलार्थे भरद्वाजमतं प्रमाणं च		,,				326-327
पूर्वोक्तार्थे स्वाभिमतं गुरुमतं			"	5	,,	327
प्रमाणोपन्यासः शङ्कापरिहारी च	••••	"				327-328
निसगेजं पञ्चाङ्गबलं			"	6		328
म्लविवरणं	••••	"				329
तात्कालिकं पञ्चाङ्गवलम्	****		,,			329-330
र:शिप्रहाणां वलं	• • • •		"	8	,,	330-331
भग्द्वाजत्रचनं मृलार्थे प्रमाणं	••••	"				331
पूर्वीक्तप्रहराश्यादिवलद्षणः (****		,,	9		23
षडङ्गेषु तारापावस्यं प्रहाद-यूनवलता च	•••		"	10	22	332
,, तारापाबल्ये ऐतिहां प्रमाणं	••••		"	11	27	332-333
तारापाबल्यसाधकतयोक्तेऽर्थे प्रहोदयवर	ठेना-					
न्यथासिद्धिं शङ्कमानं प्रत्युत्तरं	····		"	12	"	333
तिथ्यादित्याज्यताया अपवादै: परिहारं।						
र्शनी इत्य शङ्कमानं प्रति समायानम्	****		,,	13	2,7	334

विषयाः—		च्या.	ħ.		ક્ષો.	. પુર	सङ्ख्याः.
र।इयादिप्राबल्योपयोगस्थलप्रदर्शनं			,,	14	,,	****	334
मूलार्थे प्रमाणं	••••	, ,,				33	35 - 336
पश्चाङ्गबलेषु मिथो बलाबलनिर्णय:			,,	15	,,	••••	336
नाशसिद्धादयो योगाः			"	16	,,	•••	337
मूलोक्तयेगोषु शुभाशुभत्वे		53				33	7-338
राश्यादिबल			,,	17	,,	1 + 7 \$	338
तत्र प्रमाण		,,				••••	,,
राशिबळविषये तत्तन्मतप्रतिपादनप्रातिशा			,,	18	,,		27
वराहःमिहिरमतेन राशिबलं	••		,,19	9-20	,,		339
म्लार्थे प्रभाणं तदुक्तबलानयनोपयोगिगाणि	गतं						
तत्र प्रमाणं च		,,				33	9-341
श्री रतिसंमतं स्थानवलं	••••		"	21	,,		341
श्रीपत्यादिवचनोपन्यासेन मूलविवरणं		,,				34	1-342
भीपतिमतेन प्रहबलं			,,	22	,,		3+3
बलसंख्यापरिमाणे	****		12	2.3	,,	****	
चेष्टावलं	••••		"				344
वराहामिहिरादिवचनोदाहरणेन मूलविवरप	गम्	,,					4-345
कालबलम्	••••		,,	25	,,	34	5-346
श्रीपत्यादिवचनोदाहरणेन मूलविवरणं							
विशेषार्थश्च .		,,				340	5-348
दग्वलस्थानवले		.,	"	26	,,	349	9- 351
सप्रमाणं तद्विवरणं		,,				349	9-351
चेष्टाबलयागेन स्थानबलवृद्धिः	****		"	27	22	351	-352
स्थानबलयोगेन नैसर्गिकस्य वृद्धिः	••••		,,	28	32	****	352
गुरुवचनं मृलार्थे प्रमाणं	****	12				****	353
बलानां प्राधान्यमुपक्षजनता च			"	29	,,	••••	"
मित्रशत्रुकृतपाबल्यदैर्बल्यविभागः	• > • •		,•	30	,,	***	"
शुभा नां विषयभेदे न बळाविशेष:			,,	31	23	****	354
गुरुशुक्रयो: सकल दोषप रिहारकले स्तुत्पर्थ	वाद:		"	32	"	****	355

विषयाः—		व्या.	मू.	Ą.	ग्ने.	पुटसर	इधाः.
गुर्वादिवचनं तत्र प्रमाणं	•	•••• ,,				355-	356
चन्द्रबलप्रशंसा	••	••••	,,3.	3-34,	,,	356-	359
विश्वदं तद्विवरणं		,,				356-	359
दैवज्ञलक्षणं	•	••••	,,	35	,,	••••	360
विशदं तांद्ववरणं	•	,,				360-	
प्रहावस्थाः	•	•••	,,36	5-37	,,	364-	-365
ब्रहिदीयमानानां फलानां प	रिमाणा ने		"	38	,,	365-	-366
वराहमिहिरादिवचनोपन्या	सेन विशदं मूल	5 -					
विवरणम्	••	,,				366-	-369
प्रहाणां लग्नादिभावेषु वि	रोषफला(न		,,	39	,,	****	369
प्रमाणं मूलार्थनिष्कर्षश्च		**** ;;				••••	370
प्रहाणा प्रावल्यमात्रमादार	य कमीनुष्टानप्रस	দ্ধি-					
शङ्कापारिहार:		••••	,,	40	,,		,,
महादेशाः		***	,,4	1-43	"	••••	371
मूलार्थस्य सर्वसिन्ध्वादिव	चनोपन्यासपूर्वव	ភ្នំ					
विवरणम्		,,				372-	
गुणदोषबलाबलस्य अपव	ा दा ध्यायतो निष	गर्तित्वम्	,,	44	"	****	373
गुणदे। षविप्रतिषेधे निर्णय	:	• • ••	,,	45	,,	••••	374
प्रधानकर्मणां शुभमुहूर्तेऽनु	ष्टानेऽपि तत्पूर्वी	त्तराङ्ग-					
कर्मणां यथासंभवानुष्ट		••••	"	46	,,	••••	375
तत्र भरद्वाजवचनं मानम	ζ		,,			****	22
गुणदोषबलसंख्यादि			12	47			376
गुरुवचनोपन्यासपूर्वकं मू	लविवरणम्	;;			"	376	
शुभक्रियाई:काल:		••••	12	48	,,	***	379
गुर्वादिवचनोपन्थासेन मू	्लविवरणम्	,1				379	
बलावलाध्यायोपसंहार:	मूलटाकयो:					****	380

सच्यारुयस्य विद्यामाधवीयस्याशुद्धपाठशोधनम्.

पट.	पाङ्कि.	अशुद्धम्.		शुद्धम्.	
1	9	सुमुदितम्		समुदितम्	
2	17	संसाद्येत	*504	संसाध्यते	
5	13	यजुषा	4043	थ.जुषी	
7	9	चगत्प्रसृतिः		जगत्प्र सूतिः	
"	16	निषादि		निमेषादि	
10	17	शस्व		शास्त्र	
11	5	बिभेऽति	••••	बिमेति	
14	6	देवता	••••	देवता	
20	8	रिफप		रिष्फ	
21	11	कर्मब्यय	••••	कर्मायव्यय	
22	12	संम्भव	****	संभव	
23	2	द्विष्ठे पु	****	द्विष्ठेषु	
,,	11	योगर्यो	***	योगः]]	
24	2	क्षयि		क्षीय	
25	2	त्रिद्वेक	••••	त्रिद्वयेक	
,,	12	मह	****	प्रह	
5 7	19	यत्रावि	1504	यात्र वि	
28	16	स्थिरचरो		स्थिरतरो 🔾	
30	16	चापादिपु चतुर्षु	चतुर्षुसमि ·	(च।पादिषुसामे)	चापााद्यु
				चतुर्षु त्रिकेषु.	
31	10	बुधैईष्टं		. बुधेर्दष्टम्	
"	11	कक्तुंमुप	•••	. वक्तुमुप	
"	19	म्रहणा	•••	प्रहाणा	
,,	22	वीर्यान्विश्वन्द्र	••	वीर्यान्वितश्रन्द्र	
32	4	महा		प्रहा	
		X	xiii		

xxiv

पुट.	पङ्क्रिः.	अशुद्धम्.		शुद्धः.
32	20	——— महा	••••	प्रहा
34	15	च नो		चन्द्रो
> 3	22	रोहुकत्वो	****	राहुकेत्वो
35	14	तेषामापि	• • • •	तेषामि
,,	1 6	मह		प्रह
39	2	ज्यीति		ज्योति
43	8	दिननलादि		दिगनला दि
47	9	त्वाचा:		त्वाद्या
49	21	समग्रं		समग्रं
50	5	पर्यान्ती	••••	पर्यन्ती
"	7	मह		प्र ह
56	5	20	••••	30
59	2	शक्रांभी	••••	शकाभी
,,	19	विशा खाक्षत्रस्य		विशाखानक्षत्रस्य
60	4	पुराभि	****	पुराऽभि
63	14	साभिजन्ति		सामिजिन्ति
12	18	वाऽस्त्रियां		वास्त्रियां
72	6	स्त्रमवा:		स्वभावा:
77	12	बुधसारी		बुधसौरी 🕟
78	13	49		48
,,	19	विद्यामाधवीये मुहूर्तद्	र्शने ·	विद्यामाधवीयव्याख्यायां मु- हूर्तदीयिकायां
80	5	^{जून्} यादिमहयुक्त		शून्यानि ब्रहमुक्त
13	6	मासाब्द।वसती		मासाब्दावसिती -
3,	7	6		3
85	18	र काद्थीस्मन्	••••	चकादथास्मिन्
88	12	र बिरु.प	,	रविरुप
,,	11	किमनेनांशाशी 💮		किमनेनांशाशीति
93	19	स ङ्ये	***;	संख्ये

पुट.	पङ्क्रि.	अशुद्धम्.		शुद्धम्.
94	13	गुरुणा—		 गुरुणा
		•		ग्निवसुरूपकां । या मदि · ·
				र्कसंख्यातां क्रमात्तिथ्यर्धं वि-
				धत्रिति इति पाठ: पुस्तका-
				न्तरे
104	17	स्त्वृक्षलचि (जि)	• • • •	स्तृक्षलुञ्छ
106	3	वशिमृग		वळिपृग
107	4	वारर्क्षयोगे।	••••	वारर्क्षलमयोगो
109	2	37	****	27
,,	7	तिथिका रकक्पनिम्न	••••	तिथितारककूपनाम
119	13	चक्रांबुविष्णु	••••	चऋाम्बुविष्णु
121	19	श्रमात्		श्रवणात्
129	20	स्तदा	****	स्सदा
146	22	चान्द्रतु	****	चान्द्रैस्तु
149	1	जैवाब्दस्यान्तयोः	****	जैवाब्दस्याद्यन्तयो
155	21	विशाभ्या	****	विशोध्या
161	11	द्वाया	****	द्रया
168	17	दिग्वप्यदृष्ट	****	दिग्व्याप्यदृष्ट
177	11	परिश्रहा:	****	परिमहः
183	6	भानं	•:	भानां
185	6	अत्र	****	अन्यत्र
,,	20	द्वितीय स्थश्चेदयं		द्वितीयस्थो वऋचारश्चेदयं
199	19	स्वोचस हद्रहस्थे	****	स्वोचसुहद्गृहस्थे
214	9	तास		तासां
215	7	म ध्याहाख्यास्त	••••	मध्याहाख्यस्त
232	6	कौनलके	****	कोशलके (इति मुहूर्तमा र्ता-
				ण्डे । पा)
235	21	अनुक्तभङ्गाणां	••••	अनुक्तभङ्गानां
238	10	कतव्यं	••••	कर्तव्यं
239	17	शिशिनि	****	शशिनि
V.	MADHA	AVIYAM		D

xxvi

पुट.	पङ्कि.	अशुद्धम्.		शुद्धम्. ——
256	23	गाति	****	शीत
265	15	लब	****	ਲਸ
"	20	तैलि	••••	तौलि
273	10	तस्तु	****	तैस्तु
286	8	संज्ञा		संख्या
289	4	पहवीं	••••	म हे वीं
29 0	4	न तम्बन्धिनि	****	तर बान्धान
291	ý	सुखस्थान	****	शु <i>मस्</i> थान
"5	"	अनु क्ताःशु म	••••	अनुक्ताशुभ
"	21	नाश:	****	वाच्य:
294	19	ज्ञार्त्वा	••••	ज्ञीत्वा
23	23	वराहमीहरः	****	वराह!मेहिर:
295	7	पाकाधिपा	****	पाकाधिय
2,	"	सुहृद्निष्टक	****	सु ह्दनष्टक
297	1	यातु मनु	****	यातुरनु
299	12	प्रहादेयम्	****	प्रहोदयम्
303	14	षजि	****	बीज
• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	18	साघयंचीगं	••••	साथयेद्योगं
304	21	यद्वाह्मण	****	यद्राह्मण
305	3	मीहार्तको	••••	मौह्यतिको
"	5	सूयाईय:	••••	सूर्यादय:
311	16	तदाधिक क्लोदयवेधं	••••	तद्धियफलाद्यवधं
313	19	घंटीपात्रमेव	****	घटीपात्रमेव
315	2	गम्ध	****	गन्ध
320	6	सम्मृत:		संभृत:
321	17	प्रन्थ	****	मन्य:
325	2	सा अखण्डेत्यत्राहुः	****	सा अखण्डोति । अत्राहु:
"	4	ज्ञेया	***	ज्ञेयाश्राद्धाध्ययनकर्मसु
327	3	प्रहु:	****	माहु:
33 2	15	मुक्त	**** .	युक्त

xxvii

पुट.	पङ्कि.	अशुद्धम्.	शुद्धम्.
	evertalis	 ग्भियोगः	 रधियोग:
3 36	7	गमयागः भलाज्यो	बलाव्या
"	22		स्थादेततः
337	15	स्यादेतत्	सूरिभिः
>9	17	स्रभः	स्रारामः वलावलवस्वं
338	2	बलाबलवर्त्वं	पेलापलपर्प लिप्ताभिर्ज्ञान
340	3	लिप्ता भिज्ञान	द्विष्ठी
341	1	द्विच्री	दिग्वल
348		ह ग्बलं	
350	3	मित्रप्र हव त्	मित्रगृहवत्
"	11	बलगस्तित्याह	बलमस्तीखाह
,,	17	शतृत्व	शत्रुत्व
351	12	विशेषणाभिधानार्थः	विशेषाभिषानार्थः
353	22	स्थिताय i	स्थतायां
361	22	ज्ञातात्पो	ज्ञातीत्पा
364	23	37	36
365	4	38	37
90	22	39	38
372	10	वाईरपत्ये	बाईस्पत्ये
57	23	मुघानां	बुधानां
373	6	रभावतां	रभावताम्
79	8	सिन्धी:	सिन्धी
376	6	सेयांगैश्व	संयोगैश्र
377	23	संपत् क्षेम	संपरक्षेम
378	1	भिरतिरति	भिरति
3,7	,,	वद्धचा	बु द्ध या
379) 1	दान्श	दानश
32	9	गुेणबु	गुणेषु
,,	17	स्वापवाद्यै	स्वापवाँदे
,,	21	फलापेक्षाया	फलापेक्षया

विद्यामाधवीयम्.

-come

विष्णुम्नरिविरविता तद्वचारुया मुहूर्तदीपिका च.

स्त्रस्ति श्रीगुरुपादाब्जपांसवः प्रदिशन्तु नः ।
भवन्ति भववाराशेर्ये मुखोत्तारसेतवः ॥
पुरातनाचार्यसमीरितागमान्विचार्यं तद्वाक्यशेतेस्समर्थयन् ।
उदीरितं चानुदितं समर्पयात्रिमां विचत्ते सुमुहूर्तदीपिकाम् ॥
ज्योतिश्शास्त्रमहार्णवं मतिमथा निर्मथ्य यन्त्रिमेलं
विद्यामाधवसूरिणा सुमुदितं सद्दृत्तरतोज्ज्वलम् ।
स्वालोकाय मुहुर्मुहूर्त्मुकुरं होराविलासाश्रयरश्रयो दीपयितुं यतेऽद्य तदहं वाग्मूतिमिर्मूरिभिः ॥

मुहूर्तदीपिका.

षु प्रशामनमनसा मूर्धि येनाऽर्धचन्द्रः।
प्रावन्धि स्वर्गसिन्धुप्रकटपारेलसत्सैकताऽङ्काऽनुकारी
द्वैमातृत्वे . . . ।।
भाति स्फुटं विघटिताखिलविद्यसङ्घो
विद्याधिपः स दिशतादिनशं श्रियं वः

तत्रादौ तावदाचार्यः प्रारिप्सितस्य प्रकरणस्याऽनन्तरायेण परि-समाप्तये छोके प्रसरणाय च स्वेष्टदेवता ¹ नमस्कारपूर्वकं ² जय-तिपदेन नम ² असकछज्जचोतिश्चास्त्राभिषेयाधिकरणमूत्रम्रहाधिपति सूर्यमाभिष्टौति—

जयत्यमेयांशुनिधिर्जगत्रयीप्रवोधहेतुस्साविता त्रयीमयः । न सर्वदिशित्वमितो विना भवेदितीव यं नेत्रमधत्त शङ्करः ॥ १॥

जयतीति । साविता सकलजगत्त्रमूतिशीलः सूर्यः जयति सर्वस्मादुस्कर्षेण वर्तते । सर्वतेजास्युपसर्जनीकृत्य स्वयं प्रधानतः या वर्तत इत्यर्थः । तथा च भळटः—

¹ नामस्मरणपूर्वकम. ³ अत्र मन्थपात:. ³म्रन्थपात:.

"पङ्की ¹ विशानित गणिताः प्रतिलेशमवृत्त्या पूर्वे भवेयुरियताऽप्यथवा त्रपेरन् । सन्तोऽप्यसन्त इति चेत्प्रतिभान्ति भानो-भीसाऽऽवृत्ते नभसि शीतमयूखमुख्याः" ॥ इति ॥ यद्वा —परज्जचोतीरूपस्सविता तमःपारे वर्तत इति । तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

"आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्ये उच्यते । परअचोतिस्तमःपारे सूर्योऽयं सवितेति च" ॥ इति ॥

तदिङ्क् सेवासमनासिवद्यो विभाति नारायणपूज्यपादः ।

विनद्दतुर्यत्र विमुक्तवेरे चिराय वाणीकमले समेते ॥

श्रीमन्मछः भूपः स जयित जगतीभूषणीभूतघामा
पारावारावगाढि सितिधरिश खरप्रस्फुरत्की तिपूरः ।

किं ब्रूमोऽस्य प्रतापं सुरपितचिकताद्रीन्द्ररक्षातिद्रक्षः
श्रीभर्तुर्वासभूमिर्वितरित जल्लिधर्यस्य रत्नानि नित्यम् ॥

यः क्षात्रीमनुषाङ्गणीमनुपमां ब्राह्मीमिनह्यां निजां
लक्ष्मीं साधु विभाति संश्रितजगत्सङ्कल्पकल्पद्रुमः

वैरिद्रातवधवती तद्यशः पङ्काङ्कभूषाळिकामातन्वन् वसुर्वा स्वकी तिविशद्ये लेपोज्ज्वलां सोज्ज्वलाम् ॥
वीरश्रीधर बुक्कभूपितमहासाम्राज्यलक्ष्मीकरा—
लम्बोदारचिरत्रिविक्रमरसस्त्रियम्बकालम्बनः ।
नीत्या निर्जितदेत्यिनिर्नरगुरुपोहण्डदण्डद्विषनमुण्डोत्खण्डनचण्डपण्डितकरः क्ष्मामण्डलाऽ ऽखण्डलः ॥

¹ विशन्तु.

पित्रादीनामपि सिवतृत्वसम्भवात्तेभ्योऽस्य विशेषणान्याह्—अमे-यांशुनिधिरिति । अमेयानां असङ्खचेयानां अपरिमितानां अंशूनां रश्मीनां निधिः ¹ न्यासस्थानं, अमेया अंशवो निधीयन्तेऽस्मि-निति तथा, सहस्तांशुरिति यावत् । जगत्रयीप्रवीधहेतुः त्रयाणां

शिवागमाचारविशुद्धचुञ्चः सदाऽऽत्मिवद्यापरिरब्धकन्धरः।
समस्तसम्पत्कुलंसश्रयोऽयं भूपः क्षितिं रक्षित राममृष्टाम् ॥
तदा तदास्थानगतो भुवि श्रृतः सुधीस्सुधीरो धरणीसुराश्रणीः।
गुणानुरागी गुणवत्यधीश्वरप्रसादसम्पादितसम्पदुद्भवः॥
पुरातनाचार्यसमीरितागमान् विचार्य तद्वाक्यशतैरसमर्थयन्।
उदीरितं चानुदितं समर्पयित्तमां विधत्ते सुमुहूर्तदीपिकाम्॥
क्योतिःशास्त्रमहाणेवं मतिमथा निर्मथ्य यित्तमेलं
विद्यामाधवसूरिणा समुदितं सहुत्तरत्नोज्ज्ञलम्।
स्वालोकाय मुहुर्मुहूर्त्मुकुरं होराविलासश्चियः
श्रेयो दीपयितुं यतेऽद्य तदहं वाग्मूनिमिर्मूरिमिः॥

तत्राऽऽदो तावदाचार्यः प्रारिप्सितस्य प्रकरणस्य अनन्तरायेण परिसमाप्तये छोकप्रसरणाय च स्वेष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं जयतिपदेन ।। विशेषणान्याह । अमेयांशुनिधिः.
अमेयानामसङ्ख्येयानामपरिमितानामंशूनां निधिः रश्मीनां निधिः
न्यासस्थानं । अमेया अंशवो निधीयन्तेऽस्मिन् इति
यावत् । जगत्त्रयीप्रबोधहेतुः त्रयाणां समाहारस्त्रयी जगतां त्रयी
जगत्त्रयी तस्याः प्रबोधहेतुः वैतन्योन्मेपकारणमूतः त्रैछोक्यवा
सिनां निभृतानां वैतन्योन्मेषनिमेषकारणिमत्यर्थः । यतो जगन्ति

¹ निक्षेप.

विद्यामाधवीयम्.

विष्णुमुरिवरिवता तद्वचारुया मुहूर्तदीपिका च.

स्वस्ति श्रीगुरुपादाञ्जपांसवः प्रदिशन्तु नः ।
भवन्ति भववाराशेर्ये मुखोत्तारसेतवः ॥
पुरातनाचार्यसमीरितागमान्विचार्य तद्वाक्यशेतेस्समर्थयन् ।
उदीरितं चानुदितं समर्पयित्रिमां विघत्ते सुमुहूर्तदीपिकाम् ॥
ज्योतिश्शास्त्रमहार्णवं मितमथा निर्मथ्य यित्रमेलं
विद्यामाधवसूरिणा सुमुदितं सद्दृत्तरतोज्ज्वलम् ।
स्वालोकाय मुहुर्मुहूर्तमुकुरं होराविलासाश्रियइश्रेयो दीपयितुं यतेऽद्य तदहं वाग्मूतिभिर्मूरिमिः ॥

मुहूर्तदीपिका.

षु प्रश्नमनमनसा मूर्धि येनाऽर्घचन्द्रः।
प्राबन्धि स्वर्गसिन्धुप्रकटपारेलसत्सेकताऽङ्काऽनुकारी
द्वैमातृत्वे . . . ॥
भाति स्फुटं विघटिताखिलविद्यसङ्घो
विद्याधिपः स दिशतादिनशं श्रियं वः

तत्रादौ तावदाचार्यः प्रारिष्मितस्य प्रकरणस्याऽनन्तरायेण परि-समाप्तये छोके प्रसरणाय च स्वेष्टदेवता ¹ नमस्कारपूर्वकं ² जय-तिपदेन नम ³ सकलज्जचोतिश्चास्त्रामिषयाधिकरणभूतप्रहाधिपति सूर्यमामिष्टौति —

जयत्यमेयांशुनिधिर्जगत्रयीप्रबोधहेतुस्साविता त्रयीमयः । न सर्वदिशित्विमितो विना भवेदितीव यं नेत्रमधत्त शङ्करः ॥ १॥

जयतीति । साविता सकलजगत्प्रसूतिशीलः सूर्यः जयति सर्वस्मादुत्कर्षेण वर्तते । सर्वतेजास्युपसर्जनीकृत्य स्वयं प्रधानत-या वर्तत इत्यर्थः । तथा च भळटः—

¹ नामस्मरणपूर्वकम्. ² अत्र यन्थपात:. ³यन्थपात:.

''पङ्को ¹ विशान्ति गणिताः प्रतिलेशमवृत्त्या पूर्वे भवेयुरियताऽप्यथवा त्रपेरन् । सन्तोऽप्यसन्त इति चेत्प्रतिभान्ति भानो-भीसाऽऽवृत्ते नभिस शीतमयूखमुख्याः'' ॥ इति ॥ यद्वा —परज्जचोतीरूपस्सविता तमःपारे वर्तत इति । तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

"आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्यं उच्यते । परञ्जचोतिस्तमःपारे सूर्योऽयं सवितेति च"॥ इति ॥

तदिङ्ग्सेवासमवासिविद्यो विभाति नारायणपूज्यपादः ।
विजद्धतुर्यत्र विमुक्तवेरे चिराय वाणीकमछे समेते ॥
श्रीमन्मछ १ भूपः स जयि जगतीमूषणीभूतधामा
पारावारावगाढिसितिधरशिखरत्रस्फुरत्कीर्तिपूरः ।
किं ब्रूमोऽस्य त्रतापं सुरपितचिकताद्रीनद्रसः।तिद्रसः
श्रीभर्तुर्वासभूमिर्वितरित जलिधर्यस्य रत्नानि नित्यम् ॥
यः सात्रीमनुषाङ्गणीमनुपमां ब्राह्मीमिजिह्मां निजां
लक्ष्मीं साधु विभाति संश्रितजगत्सङ्करणकरुपद्रुमः
वैरिद्रातवधवती तद्यशःपङ्काङ्कमूषाळिकामातन्वन् वसुधां स्वकीर्तिविशद्योगेज्ज्वलां सोज्ज्वलाम् ॥
वीरश्रीधरबुक्कभूपितमहासाम्राज्यलक्ष्मीकरा—
लम्बोद्यारचरित्रविक्रमरसस्त्रथम्बकालम्बनः ।
नीत्या निर्जितदेत्योनिभरगुरुपोद्दण्डदण्डद्विषनमुण्डोत्खण्डनचण्डपण्डितकरः क्ष्मामण्डलाऽऽखण्डलः ॥

 $^{^{1}}$ विशन्तु.

पित्रादीनामि सिवतृत्वसम्भवात्तेभ्योऽस्य विशेषणान्याह—अमे-यांशुनिधिरिति । अमेयानां असङ्कचियानां अपरिमितानां अंशूनां रश्मीनां निधिः [!] न्यासस्थानं, अमेया अंशवो निवीयन्तेऽस्मि-विति तथा, सहस्तांशुरिति यावत् । जगत्रयीप्रवोधहेतुः त्रयाणां

शिवागमाचारविशुद्धचुञ्चः सदाऽऽत्मविद्यापरिरब्धकन्थरः।
समस्तसम्पत्कुलसंश्रयोऽयं भूपः क्षितिं रक्षति राममृष्टाम् ॥
तदा तदास्थानगतो मुवि श्रुतः सुधीस्सुधीरो धरणीसुराग्रणीः।
गुणानुरागी गुणवत्यधीश्वरप्रसादसम्पादितसम्पदुद्भवः॥
पुरातनाचार्यसमीरितागमान् विचार्य तद्वाक्यशतेरसमर्थयन्।
उदीरितं चानुदितं समर्पयित्तमां विधत्ते सुमुहूर्तदीपिकाम्॥
उयोतिःशास्त्रमहाणवं मतिमथा निर्मध्य यित्रमेलं
विद्यामाधवसूरिणा समुदितं सहृत्तरत्नोज्ज्ञलम्।
स्वालोकाय मुहुर्मृहूर्त्मुकुरं होराविलासिश्रयः
श्रेयो दीपयितुं यतेऽद्य तदहं वाग्मूनिभिर्मूरिभिः॥

तत्राऽऽदौ तावदाचार्यः प्रारिप्सितस्य प्रकरणस्य अनन्तरायेण परिसमासये लोकप्रसरणाय च स्वेष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं जयतिपदेन ।। विशेषणान्याह । अमेयांशुनिधिः.
अमेयानामसङ्ख्येयानामपरिमितानामंशूनां निधिः रश्मीनां निधिः
न्यासस्थानं । अमेया अंशवो निधीयन्तेऽस्मिन् इति
यावत् । जगत्त्रयीप्रबीधहेतुः त्रयाणां समाहारस्त्रयी नगतां त्रयी
नगत्त्रयी तस्याः प्रबोधहेतुः चैतन्योन्मेषकारणभूतः त्रेलोक्यवा
सिनां निभृतानां चैतन्योन्मेषनिमेषकारणिमत्यर्थः । यतो जगन्ति

¹ निक्षेप.

समाहारस्त्रयी नगतां त्रयी नगत्रयी तस्याः प्रबोधहेतुः चैत-न्योन्मेषकारणमूतः, त्रैलोक्यवासिनां मूतानां चैतन्योन्मेषनिमेषका-रणमित्यर्थः । यतो नगन्ति सूर्योस्ते निस्संज्ञानि, पुनस्त¹दुद्रमे संज्ञां प्रपद्यन्ते । तथा च श्रूयते—

सूर्यास्ते निस्संज्ञितानि पुनस्तदुद्धमे संज्ञां प्रपद्यन्ते तथाच श्रूयते 'योऽसौ तपन्नुदेति । स सर्वेषां मूतानां प्राणानाद्योदेति । असौ योऽस्तमेति । स सर्वेषां मूतानां प्राणानादायास्तमेति ' इति । असौ योऽस्तमेति । स सर्वेषां मूतानां प्राणानादायास्तमेति ' इति । अयोमयः वेदत्रयमयः । ऋग्यनुस्सामिभः कल्पितमण्डलाद्यात्मा । तथाच सूर्यासिद्धान्ते ।

ऋचो ऽस्य मण्डलं सामान्यस्य मूर्तिर्थजूषि च । त्रयीमयो ऽयं भगवान् कालात्मा कालकाद्विमुः । इति ॥ तथाच श्रूयते ।

'ऋग्म्यो जातां सर्वेशो मूर्तिमाहुः सर्वो गतियेजुषा हैव शश्वत्। सर्वं तेजः सामरूप्यं हि शश्वत् सर्वं होदं ब्रह्मणा चैव मृष्टम्।

इति । शिवस्यापि सर्वज्ञत्वमेतिव्वन्धनमित्याह । इतः सिवतुः विना स्वकीयं सर्वदार्शित्वं सर्वज्ञत्वमन्यथा न भवे-दिति मत्वेव स्वनाम्नोऽन्वर्थताऽऽपादनाय शङ्करः शिवः सूर्यं नेत्रभूतं घृतवान् । शिवस्य दक्षिणेनेत्रं सूर्य इति प्रसिद्धिः । शिव-स्य सर्वज्ञत्वं सूर्यनेत्रधारणात् अन्वर्थमासीदित्युत्प्रेक्षा अन्योऽ-प्यर्थोऽस्ति ॥

यथा मञ्चाः क्रोशन्तीति लक्षणया मञ्चस्थाः पुरुषा इति गम्यते तथेहाऽपि सवितेति सवितृमण्डलमध्यस्थः पुरुषो गृहाते।

¹ तदुद्भवे.

"योसौ तपन्नुदेति । स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायो-देति । असौ योऽस्तमेति । स सर्वेषां भूतानां प्राणानादाया-स्तमेति" इति ।

त्रयीमयः वेदत्रयमयः ऋग्यजुस्सामाभिः कल्पितमण्डलाद्यात्मा । तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

तत्र अमेयश्रासावंशुनिधिश्रेति द्वन्द्वः । अमेयः प्रमाणापारिच्छेद्यः अंशुनिधिः तेनस्समूहः प्रकाशस्त्रप इत्यर्थः । जगत्त्रयीति विश्वं गृह्यते । प्राति स्वात्मभावेन पूर्यतीति जगत्त्रयीप्रः, ताद्वग्वोधस्य ज्ञानस्य हेतुः निमित्तं विश्वपूरणीसंविज्ञिमित्तमूतः तत्प्रयोजक इत्यर्थः । विश्वात्मभावज्ञानपद इति वा । त्रयीमयः त्रिषु कालेषु त्रिवेदमयः । तथाच श्रूयते—

'ऋग्मिः पूर्वीहे दिनि देन ईयते, यजुँनेदे तिष्ठति मध्य अहः । सामनेदेनास्तमये महीयते, नेदैरज्ञान्य स्त्रिमिरेति सूर्यः ।

इति । यदा गुणत्रयात्मा यताऽप्रीवामौ सूर्याद्मिन्नौ स्तः । तथा च श्रूयते—

'उद्यन्तं (वा) वाऽऽदित्यमाभिरनुसमारोहित ' सुषुम्नः सूर्ये रश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व, इति ।

अपिच । इतः सावित्रान्तेत्रात् विना अन्यनेत्रेण सर्वद-शित्वं न सम्भवेदिति यतो हेतो रूपविषयादिकिया चक्षुषा साध्यते चक्षुश्च स्वाधिभूततेजस्सान्निधानेनैव स्वक्रियायां व्याप्रियते स दृष्ट्यारोऽपि चक्षुर्तियमितप्रदेशे सम्भवेत् न तु वि-प्रकृष्टमात्रे कृत एव सर्वपदार्थदार्शत्वं, तथासाते सर्वप्रकाशक- "ऋवे।ऽस्य मण्डलं सामान्यस्य मूर्तिर्थजूंषि च" त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद्धिमुः॥ तथा च श्रूयते—

त्वान्नेत्रस्य विश्वमिष चक्षुनिमित्तमेवेति सर्वत्र द्रग्वयापारस्संभवे -दित्यभिप्रायेण यं नेत्रमञ्जतः । इवराव्द उत्प्रेक्षाव्यक्षकः । स-वितुस्तेनस्त्रयीमयत्वाच्छिवस्य नेत्रत्रय्यपि तद्वयेऽपि १ युज्यते । 'चन्द्र-सूर्यात्रयस्तस्य नेत्राण्यासन् महात्मनः ' इति । अनेन १ सूर्यास्तद्वच-नेनैव ज्योतिश्शास्त्रं १ ज्योतिस्तम् ।

तथा नास्यार्थमाहुः—सिवता चगत्त्रसूतिः कालो जयित । विश्वं विजयते । सर्वोन् परामावयतात्यर्थः । यथोक्तं—

> कालः पत्रित भूतानि कालः पिबति शास्ति च । कालस्मर्वास्थानभूति... काल मतिवर्तत इति ।

स चामेयांश्वानिधिः अपरिमितानामंशूनां निधिः विष्फुलि-ङ्गवदवभासमानानां हायनायनर्तुमासिदवसाद्यवयवानां स्थानभूतः॥ यथोक्तं विष्णुपुराणे।

> कलाकाष्ठानिषादिदिनत्वयनहायनैः । कालस्वरूपो भगवानपरो हरिरव्ययः ॥

इति । यद्वा । अमेयश्चासावंशुनिधिश्चेति द्वन्द्वसमासः । अमेयः प्रमाणापरिच्छेदाः अनाद्यन्त इत्यर्थः॥ यथोक्तं विष्णुपुराणे ।

अनादिर्भेगवान्कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते । अन्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गोस्थित्यन्त संयमाः ॥ इति ॥ तथा अंशुनिधिः अंशूनां अंशुमतां सूर्योदीनां ग्रहाणां निधिरा- ऋग्म्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः सर्वागितिर्यर्जेषि हैव शश्वत् । सर्वं तेजस्तामरूप्यं हि शश्वत् सर्वे होदं बद्मणा चैव मृष्टम् ॥इति ॥

शिवस्यापि सर्वज्ञत्वमेतान्निवन्धनमित्याह—इतः सवितुः वि-ना स्वकीयं सर्वदिशित्वं सवर्ज्ञत्वं अन्यथा न भवेदिति मत्वेव स्वनाम्रोऽ-न्वर्थतापादनाय शङ्करः शिवः सूर्यं नेत्रभूतं घृतवान् । शिवस्य

धारभूतः, यतस्तेषां सञ्चारः कालाश्रयः प्रवर्तते । अनाद्यन्तोऽपि प्रहगत्या परिच्छिन्न इत्यर्थः। तथाचार्यभटः—

युगवर्षमासदिवसाः समं प्रवृत्तास्तु वैत्रशुक्कादेः । कालोऽयमनाद्यन्तो प्रहमैरनुमीयते क्षेत्रे ॥ इति ॥

तथाच जगत्रयस्य च स्वकृतशुभाशुभसंज्ञानस्य हेतुः, यतः सर्वेषां प्रादुर्भावसमयादेव शुभाशुभज्ञानमुपल्लभयते । यद्वा जगतां त्रय्युकक्रमावगमस्य हेतुः, एतत्प्रतिपादकशास्त्रस्य वेदाङ्गत्वात् ॥ यथोकम् श्रीपतिना—

कतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते कतवो निरुक्ताः । शास्त्रादमुष्मात् किल कालबोधो वेदाङ्गताऽमुष्य ततः प्रसिद्धा॥इति॥ त्रयीमयः भूतभाविभवत्तोपाधिभेदत्रयवान् । वेदस्वस्विणः शिवस्य ज्योतिश्शास्त्रनेत्रत्वेन हेतुत्वमुत्प्रेक्षते । सर्वान् दर्शान् दर्शपूर्णमा-सानाचष्ट इति सर्वद्शीं, तद्भावः सर्वदर्शित्वं, तादितः काला-द्विना न स्यादिति • मत्वेव दर्शपूर्णमासाद्याभिधानसिद्धये शंकरः वेदस्वस्पी शिवः ज्योतिश्शास्त्रमयं नेत्रमधत्त वेदस्य यज्ञप्रवृत्ति-सिद्धचर्थं ज्योतिश्शास्त्रं नेत्रीकृतामित्यर्थः । तथाच श्रीपतिः— समाहारस्त्रयी नगतां त्रयी नगत्रयी तस्याः प्रवोधहेतुः वैत-न्योन्मेषकारणभूतः, त्रैळोक्यवासिनां भूतानां वैतन्योन्मेषिनमेषका-रणमित्यर्थः । यतो नगन्ति सूर्यास्ते निस्संज्ञानि, पुनस्त¹दुद्रमे संज्ञां प्रपद्यन्ते । तथा च श्रूयते—

मूर्यास्ते निस्संज्ञितानि पुनस्तदुद्गमे संज्ञां प्रपद्यन्ते तथाच श्रूयते 'योऽसौ तपन्नुदेति । स सर्वेषां भूतानां प्राणानादयोदेति । असौ योऽस्तमेति । स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायास्तमेति ' इति । त्रयीमयः वेदत्रयमयः । ऋग्यजुस्सामभिः कल्पितमण्डलाद्यात्मा । तथाच सूर्यासिद्धान्ते ।

ऋचो ऽस्य मण्डलं सामान्यस्य मूर्तिर्यनूषि च । त्रयीमयो ऽयं भगवान् कालात्मा कालकाद्दिभुः । इति ॥

तथाच श्रूयते ।

'ऋग्म्यो जातां सर्वेशो मूर्तिमाहुः सर्वो गितियेजुषी हैव शश्वत्। सर्वं तेजः सामरूप्यं हि शश्वत् सर्वं होदं ब्रह्मणा चैव सृष्टम्।

इति । शिवस्यापि सर्वज्ञात्वमेतित्तवन्धनमित्याह । इतः सिवतुः विना स्वकीयं सर्वदार्शित्वं सर्वज्ञत्वमन्यथा न मवे-दिति मत्वेव स्वनाम्रोऽन्वर्थताऽऽपादनाय शङ्करः शिवः सूर्यं नेत्रमूतं धृतवान् । शिवस्य दक्षिणनेत्रं सूर्यं इति प्रसिद्धिः । शिव-स्य सर्वज्ञत्वं सूर्यनेत्रधारणात् अन्वर्थमासीदित्युत्प्रेक्षा अन्योऽ-प्यर्थोऽस्ति ॥

यथा मञ्चाः क्रोशन्तीति लक्षणया मञ्चस्थाः पुरुषा इति गम्यते तथेहाऽपि सवितेति सवितृमण्डलमध्यस्थः पुरुषो गृह्यते । "योसौ तपन्नुदेति । स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायो-देति । असौ योऽस्तमेति । स सर्वेषां भूतानां प्राणानादाया-स्तमेति" इति ।

त्रयीमयः वेदत्रयमयः ऋग्यजुस्सामाभिः कल्पितमण्डलाद्यात्मा । तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

तत्र अमेयश्रासावंशुनिधिश्रेति द्वन्द्वः । अमेयः प्रमाणापारिच्छेद्यः अंशुनिधिः तेनस्समूदः प्रकाशरूप इत्यर्थः । नगत्त्रयीति विश्वं गृह्मते । प्राति स्वात्मभावेन पूर्यतीति नगत्त्रयीपः, तादृग्वोधस्य ज्ञानस्य हेतुः निमित्तं विश्वपूरणीसंविज्ञिमित्तभूतः तत्प्रयोजक इत्यर्थः । विश्वात्मभावज्ञानपद इति वा । त्रयीमयः त्रिषु कालेपु त्रिवेदमयः । तथाच श्रूयते—

'ऋग्मिः पूर्वोह्ने दिनि देव ईयंते, यजुर्वेदे तिष्ठति मध्य अहः । सामवेदेनास्तमये महीयते, वेदैरज्ञान्य स्त्रिभिरेति सूर्यः ।

इति । यहा गुणत्रयात्मा यतोऽग्नीषामौ सूर्याद्मिन्नौ स्तः। तथा च श्रूयते—

'उद्यन्तं (वा) वाऽऽदित्यमग्रिरनुसमारोहित ' सुषुम्नः सूर्य रश्मिश्रन्द्रमा गन्धर्व, इति ।

अपिच । इतः सावित्रान्नेत्रात् विना अन्यनेत्रेण सर्वद्-र्शित्वं न सम्भवेदिति यतो हेतो रूपविषयादिक्रिया चक्षुषा साध्यते वक्षुश्र स्वाधिभूततेजस्सान्निधानेनैव स्वक्रियायां व्याप्रियते स द्रग्व्यारोऽपि चक्षुर्तियमितप्रदेशे सम्भवेत् न तु वि-प्रकृष्टमात्रे कृत एव सर्वपदार्थदार्शित्वं, तथामाने मर्वप्रकृष्टमा "ऋने। ऽस्य मण्डलं सामान्यस्य मूर्तिर्यजूषि च" त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद्धिमुः॥ तथा च श्रूयते—

त्वाक्षेत्रस्य विश्वमिष चक्षुनिमित्तमेवेति सर्वत्र दृग्वयापारस्संभवे दित्यभिप्रायेण यं नेत्रमधत्त । इवशब्द उत्प्रेक्षाव्यक्षकः । स-वितुरेतजस्त्रयीमयत्वाच्छिवस्य नेत्रत्रयपि तहूयेऽपि श्युज्यते । 'चन्द्र-सूर्याप्रयस्तस्य नेत्राण्यासन् महात्मनः ' इति । अनेन शसूर्यास्तह्य-नेनैव ज्योतिश्शास्त्रं १ ज्योतिस्तम् ।

तथा नास्यार्थमाहुः—सिवता चगत्त्रसूतिः काल्रो जयि । विश्वं विजयते । सर्वोन् पराभावयतीत्यर्थः । यथोक्तं—

> कालः पचिति भूतानि कालः पिनित शास्ति च । कालस्सर्वास्थानभूति... काल मतिनर्तत इति ।

स चामेयांशुनिधिः अपरिमितानामंशूनां निधिः विष्फुल्डि-ङ्गवदवभासमानानां हायनायनर्तुमासिदवसाद्यवयवानां स्थानभूतः॥ यथोक्तं विष्णुपुराणे।

> कलाकाष्ट्रानिषादिदिनर्त्वयनहायनैः । कालस्वरूपे भगवानपरो हरिरव्ययः ॥

इति । यद्वा । अमेयश्चासावंशुनिधिश्चेति द्वन्द्वसमासः । अमेयः प्रमाणापरिच्छेदाः अनाद्यन्त इत्यर्थः॥ यथोक्तं विष्णुपुराणे ।

> अनादिभैगवान्कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते । अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्त संयमाः ॥ इति ॥

तथा अंशुनिधिः अंशूनां अंशुमतां सूर्योदीनां ग्रहाणां निधिरा-

ऋग्म्यो ं जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः सर्वागतिये जूँषि हैव शश्वत् । सर्वं तेजस्सामरूप्यं हि शश्वत् सर्वे होदं बद्मणा चैव सृष्टम् ॥इति ॥

शिवस्यापि सर्वज्ञत्वमेतानिबन्धनिमत्याह—इतः सवितुः वि-ना स्वकीयं सर्वदिशित्वं सवर्ज्ञत्वं अन्यथा न भवेदिति मत्वेव स्वनाम्रोऽ-न्वर्थतापादनाय शङ्करः शिवः सूर्यं नेत्रभूतं धृतवान् । शिवस्य

धारभूतः, यतस्तेषां सञ्चारः कालाश्रयः प्रवर्तते । अनाद्यन्तोऽपि प्रहगत्या परिच्लिन्न इत्यर्थः । तथाचार्यभटः—

> युगवर्षमासदिवसाः समं प्रवृत्तास्तु वैत्रशुक्कादेः । कालोऽयमनाद्यन्तो प्रहमैरनुमीयते क्षेत्रे ॥ इति ॥

तथाच जगत्रयस्य च स्वरुतशुभाशुभसंज्ञानस्य हेतुः, यतः सर्वेषां प्रादुर्भावसमयादेव शुभाशुभज्ञानमुपलम्यते । यद्वा जगतां त्रय्युकक्रमावगमस्य हेतुः, एतत्प्रतिपादकशास्त्रस्य वेदाङ्गत्वात् ॥ यथोकम् श्रीपतिना—

क्रतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ताः । शास्त्रादमुष्मात् किल कालबोधो वेदाङ्गताऽमुष्य ततः प्रसिद्धा॥इति॥

त्रयीमयः भूतभाविभवत्तोपाधिभेदत्रयवान् । वेदस्वस्विणः शिवस्य ज्योतिकशास्त्रनेत्रत्वेन हेतुत्वमुत्प्रेक्षते । सर्वोन् दर्शान् दर्शपूर्णमा-सानाचष्ट इति सर्वेदर्शी, तद्भावः सर्वदार्शीत्वं, तदितः काला-द्विना न स्यादिति मत्वेव दर्शपूर्णमासाद्याभिधानसिद्धये शंकरः वेदस्वस्वपी शिवः ज्योतिकशास्त्रमयं नेत्रमधत्त वेदस्य यज्ञप्रवृति-सिद्धचर्यं ज्योतिकशास्त्रं नेत्रीकृतामित्यर्थः । तथाच श्रीपतिः—

दक्षिणनेत्रं सूर्य इति हि प्रासिद्धः । शिवस्य सर्वज्ञत्वं सूर्यने- त्रधारणादन्वर्थमासीदिति उत्प्रेक्षा ।

अथाडिमिधेयं प्रतिजानीतेऽन्सकुळकेन श्लोकत्रयेण ।

छन्दः पादौ शबदशास्त्रं च वक्त्रं कलपः पाणी ज्योतिषं चक्षुषी च। शिक्षा त्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षट् च ॥ इति ॥ यद्वा सवित्रोदेश्वाराभिषायि शास्त्रं सावितेत्युच्यते । ज्योति-रशास्त्रमुल्कष्टतया जयति यतः प्रत्यक्षफलिमः शास्त्रं । यथोक्तं ब्रह्मयामळे—

> ज्योतिषां परमं ज्ञानं सद्यः प्रत्ययकारणम् । प्रत्यक्षं सर्वेविद्यानां उत्तमं मुक्तिमुक्तिदम् ॥

इति । ज्योतिश्वशास्त्रमप्यगेयस्य अव्यक्तादिगणितस्य अंशो रश्म्यादि दशागणितस्य च स्थानं जगतां शुभाशुभिष्ठशाख्यफलत्रयस्य ज्ञापकं । तथा गणितहोरासंहिताख्यस्कन्यत्रयात्मकम् । तथाच नारदः—

> सिद्धान्तसंहिताहोरारूपस्कन्धत्रयात्मकम् । वेदस्य निर्मेछं चक्षुः ज्योतिश्शास्त्रमनुत्तमम् ॥

इति । तथा सर्वस्मिन् देशे काले वा दिशत्वं ज्ञानवस्वं ज्योति-श्शास्त्राद्विना अन्यशास्त्रान्न सम्भवेदिति । अतो ज्योतिश्शास्त्रं वेदेन नेत्रं मुख्यमङ्गं वृतं, यतः सर्वस्मादङ्गान्नेत्रं मुख्यमाहुः तथाचोक्तम्—

मुखमर्थं शरीरस्य सर्वं वा मुखमुच्यते ।
तत्रापि नासिका श्रेष्ठा श्रेष्ठे तत्रापि चक्षुषी ॥ इति ॥
तस्मात् षडङ्गेषु ज्योतिषमेत्र प्रयानम् । यथोक्तं श्रीपतिना—

VIDYA. 2

स्वकीयशास्त्रे बहुशोऽपशब्दानमी वदन्तीति जगत्प्रसिद्धम्।सुदुस्सहं तत्परिवादशस्यं मौहूर्तिका-नामपहर्तुकामः॥२॥ वित्तिष्ठवागीश्वरगार्ग्यमुख्यै-महर्षिभिविस्तरतः कृतेषु । शास्त्रेषु बुद्ध्या परि-गृह्य सारं लोकोपकाराय च कीर्तये च॥३॥ श्रुताऽखिलव्याकरणोऽहमुनमैः पदैरदोषैः कृतपद्य गुम्भनम् । विचित्रवृत्तं लघु सम्मतं सतामिदं विधास्यामि मुहूर्तदर्शनम्॥४॥

अमी मौहूर्तिकाः ज्योतिर्विदः स्वकीयशास्त्रे स्वकीयेषु मुहूर्तप्रतिपादकशास्त्रेषु अपशब्दान् असाधून् व्याकरणादिलक्षण विरुद्धान् शब्दान् बहुशः पुनः पुनः वदन्तीति जगत्प्रसिद्धं। तथाचाहुः—

'वैयाकरणिकरातैरपशब्दमृगाः क्र यान्ति सन्त्रस्ताः । नटविटमटगणकमिषक्ब्रोत्रियमुखकन्दराणि यदि न स्युः"॥

वेदस्य चक्षुः किल शास्त्रमेतत् प्रधानताऽङ्गेषु ततोऽस्य याता । अङ्गेर्यतोऽन्यः परिपूर्णमूर्तिः चक्षुर्विहीनः पुरुषो न कश्चित् ॥

इति । एवं ज्योतिश्शास्त्रस्य वेदाङ्गत्वं, तत्रापि प्राधान्यं प्रतिपाद्य अथ प्राक्तनप्रोक्तेषु शास्त्रप्वेव सत्सु किमन्यप्रकरणप्रणयन प्रयत्नेत्याशङ्कामनवकाशयन् तेम्यो विशेषमुन्मेषयन् स्वाभिधेयं प्रतिजानिति अन्त्यकुळकेन क्ष्ठोकत्रयेण । इति । जगत्र्यातमत एव मुदुस्सहं अत्यसहां । तथा खळु किचत् स्वलनं महते न देशिया । यतः किचत् महाकवयोऽपि स्खलन्ति । एते तु पदे पदे स्खलन्तीति जगत्त्रासिद्धस्यापवादस्याऽत्यसहाता स्योदेव । तथा चाहुः—

''विद्वान् विभेऽति पुरुषस्सदा लोकाऽपवादतः'' इति ।

मौहूर्तिकानां ज्योतिर्विदां सम्बन्धि तत् परिवादशरणं अत्यसहा-लात् परिवाद एव शरुयत्वेन रूप्यते । तत् अपशब्दकथनजातं अपवादशरुयं अपहर्तुकामः निरपशब्दकरणं प्रकरणं प्रणीय शरुय-मिव तमपवादमुद्धतुमनाः यथा यदि ज्योतिर्विदोऽपशब्दान् प्रयुक्षते तत् किमिह विद्यामाधवीये प्रवन्धे नापशब्दाः प्रादुर्भवन्ति । न-न्विहापि हिनुकद्शिक्षत्केद्रेक्षाणादयः कथं व्युत्पाद्यन्ते । अमी तु संज्ञा शब्दाश्चतुर्थादिस्थानाभिधायितया रूद्धत्वान्न व्युत्पत्तिमपेक्षन्ते । ये पुनर्गीणास्त एव प्रकृतिप्रत्ययविभागकरूपनया व्युत्पाद्यन्ते यथा खेचरादयः । तस्मात् ज्योतिर्विद्योऽपशब्दान् वदन्तीति नायं नियमः ।

नन्वपराब्द्वन्यपि पूर्वशास्त्राण्यनाश्चित्य ज्योतिश्शास्त्रस्य स्वातन्त्रचेण प्रथक्षथनं निषिध्यते । तथाचोक्तं—

आयुर्वेदं चिकित्सां चै ज्ये तिषं धर्मनिर्णयम् । विना शास्त्रण यो ब्र्यात्तं विद्याद्भ्यातकम् ॥ इति ॥ अपि च नैकसंज्ञाप्रचुरस्य ज्योतिश्शास्त्रस्य सङ्ख्यासंज्ञाप्राधान्याञ्जि-कृविभक्तचादिव्यत्ययो न दुष्यति । तथा चास्ति—

> ' आख्यातसंहितालिङ्गविमक्तिन्यत्ययादिकम् । न दृष्यं तद्शिष्यं हि मानां संज्ञाप्रमाणतः '' ॥ इति ॥

तदसत् । यद्यपीह सङ्ख्यादिप्राधानयिमष्टं, तथाऽपि तद्वाचकानां शब्दानां तत्र रूडत्वाछिङ्गविभक्तचादिकमपीष्टमेव । अतस्तद्वचस्यय स्सर्वेत्रापि दृष्यत एवेति ॥ स्यातन्त्रंपण विराचितमिदं त्रकरणमनादर-णीयमित्याशङ्कायामाह--वसिष्ठेत्यादि—

विसष्ठवागीश्वरगार्थभारद्वाजनारदात्रिप्रभृतिभिर्महर्षिःभिर्विस्तरतः गुणदोषतदपवादानामेकत्रेव सङ्ग्हणं विना प्रतिक्रियं पुनः पुनस्तेषां प्रवचनं विस्तरतस्तथा कृतेषु बाईस्पत्यादिषु पूर्वशास्त्रेषु सारं वि स्तरपुनरुक्तादि फल्गु परिहाय सारम् (तमुपादेयां) तां शं स्वबुद्धचा परि गृह्म सङ्गह्म श्रुताखिलव्याकरणः श्रुतान्यखिलानि व्याकरणानि येन स तथा अधीतपाणिनीयशाकटायनादिशब्दशास्त्रो विद्यामाधव नामा अहं इदं वक्ष्यमाणं मुहूर्तदर्शनं नाम प्रकर्णं टर्यन्ते प्रकाश्यन्ते मुहूर्तान्यनेनेति मुहूर्तदर्शनं मुहूर्तानां प्रदर्शनादन्वर्थ-मित्यर्थः । विधास्यामि करिष्यामि । मुहूर्तदर्शनं नाम प्रकरणं मया करिप्यत इत्यर्थः । किमर्थोऽयं संग्रह इत्यत्राह-लोकोप-काराय च कीर्तये चेति । लोकाः शुभकंमीचिकीर्षवः तेषां तदु-चितकालकथनेनोपकर्तुम् । यहा लोकाः लमकालमादिदिशवो मौहू-र्तिकास्तेषां परस्परिवसंवादिविविधमुनिमतप्राबल्यानिश्चयकातरचेतसां छ-प्रकालमानेतुमादेष्टुमप्यपयाभुवतां, अपि च बहुप्रनथपठनधारणपर्या-लोचनायासमसहमानानामलप्रयम्थेन मुनिमताविप्रतिषेध विषये मुनि मतप्राबल्यकथनेन परोपकारं कर्तुं चिरस्थायियशःफलाय म, चश्रब्दात् पुरुषार्थचतुष्टयाऽवासये प्रीतये चायं सङ्ग्ह इत्यर्थः। तथाचोक्तं—

[&]quot;एकर्शब्द्सम्यग्ज्ञातस्मुष्टु प्रयुक्तस्वर्गे छोके कामध्यमवि । "

इति । उक्तं च भोजराजेन--

" निर्देशिं गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम् । इह लोके कावेः कुर्वन् प्रीतिं कीर्ति च विन्दति" ॥ इति । सापशब्दानां पूर्वश्वास्त्राणां सङ्गहस्स तादृश एव । यथा मृदुपा-दाना यटी मृदेवेत्यत्राह—उत्तमेः प्रमादमाधुर्यादिगुणयुक्तैः प्राप्ति-द्वेशे अद्योपेः असाधुत्वाऽनर्थक्यादिदोषरहितैः अक्किष्टेर्वा पदैः कृतप्रचान्मनम् विचित्रवृतं विविधानि विचित्राणि वृत्तानि श्रवणम् नोहराणि मात्रासमाधसमपादादीनि यत्र तत्तथा । नानाविधरमणीयवृत्तमित्यर्थः । लघु प्रन्थतोऽल्पं तथाऽपि पत्रकाशिताभिधय साकल्याभिधेयत्या निर्देशितया गुणवत्तया च विदुषां सम्मतं सम्यग्रिभमं इदं मुदूर्वदर्शनमिति सम्बन्धः । अनेन सत्सम्मतत्वेनास्य गुणाधिक्यमुक्तम् । यथाऽऽह काळिदासः—

"तं सन्तरश्रोतुमहीन्त सद्सद्घाकिहेतवः ।
हिम्नस्तं छक्ष्यते ह्यमौ विद्याद्धिरश्चामिकाऽपि वा ॥" इति ।
नन्तत्राधिकारिसम्बन्धाभिषेयप्रयोजनानि वक्तव्यानि तान्यप्य
त्रोकान्येव यथा—ज्योतिर्ज्ञानकामोऽधिकारी । स च छोकोपकारायेखत्र
छोकशब्देनोक्तः । वेदेन महाङ्गाङ्गिभावः सम्बन्धः, स च प्रागुक्तः।
शुभक्तियाकाछानिरूपणमभिवेयं, तच्च मुहूर्तदर्शनमित्यनेनोक्तम् । जगतां शुभज्ञानं विदुषा पुमर्थचतुष्टयावासिश्च प्रयोजनम् । तच्चछोकोपकाराय च कीर्तये वेत्यनेनोक्तम् । उक्तं च नारदेन ——

" अस्य शास्त्रस्य सम्बन्धं वेदाङ्गमिति कीर्तितम् । अभिवेयं च जगतश्शुमाऽशुभनिस्कपणम् ॥

¹ प्रकाशिताभिधेयसाकल्यतया,

यज्ञाध्ययनसङ्कान्तिश्चेह षोडशकर्मणाम् । प्रयोजनं च विज्ञेयं तत्तत्कालविनिर्णयः ॥ विनेतद्खिलं प्रोक्तं स्मार्तं कर्मं न सिद्धचिति । तस्माज्जगद्धितार्थाय ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ " इति ।

ननु चात्रादौ नगणप्रयोगः कथं " नस्सूर्यो रुजमातनोति '' इति स्मर्णात् । उच्यते-—जगणस्य सूर्यदैवताकत्वादस्य शास्त्रस्य तचाराऽभिधायित्वात् साधुरिति ।

अभिषयं प्रतिज्ञाय सङ्केतप्रचुरस्यास्य शास्त्रस्यार्थावगतिः स्तत्तत्सङ्केतावगमाटते न स्यादिति संज्ञां वक्तुमुपक्रमते—

क्रमेण राशिग्रहतारकादेस्संज्ञां वयं तावदिहा-भिदध्मः । शास्त्रार्थवोधः खलु तस्य तस्य संज्ञा-मविज्ञाय जनस्य न स्यात् ॥ ५ ॥

इह शास्त्रे वयं तावत् आदे। क्रमेण राशिष्रहतारकादेः राशयो मेषाद्या लग्नादिभावाश्च, ग्रहाः सूर्याद्याः, तारका आधिन्याद्याः, आदिशब्देन तिथिवारयोगकरणानि गृह्यन्ते । राशिन्मावग्रहनसत्रतिथिवारयोगकरणानां संज्ञां अभिद्ध्यः ब्रूमः । "आत्मीन गुरुषु बहुवचनं" इति आत्मैकत्वेऽपि बहुवचन प्रयोगः । किमर्थं संज्ञाभिधानामेत्यत आह—शास्त्रार्थवोद्यः शास्त्रार्थानां राश्यादीनां बोधः शास्त्राभिधयराश्याद्यवगितः श्रोतुः जनस्य तस्य तस्य राश्यादेसांज्ञां सङ्केतनाम अविज्ञाय न स्यात् खलु यस्मात् तस्मात् शास्त्रार्थावगमाय संज्ञाऽभिधीयत इत्यर्थः । अथवा गुरुपदेशाद्यते जनस्य काव्यादिवत् स्विध्याऽधीयानस्य

तत्संज्ञामविदित्वा एतच्छास्त्रार्थबोधो न भवतीति ज्यातिशास्त्रस्य ।।चार्योपदेशगम्यतां प्रतिपादियतुं संज्ञा अभिधीयत इत्यर्थः ।

अथ राशीनां संज्ञामाह—

अजाख्यमाद्यं प्रवद्दान्त मेषं राशिवृषो गोगृषभाभिधानः। वीणायमाख्यं मिथुनं नृयुग्मं
स्यात्कर्कटः कर्कटकश्च कर्की ॥६॥ सिंहं च
क्रन्यां च निजाऽभिधानैः प्राहुस्तुलां तौलिवाणिक्पगृभ्याम्। कीटालिसंज्ञामथ वृश्चिकस्य धनुर्हयाङ्गं
च धनुर्घरं च॥७॥ मृगश्च नको मकरो मृगास्यो
हो कुम्भमीनौ निजनामवाच्यौ। पर्यायनामानि
वदन्ति चैषां कथ्यन्त एते प्रथमादिशब्दैः ॥ ८॥

आद्यं द्वादशराश्यात्मके क्षेत्रे प्रथमं राशिं द्वादशमागं अजाल्यं अजस्य छागस्याल्येवाल्या यस्य तं अजाभिधानवा-च्यमित्यर्थः। मेषं च मेषाल्यं च वदन्ति। केचिदेवं योजयन्ति मेषं राशिमाद्यं अजाल्यं च वदन्ति। मेषस्याद्यमंज्ञानं वृषादीनां द्वितीयादिसंज्ञानस्योपलक्षणमिति। तदसत्। यतो वक्ष्यति 'कथ्यन्त एते प्रथमादिशब्देः' इति। तेन पीनरुक्त्यं प्रसज्येत। तस्मात् प्रा-क्तमेव व्याल्यानं साध्विति। वृषो द्वितीयो राशिः गोवृषमाभिधानः गौश्र वृषमश्र गोवृषमो तयोरभिधानमस्येति। यद्वा—गोवषमशब्दाविभयाने वाचकावस्येति बहुवीहिः, गोवृषमशब्दावाच्य

इत्यर्थः । एवं सर्वत्र विप्रहो द्रष्टव्यः । मिथुनं तृतीयो राशिः नुयुग्मसंज्ञः । वीणाशब्देन यमशब्देन च वाच्यः । यमौ यमळी तदाल्यः । कर्कटकश्चतुर्थो राशिः कर्कटः कर्की च स्यात् । सिंहं च पश्चमराशि कन्यां षष्ठराशि च निजामिधानैराहुः सिहं सिंह नामभिः कन्यां कन्यानामभिरित्यर्थः चशब्दस्त्रीपर्योयमात्रस्यापि यहणार्थः **।** तुलां सप्तमराशिं तौलिशब्देन वणिक्पदशब्देन च कथयन्ति तौलिस्तुला वणिक्पदमापणम् । आपेच तौलिहाट्देन वणिक्छब्देन च वदन्ति । वृश्चिकस्याष्टमराशेः कीटाळिसंज्ञां कीटश्र अक्रिश्र कीटाळी तत्संज्ञां कीटसंज्ञामाळेसंज्ञां चाथ कात्स्न्येनाहुः । यद्यपि शास्त्रान्तरे कर्कटकस्यापि कीटसंज्ञाऽस्ति तथाऽपि वृश्चिकस्य कुत्स्नशास्त्रेष्वपि साऽस्तीति कात्स्न्यीर्थमथशब्दः । धनुः नवमराशिं हया**ङ्गं चराब्दात् ृ**हयं च धनुर्धरं चराब्दादश्वा-रोहं च प्राहुः। मकरो दशमराशिः मृगः नकः मृगास्यः इति नाममिनीच्यः । कुम्भमीनौ द्वौ एकादशद्वादशौ राशी निः जनामिः वाच्यौ स्तः । एकादशराशिः कुम्मनामंभित्रीच्यः, द्वा दशराशिः मनिनामभिवीच्यः । मेषादीनां यद्येतावन्त्येव नामानि कथं तर्हि चापहरिणाननादीनां ग्रहणमित्यत्राह-पर्यायनामानि वदन्ति चैषां इति । **मेषा**दिराशिवाचकानामजादिशब्दानां स्वस्व पर्यायपठितानि च नामानि संज्ञात्वेन वद्-ित । यथा अजः छागो बस्तः । वृषः पुङ्गवः ककुद्मान् । मिथुनं वीणा वल्लकी । सिंहा मृगेन्द्रः केसरी । कन्या कुमारी स्त्री योषिद्यवितः । तुला घटः । वृश्चिकः आळेः भृङ्गः । धनुश्चापः हयस्तुरगः धनुर्घरो धन्वी । मकरो मृगो हरिणः नक्राईशंशुमारः मृगास्यो हरिणा-ननः । कुम्भः पयोघरो त्रटः । मीनो झषश्शफर इत्यादीनि ।

तथैव एते मेषाद्याः प्रथमादिभिः प्रथमद्वितीयादिद्वादशपर्यन्तैदश-हदैः कथ्यन्ते। यथा मेषः प्रथमः, वृषो द्विनीयः, मिथुनं तृतीयं, इत्यादि। राशीनां संज्ञान्तरमाह—

संज्ञाभिः क्रियलेयज्कजतुमाः कोर्पिः कुर्ळार-स्तथा हृद्रोगेत्यसितौक्षिकाश्च कथिताः पाथोनक-स्ताबुरुः । आकोकेर इतीह मेषमृगपौ तौळिर्नृ-युग्माळिनौ कर्की कुम्भझषौ धनुर्युवतिगोनकाः क्रमाद्राशयः ॥ ९ ॥

इह शास्त्र मेषाद्याः द्वादश राशयः पाठानुक्रमेण किय इत्यादिमंशाभिः किथताः । यथा -मेषः किय इति, मृगपः सिंहो लेयः, तौलिर्जूकः, नृयुग्मं जतुमः, अळिर्नृश्चिकः कोर्भिः, कर्की कर्कटकः कुळिरः, कुम्भो हृद्रोगः, झषः मीनः इत्यासः, धनुः तौक्षिकः, युवतिः कन्या पायोनकः, गौः वृषभः तानुरुः, नक्रो मकरः आको-केर इति संश्चा कथिता इत्यथः॥

राशीनां सामान्यसंज्ञामाह—

स्थानं क्षेत्रमिति हे गृहस्य पर्यायनाम निाखि-लमपि। राझीनां नाम स्याद्रमृक्षमिति राझि-तारयोरुभयोः॥१०॥

स्थानं क्षेत्रामिति द्वे नामनी, गृहस्य निष्तिलं पर्यायनाम मन्दिरालयास्प-दनिकेतनाद्यपि द्वादशानां राशीनामपि नाम सामान्याभिधानं स्यात्। तथा ममृक्षमिति द्वे राशिनक्षत्रयोद्वेयोरप्यभिष्ययोः स्तः । यथा भं राशिः मं नक्षत्रं, ऋक्षं राशिः ऋक्षं नक्षत्रमिति । नन्विह राशि सामान्यस्य गृह्मंज्ञाऽभिहिता । उपरि चतुर्थभावस्य च वक्ष्यति । तत् गृहमित्युक्ते (कतरस्येह प्रहणमिति) कथमध्यवसयम्, उच्यते—यत्र स्वामिसंङ्ख्याभावसंयोगस्तत्र राशिसामान्यस्य, यथा भौमगृहं-षष्ठं गृहं सुतगृहामिति । यत्र तु स नास्ति तत्र चतुर्थस्थानस्य, यथा गृहं सूर्यो मानहेति ।

अथ भावशब्दवाच्यानां राशीनां संज्ञामाह—

होरात्मकल्यतनुमूर्त्यभिधं तु छयं स्थानं कुटु-म्बधननाम परं तृतीयम् । दुश्चित्कविक्रमसहोदर संज्ञमन्यत्पाताळबन्धुहिबुकाम्बुसुखाळयाख्यम् ॥

घीपुत्त्रप्रितिमाभिघानमपरं षष्ठं क्षतार्याह्नयं जामित्रास्तकळत्रमन्मथमदयूनाभिघं सप्तमम् । रन्ध्रायुर्मरणं पराभवमृतिस्थानं वदन्त्यष्टमम्, गुर्वाख्यं नवमं बुधैरिह शुभं धर्मस्तपश्चोच्यते ॥

स्यादाज्ञास्पदामान कर्मगगनव्यापारमेषूरणं प्र-ख्यातं दशमं परं तु कथयन्त्यायं भवं चागमम् । स्थानं द्वादशमामनान्ति मुनयो रिप्फव्ययाख्या-

¹ कर्ममान.

न्वितं ल्यादिष्वभिधीयते च निखिलं पर्यायना-मान्तरम् ॥ १३॥

लग्नं इष्टराश्युदयः । 'राज्ञीनामुदयो लग्नप्' इत्यमरः । होरा-त्मकल्यतनुमूर्त्योभयं होरा आत्मा कल्यं तनुर्मूर्तिरित्येता अभिधाः अभिधानानि यस्य तत्, प्राग्लग्नं होरादिपञ्चसंज्ञं भवतीत्यर्थः ।

ननु 'लमादिष्वभिधीयते च निरिवलं पर्यायनामान्तरं' इति वक्ष्यति, किं पुनरिहेकार्थानामात्नतनुमूर्तिशब्दानां त्रयाणां प्र-हणमिति, एवं मन्यते आत्मशब्दस्तावत् लग्नस्य शुभाशु-भज्ञाननिमित्ततां मर्वभावीत्कृष्टतां च द्र्ययितुं गृहीतः । तथा हि-अात्मश्चदस्सर्वकारणे परमात्मिन सर्वेत्छिष्टे जीवात्मिन च वर्तते । मूर्तिश्रव्दस्त्वेकाभिषेये पर्यायप्राचुर्येऽपि छोकप्रसिद्धचैव पर्यायनामान्तरं प्रयोक्तव्यिति । तथा च वराहिमाहिरः-- प-र्यायमन्यदुपलम्य वदेख लोकात्' इति । लगात्परं द्वितीयं स्थानं कुटुम्बधननाम कुटुम्बारूयं धनार्ष्यं च स्पात् । तृतीयं स्थानं दुश्चित्कादिसंज्ञात्रययुक्तं स्यात् । अन्यचतुर्थं स्थानं पातालादि सज्ञाषट्कयुक्तं स्यात् । अपरं पश्चमं स्थानं धीपुत्रप्रतिमाभिषानं वदन्ति । पष्ठं स्थानं क्षतशत्रुद्धिसंज्ञायुतम् । सप्तमं जामित्रादि संज्ञाषट्कयुक्तं स्यात्, अष्टमं स्थानं रन्ध्रादिचतुष्टयसंज्ञायुतं वद-न्ति । रन्ध्रायुर्मरणिपति समाहारे द्वन्द्वैकवद्भावः । नवमं स्थानं ज्योतिश्शास्त्रविद्वद्भिर्गुर्वोदिसंज्ञाचतुष्टयान्वितमुच्यते । दशमं स्थानमाः ज्ञादिसंज्ञासप्तकयुतं स्यात्, यद्यपीहास्पदशब्देन ¹ गृहपर्यायः, त-

¹ आस्पदशब्दो गृहपर्याय इति युक्तं स्यादिति माति.

थाऽपि चतुर्थस्थानवाचकतया लोकप्रसिद्धचभावाद्दशमस्थानवाचकत्व मेन प्रसिद्धम, न तु तत्पर्यायस्य । अत एवोक्तं प्रख्यातमिति । दरामं स्थानं आज्ञादिशब्दसंज्ञामात्रयुक्तं, न तु तत्पर्यायसंज्ञं प्र सिद्धं स्यात् । परं त्विति तु शब्दासिंसहावलेकनन्यायेन परावृत्य प्राक् सम्बध्यते । तेनायं विशेषस्मिध्यति । यद्यप्याज्ञादीनां पर्या यनामग्रहणं नास्ति, तथाऽपि गगनिमत्याकादापर्यायो गृह्यते । परमे-कादशं स्थानमायादिसंज्ञा(त्रया)न्वितं कथयन्ति । द्वादशं स्थानं रिफ्वं व्यय इति द्वाभ्यामाख्याभ्यां युक्तमामनन्ति आहुः। एवः मुक्ताः संज्ञाः पूर्वे रेवाभिहिताः न तु मया स्विधयेव कता इ-ति चोतथितुमामनन्ति मुनय इत्युक्तम् । एवमभिहितेषु लग्नादिपु सर्वं पर्यायनामान्तरं तन्वादिपर्यायनामाभियानमपि यथासम्भवमभि-धीयते मुनिभिरिति देशः । सति सम्मवे पर्यायनामापि स्यादित्यर्थः । तदर्थं चराब्दः । तथा हि — होराहिनुकदुश्चित्कमेषूरणादीनां पर्याया न सन्ति । तत्र तावत् छप्रहोराकल्यानां पर्यायान्तरस्याप्रसिद्धिः। तनोस्तु 'अङ्गं प्रतीकोऽनयनोऽपवनोऽथ कळेनरम् । गात्रं नपुस्संह ननं शरीरं वर्ष्मे विप्रहः। कायो देहः क्लीबंपुसोः स्त्रियां मू-र्तिस्तनुस्तनूः'। इत्यमरः। आत्मा देह इति च। अत्र प्रतीकसं-हननादीनां तनुपर्यायत्वेऽपि लोकप्रसिद्धचमावाह्निर्नास्ति । एवम्-त्तरत्रापि द्रष्टव्यम् । धनस्य पर्यायशब्दाः अर्थस्ववित्तवसुद्रव्यद्रवि-णादयः । सहोदरस्य आतृसहजसहोत्यसोदरादयः । पातालस्य र-सातळाद्याः । बन्धोः बान्धवसुर्हृन्मित्राद्याः । अम्बुनः तोयपयस्स-छिछाम्मे।वारिनीराद्याः । सुखस्य शर्मसौख्याद्याः । गृहस्य सदास-दनमन्दिराल्यवस्तिनिकेतनाद्याः । वियः मतिबुद्धचाद्याः । पुत्रस्य तनयतनुजात्पत्यात्मजसुताद्याः । रात्रोः सपत्तद्विषद्रिवेरिद्वेषिप्रत्यथ्यी-

द्याः । कळत्रस्य दारपत्नीत्रियाभार्याजायाद्याः, स्त्रीपर्यायाश्च । मन्मथस्य स्मरकाममारमद्नमनिसजाद्याः । रन्ध्रस्य मुषिरिववरित्रिलाद्याः ।
मरणस्य मृतिमृत्युनिधनान्ताद्याः । गुरोः देशिकाचार्याद्याः । गुमस्य
कल्याणमङ्गळाद्याः । धर्मस्य वृषसुकृताद्याः । गगनस्य खाभ्रद्युव्यामाम्बरनमे। इन्तरिक्षवियदाकाशाद्याः । आयस्य लाभागमाद्याः ।
व्ययस्य हान्याद्याः प्रसिद्धाः । होराहिबुकदुश्चित्कजामित्रद्यूनमे
पूरणरिप्पशब्दानां पर्याया न सन्ति प्रायणान्येषामप्रसिद्धा इतीह
प्रनथविस्तरभीत्या नाभिहिताः । यदि क्वचिदन्येऽपि सन्ति ते तत्र
तत्रैवाभिधास्यन्ते ।

अथ के पुनरेते भावा नाम, ये तनुषनसहजवनधुसुतिरपुदाररन्ध्रशुभकर्मव्ययसंज्ञाः ज्योतिर्विद्धिः कल्पिता उच्यन्ते, भावयन्ति
उत्पादयन्ति नृणां शुभाशुभानीति भावाः । यद्वा भावयन्ति निरूपयन्ति
शुभाशुभानि एभिरिति भावाः राश्चयः । शुभाशुभज्ञानाय ज्योतिर्विद्धिः
कल्पिताः तन्वादिसंज्ञिताः क्षेत्रविशेषाः । ते यावन्तं कालं
पूर्वहरितमारभ्योद्गच्छन्ति स काले ल्प्नादिसंज्ञितः । तदानयनाय
स्वेष्टकालिकात् स्वायनांशसहितात् स्फुटाकीत् उदयलमं साधयेत्।
यथोक्तं रक्षेन—

भोग्यात् सहस्रिकरणेन गृहस्य भोगान् सन्ताडयेत् तदुद्येन हरेत्खरामेः । एक्वं त्यजेदसुसमूहमभीष्मितेभ्योऽ-सुभ्यः क्षिपेद्दिनकरेऽपि च राश्यभुक्तम् ॥ यावन्त एवमुदया निपतन्त्यसुभ्यो राज्ञीन् क्षिपेत्तदनु तावत एव सूर्ये।

शेषात्वरामगुणितादिवशुद्धलञ्घ मागादिकाच मवतिष्टिविलयमेवम् ॥ इति ॥ दिने गतघटीभिरेवं लयं साध्येत् । रात्रावप्येवं राशिगतबीटका-भिर्लयं संसाध्य राशिषट्कं क्षिपेत् । तथा च रछः—

> उद्गच्छतः परिमि।तिर्भवनस्य या स्या दस्तं यतो नलपतोर्देशि साऽस्तराशेः। कृत्वेष्टकालिकमिनं द्युगतेर्विषयं काले विलयमय भाऽधेयुतं रजन्याम्॥ इति।

एतदेव षड्राशियुतमस्तलम्नं स्यात् । तथाचोक्तमनेन— चक्रार्थयुक्तामिदमस्तविलम्रमाहुः इति ।

अथ धनव्ययादिभावानां निरक्षोद्यानीतमध्यलप्रपाताळलप्र प्रत्यासित्तवशात्त्रिंज्ञाज्ञागाविच्छन्नराशिक्षेत्रत ऊनाधिकभावसंम्भवात्ताव-न्मध्यलप्रानयनाय प्राङ्नतकालानीतं राश्यादिकमकिंद्विशोधयेत् । प्रत्यङ्नतकालानीतमर्के योजयेत् । मध्यलप्रं भवति । यथाऽऽह् भास्करः—

¹ लग्नोदयानतावाप्तानवगम्य रवेरसून् । तिथिमध्यान्तरासुम्यो हित्वा शोध्यं गतं ततः । शेषेऽपि यावतां सन्ति व्युत्क्रमात्तावतस्त्यनेत् ॥ भागान् लिप्ताश्च पूर्वोहे मध्यलग्रमुदाहृतम् । अपराहे च यः कार्यो गन्तव्यादेविवस्वतः ॥ इति । ² एतदेव सषड्मं पाताळलग्नं भवति । तथाच श्रीधरः³— सषड्मं मध्यलग्नं तु पाताळं प्रोच्यते बुधैः । इति ।

¹ लङ्कोदया । लङ्कोदयानुपातासान् । ² एतावदेव. ³ श्रीपति:

एवमानीतेषु चतुर्षे लगादिषु हयोई योनिरन्तर योरन्तरं न्यस्य न्यशं पृथ-गेकेन द्वाम्यां च सङ्गुण्य लगादिषु हिष्ठेषु निक्षिपत् । तत्तत्समनन्तरमा-वा भवन्ति । एतेऽष्टौ लगादीनि चत्वारीति हादश भावा आनीयन्ते । एभिरेव द्वादशिमभीवैस्सेवैः शुभाशुमं निद्धपणीयम् । तथाच श्रीपतिः—

> लग्नं चतुर्थादिवुकं कलत्र।ज्ञामित्रभम्मध्यविलग्नतश्च । खमं विलग्नाच विशोध्य शेषं तत्त्रचंशमेकं द्विगुणं निद्ध्यात्॥ लग्नाम्बुजामित्रनमे।गृहेषु तदन्तरालोद्भवभावसिद्धचै । सिध्यन्ति भावा द्विगुणाष्षदेवं शुभाशुमं चिन्त्यमशेषमेभिः। इति

आनीता एते द्वादश भावमध्यास्त्युः । तदाद्यन्तावगमाय निरन्तरयोरुभयोयोंगर्योभीवं विधायाऽधितं यावद्वाश्यादिके प्रदेशे तयोस्सन्धिः
पूर्वस्यानत उत्तरस्यादिश्च भवति तत्र स्थितो ग्रहः उभयभावानाश्रयणादफलः। भावसन्धेरुनो ग्रहः पूर्वभावगतमाधिकं उत्तरमावगतं
फलं प्रयच्छति । तथाच जातकपद्धतौ—

वद्दित भावेतय दलं हि सन्धिस्तत्र स्थितस्स्याद्यक्लो यहेन्द्रः।
ऊनस्तु सन्धेर्गतभावजातमागामिजं चाम्यधिकं करोति ॥
इति ॥ एवं भावकल्पनया यहाणामेकराशिगतानामिप भावभेदात्
फलभेदस्स्यात् । भिन्नभराशिगतानामप्येकभावाश्रयणात् फलैक्यं स्यात् । तथा च नारदः——

लग्नस्य थेंऽज्ञाभ्युदिताः तत्सङ्खचेषु स्थितो ग्रहः । ²लग्राद्भावफलं दत्ते तानतीतो द्वितीयजम् । फलं स्थानेषु रोषेषु चैवमेवं प्रकल्पयेत । इति ।

¹ फलं. ²लमोद्भव.

(अत्र) भावारम्भादुपक्रम्य क्रमादुपचीयमानं फलं भावमध्ये पूर्णं स्यात् । तस्मात् क्रमेण क्षयिमाणं भावान्ते ज्ञून्यं भवतीति भावफलं भावमध्यसमे प्रहे पूर्णं स्यात् । तदूने तद्धिके च त्रेराशिकेन फलं प्रकल्पयेत् । तथा च श्रीपतिः—

भावप्रवृत्तौ हि फलप्रवृत्तिः पूर्णं फलं भावसमांशकेषु । हासक्रमाद्भावविरामकाले फलस्य नाशः कथितो मुनीन्द्रैः ॥ भावांशतुल्यः खलु वर्तमानभावोद्भवं पूर्णफलं विषते । भावोनके चाप्यधिके च खेटे त्रैराशिकेनात्र फलं प्रसाध्यम् ॥

इति । ननु यद्येनं भावफलं कल्प्यने आदी पूर्णफलं स्यात् मध्ये मध्यफलकरं लग्नमनसाने अल्पफलं स्यादिति लग्नानिश्रयः कार्ये इति रक्षेनोक्तमनेन विरुध्यते, न, यता रक्ष्वचनं राशिविषयम् तथा हि—राशेः फलं प्रथमद्रेक्षाणे पूर्णं, मध्ये मध्यमन्त्येऽल्पं च भवति । ननु राशिभावयोरभेदात् भावस्यापि राशिवत् फलं कल्पना किं न स्यात्, एवं मन्यते, राशीनामकैकग्रहाधिपत्यनियनमात्त पलं मुकरः फलादेशः । भावानां तु तथाऽऽधिपत्यनियमाभावात् फलादेशो दुष्करस्त्यात् । तथाहि—कद्यचिद्राशिद्रयन्यापिनो लग्नादेरेकेकस्य भावस्य तद्राशिद्रयस्याधिपती द्वावप्याधिपत्यमभिल्यक्तः कदाचिद्राद्याराश्यधिपतिरेव न तथेप्यते । भावमध्ये फलं संपूर्यत इत्यत्र तु यस्मिन् राशौ भावमध्ये स्यात् तद्राश्यधिपतिरेव भावाधिपतिरिति सुकरः फलादेशः । तस्मादिद्रमेव श्रयः इति एवमापि सुनोधकतोक्तं विरुध्यत एव । तथाच तद्रावयम्—

¹ कुण्वाख्य:.

अशुभं च शुभं चोद्यसुदेष्यसुदितो प्रहः । त्रिद्रेकगुणमाधते लग्नादिस्थानमाश्रितः ॥ इति ।

म्रहविषयमस्य सम्भतमेव । तद्यथा—लम्रादिभावस्थितो ब्रहस्तद्रावमध्यमश्चेत् तद्रावोक्तं स्वफलं त्रिगुणं करोति, तद्रावम-ध्याद्धिकश्चेत् ताद्द्रीगुणं, तद्धावमध्यादूनश्चेत् तदेकगुणं यथाप्राप्तः मेव करोति । एवमनयोस्सम्मतिरेव । अत्रेयमुपपत्तिः--भावमध्यसमे ब्रहे लब्बब्रह्में स्थापे महिमध्यसंयोगात् फलस्य त्रैगुण्यं स्यादेव । तद्ने तु छमभावफलस्य प्रवृत्तेप्रहभावफलस्य हासाच 1 तत्रेक मेव फलं। तथा तद्धिके प्रहमावफलस्य प्रवृत्तेः लग्नभावफलस्य हासात् तत्राप्येकमेव । तच प्रहस्यादृश्याघीवस्थानाहिगुणं स्या-दिति । सर्वत्रेवमेव शुभाशुभफलं वदेत् । तच पङ्घियं—ग्रहजं भावनं राशिनं प्रहभावनं प्रहराशिनं योगनं चेति । तत्र स्वा-तन्त्रचेण ग्रहेर्दीयमानं ग्रहनं, तथा भावैर्भावनं, राशिभाराशिनम्। तथा ग्रेहैभीवनिबन्धनं दीयमानं ग्रहभावजं, ग्रेहैराशिनिबन्धनं दीयमानं प्रहराशिजं, प्रहेः राशिभावनिबन्धनं दीयमानं योगज-मिति । तेपु राशिजमेव रछमतस्य विषयः । अन्यानि श्रीप-तिमतस्य विषया इति । सर्वासु शुभक्तियास्वेवमेव भावाः प्रक-ल्पनीयाः । तथाच श्रीधरः---

यत्राविवाहादिषु शोभनेषु कार्येष्वथान्येषु च जन्मकाले । भावानप्रकुर्योद्धचनादिष्टष्टानुकान् मया शिष्याहितार्थमित्थम् । इति । एवं भावानयनमनाष्टत्य राश्याद्यन्तयोरिष्टकालयोरिष राशि-मध्य एव भावमध्यत्वेन कल्पिते वैषम्यात् भावफलं नं सम्भवेत् । यथाऽऽह श्रीपतिः— जन्मप्रयाणव्रतवन्धचै।ळनुपाभिषेकादिकरप्रहेषु ।

एवं हि भावाः परिकल्पनीयास्तेरेन भावोत्थफलानि यस्मात् ॥ इति । तथा फल्लेषम्ये सत्यनुभवित्संवादात् प्रमाणचतुष्टयिवरोधश्च जायते । तस्मादस्मदुक्तमेव भावानयनं प्राह्मामित्यलमितप्रसङ्गन ॥ अथ प्रम्थलाघवात् केषांचित् स्थानानां समुदायन्त्रापिनी

प्रत्येकव्यापिनीं च संज्ञामाह—

ल्यात्सुतं च नवमं च विदुष्तिकोणं तस्माचतुर्थं निघने चतुरश्रसंज्ञे।प्रत्येकमस्तसुखकर्मविलयभानां स्यात्केन्द्रकण्टकचतुष्टयनामघेयम् ॥१८॥
लग्नात् पश्चमनवमौ राज्ञी त्रिकोणमिलाहुः । तथा लग्नाचतुर्थाष्टमस्थाने चतुरश्रमाहुः । सप्तमचतुर्थदशमलग्नराज्ञीनां केन्द्रादिनामत्रयमपि स्यात् । सप्तमादीनां प्रत्येकं केन्द्रादिमंज्ञा स्यात्।प्रत्येकं
स्यादिति वा । एतास्संज्ञास्सप्तमादिस्थानसमुदायस्य प्रत्येकमेकैकस्थानस्य च स्युरित्थर्थः ॥

केन्द्रात्परं पणपरं कथयन्त्यापोक्किवं ततश्च परम् । ३रिपुविक्रमभेषूरणभवभवनान्युपचयाभि-घानानि ॥ ३५॥

केन्द्रात् — लग्नचतुर्थससमद्शमस्थानेम्यः परं द्वितीयपञ्चमाष्टमैका -द्शस्थानानि पणपरसंज्ञानि कथयन्ति । ततः — पणपरस्थानात् परं तृतीयषष्ठनवमद्वादशस्थानानि आपोक्किवसंज्ञानि । आपोक्किमित्य -न्ये । तथाचात्रिः —

¹ योगोत्थफलानि, ² मरणे. ³ ऋतु.

तृतीयनवषष्ठान्त्या आपो क्किमा इति स्मृताः । इति । षष्ठतृतीयदश्मेकादशस्थानान्युपचयसंज्ञानि । इह त्रिष्ट्वशैकादशस्थान् नानामुपचयसंज्ञाभिधानात्तदन्यान्यष्टो स्थानान्यनुपचयसंज्ञानीत्वर्थादेव सिद्धम् । तथा च वराहमिहिरः—

त्रिष हेकादशदशमान्युपचयसंज्ञान्यतोऽन्यानि । इति ।
ननु कचिदुपचयपणपरसंज्ञाद्वयसन्निपातात् कचिदुपचयपणपरत्रिकोणादिसंज्ञात्रयसन्निपातात् किन्निबन्धनमिदं फलं प्राह्ममिति संशयस्स्यात्, न, यदा पणपरत्वेन फलं निर्दिश्यते तदा पणपरमेव,
यदा तूपचयत्वेन तदोपचयं, यदा त्रिकोणत्वेन तदा त्रिकोणमेवेति । किश्च—

अयुगोजारूयं विषमं स्थानं युग्युग्मसंज्ञितं तु समम् । संख्यास्तु लोकसिद्धाः क्षितिरसवाणान-लादिवस्तूनाम् ॥ १६॥

विषमं स्थानं प्रथमतृतीयादि विषमसङ्घा मेषाद्यो राशिलंगा-दिभावश्च अयुक्संज्ञ ओजसंज्ञश्च स्यात् । द्वितीयचतुर्थादिसमसङ्घाः वृषमाद्यो राशिः धनाद्यो भावश्च युक् संज्ञः युग्मसंज्ञश्च स्यात् । अथ संख्यानिर्देशे कर्तव्ये लाचेवन सौष्ठवेन चाभिधातुं भूतसङ्ख्याप्र-सिद्धिमाह—सङ्घासतु लोकसिद्धा इति । क्षितिः भूमिरेका, रसाः मधुरादयः षट्, बाणाः पश्च सम्मोहनादयः, अनलाः वह्नयस्त्रयोऽ-नवाहार्याद्याः आदिशब्देन शैलसमुद्रादया गृह्यन्ते । क्षित्यादिवस्तूनां सङ्ख्या एकत्वाद्याः लोकप्रसिद्धा एव । त इह नोच्यन्त इति

¹ गाईपत्याद्याः.

शेषः । वक्ष्यमाणाः सित्यादिशञ्दाः एकादिसंख्यावाचकाः लोकप्रिसिख्येव प्राह्मा इत्यर्थः । यथा भूरेका । अश्विनौ द्वौ । वह्नयस्त्रयः । समुद्राश्चत्वारः । बाणाः पश्च । रसाष्पट् । शैलास्सप्त ।
वसवोऽष्टो । नन्दा नव । दिशो दश । रुद्धाः एकादश । आदित्याः
द्वादश । विश्वे त्रयोदश । मनवश्चतुर्दश । तिथयः पश्चदश । नृपाष्षोडश । अत्यष्टयस्सप्तदश । पुराणान्यष्टादश । अतिभृतयः एकोनावेशितः । विक्तिस्त्रयोविश्वितः । सिमेध एकविश्वितः आकृतिर्द्धाविशितः । विकृतिस्त्रयोविश्वितः । जिनाश्चतुर्विश्वितः । थ्यविश्वतिः । उत्कृतिष्विद्वश्वतिः । नक्षत्राणि सप्तविश्वतिः । दन्ताः
द्वातिः । देवास्त्रयस्त्रिशतः । इत्यादिलोकप्रसिद्धत्वादिह नोच्यन्ते ॥

अथ प्रक्षलमात् कार्यापिद्धचिसिद्धिज्ञानाय राशीनां शीर्ष पृष्ठोभयोदयत्वमाह—

वनुःप्रथमकर्कटौ वृपमृगौ च पृष्ठोदया-स्त एव सयमा निज्ञावलभृतोऽथ मूर्घोदयाः। परे दिनबला दिघा झष उदेत्यथाजादयो नृयोषिदभिघाश्चरस्थिरचरेाभयाख्याः क्रमात्॥१७

धनुर्भेषकर्कटवृषभमकराः पञ्च राश्यः पृष्ठोदयाः पृष्ठेनोद्यन्ती त्यर्थः । सयमाः मिथुनसिह्ताः त एव धनुराद्याः रात्रिवलवन्तः । धनुर्भेषवृषकर्कटमकरामेथुनाः पड्राशयो रात्रिवलोदया इत्यर्थः।

अथ-कात्स्नर्चेन । सर्वे परे-उक्तेम्योऽन्ये राशयहशीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति । (तत्र) पृष्ठोदयेभ्योऽन्ये सिंहकन्यातुलाकीटकुम्भ मीनराशयः शीर्पोदयाः, रात्रिबलेभ्योऽन्ये सिंहकन्यातुलाकीटकुम्भ-मीनाप्पड्राशयो दिनबलाः, द्विषा झपः-भीनो द्विषा शीर्षप्रशाभ्या- मुदेति । मीनस्वितरेतरविपर्याक्षिष्टमीनद्वयात्मकः । तयोरेकिश्रिशरसा अन्यः पृष्ठेनोदिति । अतस्स उमयोदयः । तथा च वराहमिहिरः—

> गोजाश्विककिंमिथुनास्तम्गा निशाख्याः पृष्ठोद्या वि मिथुनाः कथितास्त एव । शीषींद्या दिनबलाश्च भव-न्ति शेषा लग्नं समेत्युभयतः पृथुरामयुग्मम् । इति ।

इह राशीनां निशादिनवललकथनं संज्ञामात्रसम्पादकम् । तेषां तु बलस्योत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् । संज्ञानप्रयोजनं चोक्तं कृष्णेन—

> पृष्ठोदये तु सिध्यत्वशुभं मूर्घोदये शुभं कार्यम् । उभयोदये विमिश्रं प्रहरहितेभ्यः फलं वाच्यम् ॥ इति ।

द्वितीयोऽयराव्यसंज्ञान्तरारम्भार्थः । मेषाद्यस्पर्वे नरयोषि-त्संज्ञाः क्रमात् षडावृन्या भवन्ति । विषमाः पुंसंज्ञाः । समाः स्त्रीसंज्ञा इत्यर्थः । तेषु पुंराशयः क्रूराः । स्त्रीराशयः सौम्या-स्स्युः । अपि च मेषाद्यास्त्रयस्त्रयः क्रमात् चतुरावृत्त्या चरस्थिरो-भयाख्या भवन्ति । तथाच वराहिमिहिरः—

क्रूरस्तीम्यः पुरुषवनिते ते चरागांद्वेदेहाः । इति ।

अत्र चरत्रहणं चरिश्यरौ द्वावेव प्रकृती इति प्रदर्शनाय । तथाहि—उभयस्तूभयात्मकः । तस्य पूर्वमर्थं स्थिरमन्यचरम् । तथा च-स्थिरवत्प्रथमेऽर्धे स्यात् न परे चरराशिवत् सर्वम् ॥ इति ।

अथ राशीनामूर्व्वमुखादि संज्ञामाह श्लोकार्धेन—

मुक्तारूढिययासितानि भवनान्युष्णत्विषोपर्य-धस्तिर्यग्भूतमुखान्यथैवमपरे प्राहुश्चरादीन्यपि । रविणा मुक्तोजिझताकान्तबुमुिसतानि भवनानि उध्वीधिति र्यङ्मुखानि प्राहुः । अर्केण मुक्तोजिझतो राशिक्रध्वेमुखः । आक्रान्तो राशिरधोमुखः । भोज्यस्तिर्यङ्मुखः इत्यर्थः । अथानन्तरमप्येवं त्रीणि तीण्यूर्ध्वाधिस्तर्यङ्मुखानि स्युरिति शेषः । तथा च रुष्णः—

> ऊर्ध्वमुखो रविमुक्तो राशिर्युक्तस्त्वधोमुखो ज्ञेयः । अभिल्लाषितस्तिर्यास्यस्तेषां केन्द्राश्च तत्संज्ञाः ॥ इति ।

तत्प्रयोजनं च तेनैवोक्तं—

द्धनेमुखो यदि राशिहाँरा लग्ने नरस्य सिद्धिकरी ।

1 अन्यो विकलं वदतरशुमयुत²ढष्टो शुमाख्या च ॥ इति
अपरे—यवनेश्वरादयश्चरिश्यरोमयान्यप्यूर्धांशितर्यङ्गुखानि प्राहुः। चरराशिक्ष्ध्वमुखः। स्थिरराशिरघोमुखः। उभयस्तिर्यङ्गुख इत्यर्थः।
अथार्धन राशिषु पुष्करांशानाह—

भागात भेषु विदुस्सिमनमनुजिनक्ष्माभृनिम-तात् पुष्करात् शैलाङ्कात् शरपावकात् वसुरसात् ६माग्रीत्रवांशानपि ॥ १८॥

राशिषु मेवसिंहचापादिषु चतुर्षु चतुर्षु सामिन्मनुनिनक्ष्माभृन्मितान् एकविंशतिचतुर्दशचतुर्विंशतिसससङ्ख्यान् भागान् पुष्करांशान्विदुः । मेवसिंहचापेष्वेकाविंशोंऽशः । वृषकन्यामृगेषु चतुर्देशोंऽशः । युग्मतुल्ला-कुम्भेषु चतुर्विंशोंऽशः । किंकिकीटमीनेषु सप्तमः । एते पुष्कर-संज्ञा भागा इति । तथा च सर्वसिद्धौ—

² हुष्टे शुभाक्षे.

भूतोत्तरस्तन्त्वांशा सिश्चिकोणे न सागरे । निन्दिताः पुष्करांशास्तास्समिन्मनुजिना ॥ इति ॥

तथा राशिष्वेतानंशान् नवांशानि पुष्करानाहुः । यथा-मेष सिंहचापेषु सप्तमनवमी । वृषकन्यामृगेषु पञ्चमतृतीयो । मिथुन तुलाकुम्भेष्वष्टमषष्टौ । किकिकीटमीनेष्वाद्यतृतीयो । एते पुष्करसंज्ञा नवांशा इत्यर्थः । तथाचोक्तं—

मेषे सप्तमनवमी वृषमे च तृतीयपश्चमावंशी।
षष्ठाष्टमी च मिथुने कर्किण्याद्यं तृतीयं च ॥
यद्यद्राशी प्रोक्तं तदेव तस्मातु पश्चमे नवमे।
एतत्सर्व विद्यात् पुष्करदेशं बुधेईष्टम् ॥ इति ॥

एवं राशिसंज्ञामुक्ता महसंज्ञां ककुमुपक्रमते —
प्रकाशको हो प्रथमो महाणां
तारामहाः पश्च परे ततो हो।
तमोमहो तेषु शुभास्तु मध्ये
त्रयो र्बलीन्दुश्च परे तु पापाः॥ १९ ॥

ग्रहाणां प्रथमो हो सूर्येन्दू प्रकाशकसंज्ञो स्तः । ताम्यां परे पश्च कुजबुधगुरुशुक्रमन्दाः ताराग्रहसंज्ञाः । तेम्यः परो हो राहुकेतू तमोग्रहसंज्ञो । एवं त्रिविधा ग्रहा इत्यर्थः । केचिदेवं व्या चसते—प्रकाशको ग्रहणामाद्या हो स्तः । ताराग्रहाः पश्च ततः परे स्युः । ततस्तमोग्रहो हो स्तः । एवं नव ग्रहा इति । तेषु नवग्र-हेषु त्रिधारुतेषु मध्यत्रिकगताः बुधगुरुशुक्रास्त्रयः । बळी वेष्टा स्यानवीर्यान्विश्चनद्वश्च एते चलारदशुमसंज्ञाः । उक्तेम्योऽन्ये

सूर्यकुजमन्दराहुकेतवः सक्षीणचन्द्राष्यदेते पापसंज्ञाः । तु राब्दो बुधस्य पापयोगेन पापत्वाभिधानार्थः । यथाह वराहमिहिरः—

क्षीणेन्द्रकेमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तेर्युतः ॥ इति ।

(इह)यवनेश्वरेण चतुर्विधा ग्रहा उक्ताः । क्रूरपापसीम्यमिश्रा इति । तथा च तद्वाक्यं—

> क्र्रग्रहोऽर्कः कुनसूर्यनो च पापौ शुमारशुक्रशशाङ्क नीवाः।सौम्यस्तु सौम्यो व्यतिमिश्रितोऽन्यैर्वर्गेस्तु तुल्यः प्रकृतित्वमेति ॥ इति ।

केश्रिश्चिविष एव। तथा च भरद्वानः —

पापग्रही द्वौ विज्ञेयो छोहिताङ्गरानेश्वरौ । आदित्यो दारुणोऽत्यन्तं रापास्तर्वे शुभावहाः ॥ इति ।

कैश्चित् द्विविधा एवेति । तथा च स एव (भरद्वाजः)--

गुरुशुक्रबुधास्मोम्याः क्रूरास्मौरारभास्कराः । द्वेत । द्वेत केचिद्रचवस्थिताः ॥ इति ।

अत्रेतदुक्तं भवति—ग्रहाणां द्वे एव प्रकृती—सौम्यता पापता चेति । ऋरतं पापत्वगतभाविद्योष इति तत्रैवान्तर्गतम् । मिश्र-त्वमुभयोरि, यदा सौम्यस्तदा न पाप इति, यदा तु पापस्तदा न सौम्य इति । यतस्तयोविरुद्धधर्माश्रययोर्युगपत्त्राप्तिरनुपपन्ना, तस्मात द्वे एव ग्रहाणां प्रकृती इति स्थितम् ॥

निन्वह नवैव ग्रहा इति निगदितं । अन्येस्तु सप्त महा-ग्रहाः पञ्च तमोग्रहा इत्युक्तम् । तथा च भरद्वाजः ॥

(क्षणिन्द्रकेयमाराः पापास्तैस्संयुतस्सौम्यः । इति)

स्यों निशाकरश्शुको लेहिताङ्गश्शेनश्चरः । सोमपुत्रो गुरुश्चेति नित्यं सप्त महाश्रहाः ॥ राहुः केतुस्तथा रेखाः परिवेषश्च कार्मुकस् । श्रहास्तु पश्च विज्ञेया अप्रकाशेन सश्चराः ॥ इति ।

इह राह्यदीनां फलस्य कादाचित्कत्वात् प्रहत्वमनियतिमिति सूर्या-दयस्सप्तेव महाग्रहा इत्युपपन्नम् । तथा चायमेव

लोकस्य विपरीतार्थं दृश्यन्ते गूढसञ्चराः

अप्रकारो फलं नास्ति प्रकारो तु महत् फलम् । प्राधान्यं भास्कराचेषु सप्तस्वेव प्रतिष्टितम् । इति । सिद्धान्तेष्वपि सप्तैव प्रहाः कथिताः । तथाच सूर्यसिद्धान्ते प्रहसर्गे-द्वारेणोक्तं—

> अत्रीषोमौ मानुचन्द्रौ मूतान्यङ्गारकादयः । तेजोभूखान्बुवातेभ्यः ऋमशः पश्च जित्ररे । इति ।

ब्रह्कक्ष्याश्च सप्तानामेवाभिहिताः । तथाचोक्तम्---

त्रह्माण्डमध्यपरिधिवर्योमकक्ष्याऽभिधीयते । तन्मध्ये भगणं भानां तद्धोऽधः ऋमाद्मी । मन्दामरेडचमूपुत्रसूर्ये¹शुऋनुधेन्दनः । परिश्रमन्त्यधोऽधस्तात् सिद्धविद्याधरा घनाः । इति

किञ्च राहुकेत्वोः पातोच्चत्वमेव ग्रहगतिकारणम् । तथाचोक्तं-

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः । शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या यहाणां गतिहेतवः । इति ।

¹ शुक्रेन्दुजन्दवः.

अपि च होराशास्त्रेषु सूर्यादीनां सप्तानामेन वर्गाधिपत्यं, सप्तानामेन दशापरिग्रहश्च । तस्मात् सप्तेन ग्रहा इति सुन्यक्तम् । अथ केचिदनुमानेन तथोर्ग्रहत्वं समर्थयन्ति । यथा—राहुकेतू ग्रहो, गितमत्त्वात, कुनादिवत्, यो गातिमान स ग्रहः, यथा कुनादयः, तथा-चेमो, तस्मात् ग्रहावेवेति । अयमपि गितमन्त्वस्य साधनस्य विपक्षे कुनपातोच्चादौ सत्त्वादनैकान्तिको नाम हेत्वाभासः । तस्माद नुमानेनापि तयोरग्रहत्वमेन । यथा—राहुकेतू न ग्रहो, चन्द्रपातोच्च त्वात्, कुनादिपातोच्चवादिति । यद्वा प्रसंगद्वारेणाप्यग्रहत्वं, यदि राहुकेत्वोर्ग्रहत्वं, तत् कुनपातोच्चयोरिप ग्रहत्वं स्योदेव, उभयेषां पातोच्चत्वस्याविशेषादिति । तस्मात् सप्तेन ग्रहा इति स्थितम् ॥

अत्रोच्यते—यदुक्तं प्रसङ्गहारेणाग्रह्वं, नैतत्, यदि राहुकेत्वोश्चन्द्रपातोच्चत्वाद्महत्वमुच्यते, तार्हं सूर्यस्यापि कुनादिक्षीद्योच्चत्वादम्गहत्वं स्यात् । तिसमञ्जमयलक्षणोपपन्नत्वनोभयविषयत्वं तुलायां
प्रमाणप्रमेयव्यवहारवत् स्यादिति चेत्, तदनयोः केन वार्यते ।
अपिच —चन्द्रोच्चपातौ केतुराहुम्रह्यौ स्तः, उभयलक्षणोपपन्नत्वात्,
सूर्यवत् । य उभयलक्षणसम्पन्नस्स म्रहः, यथाच सूर्यः, तथाच
राहुकेत् , तस्मान्तौ महावेवेति । यच्च —वर्गाधिपत्याभावात् तयोरम्महत्वमुक्तं, तदसत्— यदि राज्यादीनां षण्णां समुद्रायस्य वर्गसंज्ञा
तर्हि सूर्येन्द्रोरि वर्गाधिपत्याभावः । अथैकैकस्य, तदाधिपत्यस्य
प्राचुर्यात् कुनादीनां प्राधान्यं स्यात् । सूर्येन्द्रोराधिपत्यालपत्वादप्राधान्यं च । तस्मान्न वर्गाधिपत्यानवन्धनं महत्वम् । नापि दशाधिपत्यात्, लमस्यापि महत्वप्रसङ्गात् । अथवा—रेाहुकत्वोरिष दशाधिपत्यात्, लमस्यापि महत्वप्रसङ्गात् । अथवा—रेाहुकत्वोरिष दशाधिपत्यास्त्येव । यतस्तयोरिष नक्षत्रदशापिण्डदशिद्यन्तर्दशा चारिते।

नापि कक्ष्यावस्त्वात्, ऋक्षाणामपि प्रहत्वप्रसङ्गात् । अथवा तयोरापि कक्ष्याऽस्त्येव । गतिमतां सर्वेषां कक्ष्याभिधानात् । तथाचोक्तं—

> इष्ट्रग्रहस्य भगणेर्गगनस्य वृत्तं भड्लाथ तस्य परिधि छमते समन्तात् । इति ।

यच सूर्यादिभिस्सह सर्गाभावात् तयारत्रहत्वमुक्तं, नैतत्सारं-यतः पश्चाञ्चव्यसर्गयोरि तयोदेवित्रसादासादितं शहत्वं कि न स्यात् ? यथा तारागणेन सहामृष्टानामि तपःत्रभावादवासतत्स्थानानां अग-स्त्य मृगव्याधादीनां तारात्वं न हीयते । अत्र नारदः—

> अमृतास्वादनादेतोशिशरिश्चेत्रोऽपि नो मृतः। विष्णुना तेन चकेण तथाऽपि स्रहतां गतः। वरेण घातुरकेन्दू स्रसते सर्वपर्वसु। विक्षेपावनतिवशात् राहुर्दूरगतस्तयोः। इति.

यच कादाचित्कफलताद्रग्रहत्वमुक्तं, तद्प्यसत्, कुजादीना-मप्यग्रहत्वप्रसङ्गात्, यतस्तेषामापि कादाचित्कफलत्वमस्ति । यथाऽऽ-ह रक्कः—

> नीचस्था ग्रहविजिता अभिभूता विरश्मया हस्वाः । उरगा इव मन्त्रहता भवन्त्यकार्यक्षमा लग्ने ।

इति । भरद्वाजेनापि तयोः प्रकाशाप्रकाशयोः प्राबल्यदौ-बैल्ये उक्ते । न प्रहल्वाप्रहत्वे ।

यद्पि परिवेषादीनां श्रहत्वमभ्यघायि, तत् केतूनाम-नेकेषां मध्ये तेषां ²प्राधान्यख्यापनार्थम् । न तु श्रहाणां द्वाद्शत्व-

¹ भूगवादीनां

सिद्धये । तेन राहोः भगणार्घवर्ती केतुरेक एव ग्रहत्वभाक् । अ-न्येऽपि तज्जातिमात्रभृतो बहवस्सन्ति । न तेषां पृथक् ग्रहत्व-मस्ति, ते सर्वे तद्भेदाः । यथोक्तं नरपतिना—

> ऋक्षाधानगतो राहुर्यत्र ऋक्षे व्यवस्थितः । तस्मात्पञ्चदशे ऋक्षे पुच्छं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ एकोत्तरं शतं यत्र केतवः समुपस्थिताः । व्यामुबन्तो जगत्सर्वं सहस्त्रार्कसमितवषः ॥ इति ।

पश्चदशे ऋसे इत्युपलक्षणम् । तेन चतुर्दशे पश्चदशे वा यत्र मे भगणार्थं भवति तत्र केतुरित्यर्थः । स्यादेतत्—चन्द्रोच्चस्य अग्रहत्वं प्रतिज्ञाय राहोभेगणार्धवर्तिनो ग्रहत्वं निगमितमिति प्रतिज्ञाहानिस्स्यात्, नेष दोषः, प्रागपि केतोर्ग्रहत्वं प्रतिज्ञातं तदेव निगमितम् । अपि तु केतुसामान्यविशिष्टत्वेन चन्द्रोच्चमापि पक्षत्वेन कक्षीकृत्य यहूषणमम्यधायि, तदेव निरासीति न प्रति-ज्ञाहानिः । तस्मात् नवेव ग्रहा इति सिद्धम् ।

तेषु शुभपापानां संज्ञामाह—

असत्कराह्नयाः पापादशुभास्तत्सौम्यसंज्ञिताः।

सन्तः शुभाः, तेम्योऽन्ये असन्तः अशुभाः क्रुराः पापाः इत्यिभिश्वार्थाः । शुभाः सन्तः सौम्या अपापाः इत्येकार्था इत्यर्थः । श्लोकार्धेनाभिषेयस्वरूपमाह—

कालदशुभिक्रयायोग्यो मुहूर्त इति कथ्यते॥

विवाहादिशुभकमिविधानयोग्यः प्राणिविघटीघटिकादिः मुहूर्ते इत्युच्यते । ननु कथं त्रुट्यादिः काल इति वक्तव्ये प्राणादिरि- त्युक्तम्, उच्यते—कालस्तावद्विविवः—मूर्तोऽमूर्तश्च । तत्र प्राणा-दिर्मूर्तः । स स्थूलः । त्रुट्यादिरमूर्तः । स सूक्ष्मः । तथा च श्रीपतिः—

> कालः स्थितिप्रलयसर्गनिमित्तभूतः स्थूलाणुस्टपपरिकल्पन-या द्विधाऽसौ । त्रुट्यादिकोऽणुरनणुस्त्वसुर्पूनकस्स्यात् सूक्ष्मो ह्यमूर्त इतरः कथितोऽत्र मूर्तः।

इति ।

तत्र स्थूल एव कालो दैवज्ञैरादेष्टुं शक्यः । सूक्ष्मस्तु स्विन-यतपुराकृतमुकृतैकलम्यत्वात् न केन चिदादेष्टुं शक्यः । तथा च नारदः——

स्वस्थ नरे मुखासीने यावत् स्पन्दति छोचनम् ।
तस्य त्रिंशत्तमो भागस्तत्पछः परिकीर्तितः ॥
तत्पछात् शतमो भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते ।
त्रुटेस्सहस्त्रभागो यो छग्नकाछस्स उच्यते ।
देवोऽपि तच जानाति किं पुनः प्राकृतो जनः ।
स काछोऽप्यन्यकाछो वा पूर्वकर्मवशाद्भवेत् ।
निमित्तमात्रं दैवज्ञः तद्धशाच ग्रुभाग्रुभम् ॥ इति ।
यदि छग्नकाछः पुराकृतसुकृतेकछम्यत्वात् दैवज्ञैरनादेश्यः,
तर्हि दैवज्ञैस्तत्काछछग्रानयनगुणदोषनिरुद्धपणादेरादरः ।

यास्मन्देशे च काले च यन्मुहूर्ते च यहिने । हानिवृद्धियशो लाभस्तत्तथा न तदन्यथा ॥ इति । लब्धव्यानेव लभते गन्तव्याम्येव गच्छति । प्राप्तव्यान्येव चामोति दु: खानि च मुखानि च । इति वचनान्यनुमृत्य मुहूर्तनिरूपणमन्तरेणैव शुभाक्रियाः कार्याः।
ततश्चास्य शास्त्रस्य वैयर्थ्यं प्रसज्येत । अत्रोच्यते—यद्यपि लग्न
कालः स्वसुक्तलभ्यः, तथापि दैवज्ञैः कालनिरूपणमवस्यमाद्रणीयं श्रुतिरमृत्युक्तत्वात् । स्वविहितनित्यकमीचरणवत् । तथा च
तत्कर्मसु कालामिधानं श्रूयते—

'यां कामयेत दुहितरं त्रिया स्यादिति तां निष्टचयां दद्यात् । यं कामयेतानपन्ययं नयेदिति तमेतस्मिन्नक्षत्रे यातयेत् । वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमाद्धीत । कृत्तिकास्वित्रमाद्धीत । यान्येव देवनक्षत्राणि तेषु कुर्वीत । यत्कारी स्यात् ' इत्यादि । तथा च स्मर्थते —

> ऋतावुपगमदशस्तः स्वपतचामवनीपते ! । पुत्ररर्के शुभे काले श्रेष्ठं युग्मासु रात्रिषु ॥ इति ।

याज्ञवल्क्येनाप्युक्तं—

एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मखां मूलं च वर्जयेत् । सुस्थ इन्दौ सकत् पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ॥ इति ।

षोबायनेन कन्यावरणे काल उक्तः—

'उद्गयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे युग्मान् ब्राह्मणान् वरः प्रहिणो।ति' इति । अपि च रोहिणीमृगशीषेमुत्तराफलगुनीस्वा-तीति विवाहस्य नक्षत्राणि । पुनर्वमुतिप्यहस्तश्रोणारेवतीत्यन्येषां भूतिकर्मणां यानि चान्यानि पुण्योक्तानि । ग्रह्मकारेणाप्युक्तम्—

प्रयोगशास्त्रविहितः कालो यत्र न कश्चन । विधत्ते ज्योतिषं तत्र विहितेऽत्र विरोधि तत् ॥ इत्यादि श्रुतिस्मृतिपुराणगृह्यशास्त्रेषु श्रुमिक्रयाणां कालिस्त्रपणतया विहितत्वात् कालाभिधायिनो ज्योतिश्शास्त्रस्य न वैयध्यप्रसङ्गः। अपि च यदीदं शास्त्रं न प्रारमिष्यत तत् कथं
कालज्ञानं समपत्स्यत । तद्ज्ञाने क्रिया न प्रपत्स्यन्ते । प्रवृत्ताः
वा न फलाय काल्पिष्यन्ते । तद्प्रवृत्तौ देवो न वार्षेष्यति । तद्वर्षणे ओषधयो न प्रादुष्प्युः। तद्प्रादूर्भावे प्रजा न प्राण्यासुः।
ततश्च विश्वमेव असत् स्यात् इति महदानिष्टमापद्येत । किञ्च
कालाज्ञाने लोकस्त्वाचारात् प्रश्चश्येत । स्वाचारप्रश्चष्टस्य दूष्प्रजा
प्रजायेत । प्रजादोषात् दुर्गति यास्यति । दुर्गतेः पाप्मानं करिप्यति । पाप्मना नरकमामुयादित्यपि महदानिष्टं प्रसज्येत । ततश्च
नैव वैयर्थ्यप्रसङ्गः । यद्वा प्राचीन चन्मोपचितसदसत्कर्मफलविपाकामिव्यञ्जनमेव ज्योतिश्वास्त्रणानुशिष्यत इति । यथोक्तं लघुजातके—

यदुपिनतमन्यजन्मिन शुभाशुभं तस्य कर्मणः पिक्तम् । व्यञ्जयित शास्त्रमेनत्तमासि द्रव्याणि दीप इव । इति ।

अन्यत्रापि-

नक्षत्राणि ग्रहाश्चेव शुमाशुमिनवेदकाः ।
मानवानां महामागे न तु कर्मकरास्त्वयम् ॥
प्रजानां तु हिताथाय शुमाशुमिनिधं प्रति ।
अनागतमातिकान्तं ज्योतिश्रक्रेण वेद्यते । इति ।
कर्मिविपयासस्तु केनापि दुष्करः। स्वकृतस्य कर्मणोऽवश्यभो-

क्तव्यत्वात् । तथाचोक्तं—

अवश्यमनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । नामुक्तं क्षीयते कर्मे कल्पकोटिशतैरिप ।! इति ।

यदि स्वक्तमेव नृभिरनुभूयते न ग्रहक्तामिति, कथं तर्हि ग्रहवैषम्ये फलमशुभमनुभूयते, ग्रहसाम्ये शुमं फलामिति। अत्रो-च्यते— पुंसां सत्कर्मपाककाले ग्रहसाम्यं स्यात्। दुष्कर्मपाककाले ग्रहवैषम्यं (प्रसज्येत) संपद्यतेति अत्राहुः—

> किन्तु तत्र शुभं कर्म सद्ग्रहेंस्तु नियुज्यते । दुष्कृतं वा शुभैरेव समवायो भवेदिति ॥ तस्माद्धि ग्रहवैषम्ये विषमं कुरुते जनः । ग्रहसाम्ये शुभं कुर्यात् जात्या जात्या पुराकृतम् ॥ केवलं ग्रहनक्षत्रं न करोति शुभं यदि । सर्वमात्मकृतं कर्म लोकवादो ग्रहा इति ॥

ग्रहरापि पुंसां स्वकमीवपर्यासः कर्तुं न शक्यते । तार्हि स्व-कमीभिन्यक्षनमप्यसुकरम् । तथाऽप्यशुमं कर्मफलमनुभवतः शुभ काले कर्म कुर्वतोऽपि शुभफलानुभवो न सम्भवति । शुभं कर्मफ-लमनुभवतो दुष्काले कर्म कुर्वतोऽपि शुभफलानुभव एव दृश्यते । नैतद्दित । तत्र शुभोऽपि लग्नकालः प्रवलैः प्राचीनासत्कर्मभिर-शुभलमानीयते । तथा दुष्कालोऽपि सत्कर्माभिश्शुभलमुपनीयते । तथा च विवाहाध्योय वराहामहिरेणोक्तं—

उद्घाहे नियतिनयत्यतिबला वेलां समं प्राक्फलैः । इति ।

ननु 'बली पुरुषकारो हि दैवमप्यतिवर्तते ' इति वचनात् शास्त्रार्थानुमवकौशल्यादिभिश्शुमलमकाल एव निरूपयितुं शक्यः। तथा छायाम्बुयन्त्रादिपुरुषकारपरीक्षाकारेण विद्गेधेर्देवज्ञैः कथं चित् यथोक्तो लग्नकाल एव प्रहीतुं शक्यते । तथाचोपनयन-प्रकरणे नारदेनोक्तं—

जन्मनः प्रथमस्येह कालो दैवेन चोदितः।
तस्मात् स एव दैवज्ञैः शुभः कर्तुं न शक्यते॥
द्वितीयजन्मनः कालः शक्यते ज्ञानिनो बलात्।
शुभः कर्तुमतो नृणां सर्वसंपत्समृद्धये॥ इति।

अत्रोच्यते—दैवाहते केवलपुरुषकारेण सत्कालो नावाप्यते, नापि पुरुषकारमन्तरेण दैवेनैव । यथा—वृष्ट्या विना केवलं पुरुष्ठितया कृष्या न फलसिद्धिः । नापि कृषिमन्तरेण दैवकृतया वृष्ट्येव फलसंपत्स्यात् । तस्मात् यथा—सत्यां दैवकृतायां वृष्टी कर्षतः पुरुषस्य कृषिवृष्टिसमायोगात् फलसिद्धिसंपत्स्यते । तथा देवपुरुषकाराम्यां संसृष्टाम्यामेवार्थसिद्धिराप्यते । तथा च वादर्रायणः—

विना वा मानुषं दैवं दैवं वा मानुषं विना। न च निर्वर्तयत्यर्थमेकारणिरिवानलम् ॥ सिद्धचन्ति सर्वे आरम्भाः संयोगात्कर्मणोर्द्धयोः। दैवातपुरुषकाराच्च न त्वेकस्मात्कर्थंचन॥ इति।

तस्मात् शास्त्रार्थानुभवादिना शुमं लग्नकालं निरूप्य छायादि-परीक्षाप्रयक्षेन प्राणादिकं लग्नकालं संपाद्य सूक्ष्मशुमलग्नकालासिद्धचै दैवं प्रतीक्षितव्यम् । तथा च वराहमिहिरः—

यतेन संपाद्य मनुष्यकारं यतावकाशे पुरुषो निरुन्धे । प्रतीक्षते दैवमतन्द्रितो यस्तमापदो नात्मकृतास्स्प्रशन्ति ॥ इति । VIDYAMADAVIAM यदा पुनर्देवाविरोधात् दैवज्ञवैदग्ध्यात् बलवता प्रयतिन लग्न-कालः कश्चिद्गृहीतः तदा पुराक्तमप्यातिराय्य स्वफलं दत्ते । तत्रापि कर्तुः कर्मप्रावल्ये विफलं दत्ते । कर्तुरतिप्रवलविरोधिकर्मानुरोधि साति तत्पुत्रादौ फलं दत्ते । तथा दैवानुगुण्येऽपि दैवज्ञदौर्वदः ध्यादिनानादरेण दुष्कालो गृहीतस्तदाऽपि दुष्फलं मुहूर्तजं परि-णमत्येव । तथा च सर्वसिन्धौ—

मुखदुःखकरं कर्म शुभाशुभमुहूर्तजम् । कालान्तरेऽपि वा कुर्यात् फलं तस्यान्वयेऽपि च ॥ इति । तस्मात् दैवानुरोधात् मुहूर्तमपि स्वफलं दत्त एवेत्यलमति-प्रसङ्गेन ॥

अथ बलाबलादिज्ञानाय स्वोचनीचानाह—

आदित्याद्यजगोमृगास्यविनताः कर्की च मी-नस्तुला स्वाचक्षिण्यथ तेषु दिघ्युतवहानष्ठोत्तरां विंशातिम् । तिथ्यंशान् शरसप्तविंशतिकृतीनत्यु-चकांशान् विदुस्तेभ्यस्सप्तमराशयोंऽशकयुताः नीचा प्रहाणां क्रमात् ॥ २१॥

आदित्यप्रभृति ग्रहाणां सप्तानां क्रमेण मेषादयः सप्त राशयः स्वीचसंज्ञाः । तेषु स्वीचराशिष्विप दशमादिमागानत्युचांशानाहुः । तद्यथा—आदित्यस्य मेषः स्वोचराशिः, तत्र दशमो मागः अत्यु-चांशः । चन्द्रस्य वृषमे तृतीयो मागः । कुजस्य मकरेऽष्टाविशः । वृधस्य कन्यायां पचदशः । गुरोः कर्कटके पञ्चमः । शुक्रस्य

माने सप्तिविशः । शेनस्तुलायां विशो भागोऽत्युच्चांश इत्यर्थः । स्वोच्चराशिम्यः सप्तमराशयः सूर्यादीनां नीचराशयः । तेषु तत्त-त्सङ्ख्यांशकाः अतीव नीचांशकास्स्युः । यथा——आदित्यस्य तुला नीचराशिः, तत्र दशमो भागोऽतिनीचांशः । चन्द्रस्य वृश्चिके तृतीयो भागः । कुजस्य कर्कटकेऽष्टाविशः । बुधस्य मीने पञ्च-दशः । गुरोर्मकरे पञ्चमः । शुक्रस्य कन्यायां सप्तिविशः । शने-र्मेषे विशो भागोऽतिनीचांश इत्यर्थः । इह दिगादिशब्दानां दशादिसामान्यसङ्ख्यामिषायिनामपि दिगनलादिसङ्ख्यापूरकार्थविशेषग्र-हणं ज्योतिश्शास्त्रप्रसिद्ध्या न दुष्यतीत्यवं सर्वत्र द्रष्टव्यम् ॥

त्रिकोणांशानाह—

सिंहे विंशतिरादितो गवि परे सर्वे ऽशकास्तुङ्ग-तो मेषे द्वादश पश्च योषिति परे तुङ्गाद्धयाङ्गे दश । जूके पश्च घटे तु विंशतिरमी मूलत्रिकोणाद्धयाः सूर्यादेः क्रमशो ग्रहस्य गदिताः शेषास्स्वराद्यं-शकाः ॥ २२ ॥

सूर्यादित्रहाणां ऋमेण सिंहादिराशिष्वमी भागा मूळ्ति-कोणा इत्युक्ताः । सूर्यस्य सिंहराशावादितः आरम्य विश्वति-भागाः । इन्दोर्वृषमे स्वात्युच्चसंज्ञात् तृतीयभागात् परे सर्वे सप्त-विश्वतिभागाः । कुनस्य मेषे आदितो द्वादश भागाः । बुधस्य क-न्यायां स्वात्युच्चसंज्ञात् पश्चदशभागात् परतः पश्चदश भागाः । गुरोधनुषि आदितो दश भागाः । शुक्रस्य तुलायामादितः पश्च भागाः । शहोने कुम्मे आदितो विश्वतिभागाः, मूल्तिकोणाल्याः । शेषा मूळित्रिकोणांद्रोम्यः परतः परिशिष्टा भागाः स्वराश्यंशकाः स्वरा-शिसंबन्धिनो भागाः अवीचीनाः स्वीचांशका इत्यर्थः । उक्तं च सारावरुयां—

विंशतिरंशास्तिहे त्रिकोणमपरे स्वमवनमर्केऽस्य ।
उच्चं भागत्रित्रयं वृष इन्दोः स्वत्रिकोणमपरेंऽशाः ॥
द्वादश भागा मेषे त्रिकोणमपरे स्वमं च भौमस्य ।
उच्चफलं कन्यायां बुषस्य तुङ्गांशकैस्सदा चिन्त्यम् ॥
परतिस्रिकोणजातं पञ्चभिरंशैस्स्वराशिजं परतः ।
दशिमभीगैश्रापे त्रिकोणमपरे स्वमं च गुरोः ॥
शुक्रस्य तु त्रिकोणं विषया जूके परे स्वराश्यंशाः ।
कुम्भे त्रिकोणनिजमे रविजस्य रवेर्थेथा सिंहे ॥ इति ।

वराहिमाहिरेण राशानामेव त्रिकोणसंज्ञाभिहिता-

सिंहो वृषः प्रथमषष्ठहयाङ्गतौष्ठिकु-म्मास्त्रिकोणभवनानि भवन्ति सूर्योत् ॥ इति ।

तथा सित सिहादिराशिस्थानां स्वराश्युक्तं त्रिकीणोक्तं वा त-दुभयं वा फलं प्राह्ममिति। चन्द्रस्य वृषभस्थस्य त्रिकोणजं स्वो-चजं वा तद्वयं वा। बुषस्य कन्यास्थस्य स्वोच्चनं त्रिकोणजं वा स्वराशिजं त्रितयं वेति सन्देहस्स्यात्। तन्निरासायायं स्वो-चत्रिकोणस्वराश्यादि विभागोऽभिहितः॥

अथ ग्रहाणां वर्गीनाह—

क्षेत्रं च होरा द्रेक्काणो नवांशो हादशांशकः। त्रिंशांशकश्च षड्वर्गा ग्रहाणां वर्गसंज्ञिताः॥२३॥ क्षेत्रं—त्रिशद्वागात्मको राशिः। होरा—राश्यर्षम्। द्रेकाणः—राशे-स्तृतीयो भागः। नवांशो—राशेर्नथमांशः। द्वादशांशकः—राशद्वी-दशांशकः। त्रिशांशकः—राशेस्त्रिशो भागः एते षड्वर्गसंज्ञाः। तत्र नारदः—

त्रिराद्वागात्मकं लग्नं होरा तस्यार्थमुच्यते ।
लग्नत्रिभागो द्रेकाणो नवांशो नवमांशकः ।
द्वादशांशो द्वादशांशिस्त्रशांशिस्त्रशदंशकः ॥ इति ।
एषु राश्यादियों यस्य संबन्धी स तस्य वर्गसंज्ञ इत्यर्थः ।
तथा च स्वल्पजातके—

ग्रहहोराद्रेकाणद्वादशित्राज्ञवांशभेदश्च । वर्गः त्रत्येतव्यो ग्रहस्य यो यस्य निर्दिष्टः ॥ इति । चशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन सप्तांशानामपि ग्रहणं । अपि-शब्दः पक्षान्तरद्योतनार्थः सप्त वा वर्गसंज्ञा इति ॥

तथा च श्रीपतिः— एवमेव खलु सप्त वर्गजाः।

यद्वा सप्तांश्रत्रहणेऽपि षडेव वर्गा इति, यतः सूर्येन्द्रोः
 त्रिंशांशा न सन्ति । भौमादीनां होरा नास्ति । तस्मात् षडेव
 प्रहाणां वर्गा इत्युक्तम् ॥

राश्यादीनामधिपतीनाह--

भौमः काव्यबुधेन्द्रिन इकविभूपुत्रार्यमन्दार्क-जा जीवश्च प्रथमादिराशिपतयस्तेषां ग्रहास्ते क-मात् । मेषैणाननतौलिकर्कटपातिप्रष्ठा नवांशाधि-

पाः तत्तत्स्वामिमुखास्त एव च पुनस्तद्वादशांशे श्वराः ॥ २४॥

मोमादयो द्वादश मेषादीनां पतयो भवन्ति । कुम्भमकरयोर्मन्दः । मीनधनुषोर्जीवः । मेषवृश्चिकयोः कुजः । वृषभतुल्योश्शुकः । मिथुनकन्ययोर्बुघः । कर्कटस्य चन्द्रः । सिंहस्य सूर्यः स्वामी । तेषां मेषादिराशीनां संबन्धिनो ये नवांशाः सम्यंशित्रभागात्मकाः तेषामिश्वराश्च मेषमकरतुलाकर्कटाद्यास्तद्धिपतिपुरोगाश्च प्रागुक्तास्त एव नव नव क्रमेण भवन्ति । यथोकं वृहज्जातके—

अजमृगतौलिचन्द्रमवनादि नवांशविधिः । इति ।

मेषस्य संबन्धिनो धनुरन्ता नव नवांशाः, तेषां भौमाद्या गुर्व-नता नव स्वामिनः । वृष्यस्य मकराद्याः कन्यान्ताः नव नवांशाः, तत्पतयश्च मन्दाद्या बुधान्ता नव । मिथुनस्य तुलाद्या युग्मान्ता नव नवांशाः, तद्धिपाः शुक्राद्या बुधान्ता नव । कर्कटस्य क-क्यीद्याः भीनान्ताः नव नवांशाः, तद्धिपाः चन्द्राद्या जीवान्ता नव स्युः । एवं सिहाद्विचतुष्टयस्य धन्व्याद्विचतुष्टयस्य च नद्भां शास्तद्धिपाश्चावगन्तव्याः । नव कृत्व आवर्तिताः द्वादश राशय एव तत्संबन्धिनः अष्टोत्तरशतं नवांशा भवन्ति । तद्धिपतयश्च तावन्तः । अथ मेषादीनां द्वादश सार्षद्विभागात्मकाः तद्धिपा-श्च तत्तत्स्वामिमुखास्तद्वाश्याद्यास्तद्वाश्यधिपाद्याश्च त एव प्रागुक्ता राशयो ग्रहाश्च भवन्ति । यथा—मेषस्य मेषाद्या मीनान्ता द्वा-दशांशकाः, तद्धिपाश्च भौमादयो जीवान्ता द्वादश ग्रहाः । वृष(भ)स्य वृषादयो मेषान्ता द्वादशांशाः, तद्धिपाः काव्यादयो भौमानता द्वादश इत्यादि । मिथुनमपि द्रष्ठव्यम् । तथा च वरा-

'भवनसमांशकाधिपतयः स्वगृहात् ऋमशः' इति ।

एवं मेषादीनां चतुश्रत्वारिशदुत्तरशतं द्वादशांशास्तदाविपाश्च-तावन्तरसंभवन्ति ॥

एकैकं भवनं दशांशतनवो द्रेक्काणसंज्ञास्त्रय-स्तेषां तद्ग्रहतत्तनूजनवमस्थानेश्वरास्स्वामिनः । होरार्धे भवनस्य सूर्यशिशोगोरोजेऽन्यथा ते समे-त्वाद्याः क्षेत्रपतेस्तदागमपतरन्यति चान्ये जगुः॥

एको राशिः दशभागात्मकास्त्रयस्त्रयो देकाणसंज्ञा भवन्ति । राशेस्तृतीयभागास्त्रयो दशभागात्मका देकाणा इत्यर्थः । तेषां प्रथमिद्वितीयतृतीयद्रेकाणानां तद्वाशेस्त्वाधिपतिस्तत्पञ्चमाधिपस्तन्नवमाधिपश्च त्रयस्त्वाभिनो भवन्ति । यद्वाशिसंवन्धी देकाणस्तस्य प्रथमस्य तद्धिपतिरेव, द्वितीयस्य तत्पञ्चमराश्याधिपतिः, तृतीयस्य तन्नवमराश्यिपतिः स्वामीत्यर्थः । तथा च बृह्ज्जातके—

द्रेक्षाणास्स्युस्स्वभवनसुतस्वत्रिकोणाधिपानाम् ॥ इति ।

राशेरर्घ होरा । एको राशिः पश्चदशभागात्मके द्वे होरे स्त इत्यर्थः । तथा च वराहिमिहिरः—

> होरेाति छत्रं भवनस्य चार्षम् ॥ इति । ते होरे मेषमिथुनादौ विषमराशौ सूर्येन्द्रोः स्वाम्ये स्तः । समे

वृषकक्योंदो राशो शशिसूर्ययोः स्वाम्ये स्तः । विषमराशो प्रथम-होरायां सूर्यस्त्वामी द्वितीयायाश्चन्द्रः । समराशो प्रथमायाः शशी, द्वितीयायाससूर्यस्त्वामीत्यर्थः । तथाचोक्तं—

मातीण्डेन्द्रोरयुनि समभे चन्द्रभान्वोश्च होरे । इति ।

अन्ये यवनेश्वरादयः एवमाहुः—यद्राशिसंबन्धिनी होरा सा आद्या तद्राश्यधिपतेः, द्वितीया तस्मादेकादशराश्यिवपतेरिति । तथा च यवनेश्वरः—

आद्या तु होरा भवनस्य पत्युरेकादशक्षेत्रपतिर्द्धितीया । इति । तु शब्दो द्रेकाणानामप्याधिपत्यविकल्पप्रदर्शनार्थः । आद्यो राश्य-धिपतेः, द्वितीयो द्वादशराश्यधिपतेः, तृतीय एकादशराश्यधिपते-रिति । तथा च स एव—

स्वद्वादशैकादशराशिपानां द्रेकाणसंज्ञाः क्रमशस्त्रयोऽत्र । इति । एवं द्रेकाणाः षट्त्रिंशत् होराश्चतुर्विशतिः तद्धिपाश्च ता-वन्तः ॥

कुजरविसुतजीवसौम्यशुक्रादशरशरनागगिरी-षुभागनाथाः । अयुजि युजि तदंशकाश्च तेषामः धिपतयश्च विपर्ययेण गण्याः ॥ २६ ॥

विषमराशौ कुजाद्यः पश्च शरादिश्चिशद्भागसमुदायपश्चकस्य स्वामिनः । समराशौ भागास्तद्धिपतयश्च विपर्ययेण गण्यन्ते । शुक्ताद्याः इष्वादिश्चिशद्भागसमुद्यानां स्वामिन इत्यर्थः । इदमुक्तं भवति—एको राशिस्त्रिशद्भागः । विषमराशावादितः पश्चानां भागानां कुनः । ततः पष्टादीनां पश्चानां मन्दः, एकाद्शादीनामष्टानां जीवः, एकोनिविंशादीनां सप्तानां बुधः, षिंद्विंशादीनां पश्चानां शुकः स्वामी, समराशों प्रथमतः पश्चानां शुकः, षष्टादीनां सप्तानां बुधः, त्रयो-दशादीनामष्टानां जीवः, एकविंशादीनां पश्चानां मन्दः, पिंद्विंशादीनां पश्चानां कुनः स्वामीति । अत्र श्रुतकीर्तिः—

पञ्चाथ पञ्च चाष्टे। सप्त च पञ्चेव विषमभवनेषु । धरणिमुतमन्दमुरगुरुवुधशुक्राणां क्रमेणांशाः ॥ पञ्चाथ सप्त चाष्टे। पञ्च च पञ्चेव युग्मभवनेषु । भागा भागवशशिमुतमुरेड्यशानिभूमिपुत्राणाम् ॥ इति।

त्रिशांशानां षष्टयुत्तरत्रिशतं, तद्धिपानां षष्टिश्च संपन्ना । समांशाधिपास्तु कल्याणवर्मणोक्ताः—

मेषादिमिथुनसृगहरिमीनतुलावृषभचापधरकर्की । घटभृतकन्यापूर्वाः सप्तांशानां भवन्तीशाः । इति ।

साधिकसप्तमांशिष्ठिप्ताश्रतुर्भागाः सप्तांशाः, तेषां विषमराशौ तद्राद्यधिपत्रमुखाः सप्त त्रहाः स्वामिनः । समराशौ सप्तमाधिपाद्याः सप्तेति चतुरशीतिस्सप्तांशाः तद्धिपाश्च तावन्तः ॥

ग्रह्दिकतफर्शनिर्णयाय तहृष्टिमाह—

सौरिस्तृतीयदशमौ गुरुस्त्रिकोणं कुजस्तु चतु-रश्रम् । पश्यति समग्रमितरे चरणाविवृद्धयाथ-सप्तमं सर्वे ॥ २७॥

त्रिदशादिस्थानद्वन्द्वानि मन्दाद्यास्त्रयः समग्रं पश्यन्ति । मन्दरत्तीयदशमी, तत्स्थन्रहांश्च पूर्णदृष्टचा पश्यति । तदन्ये पाद-Vidyamadaviam दष्टचा । गुरुः पश्चमनवमे पूर्णदृष्टचा, तद्न्ये द्विपाददृष्टचा, कुनः चतुर्थाष्टमो पूर्णदृष्टचा, तद्न्ये षट् त्रिपाददृष्टचा । सर्वेऽपि सप्तमं पूर्णदृष्टचा पश्यन्ति । अथश्वदः कात्स्तर्चन्वाची, सप्तमं अथ—कृत्स्तया दृष्टचा पश्यन्ति । अनुक्तानि स्थानानि न पश्यान्तीत्यर्थसिद्धम् । तथा च कृष्णः—

षष्ठं द्वितीयभवनं द्वादशमेकादशं न पश्यन्ति । स्वस्थानाद्वीक्षन्ते स्रहास्तथान्यानि भवनानि ॥ इति ।

अत्रेयम्पपत्तः— ग्रहाणां स्वस्थानात् सप्तमे पूर्णा दृष्टिः । ततः क्रमेण क्षीयमाणा एकादशे शून्या सप्तमादुत्कमात् इसति, षष्ठे शून्यापि च । स्वस्थानात् चतुर्थे पादीना दृष्टिः । तस्मात् क्रमेण हीयमाना पञ्चमेऽघीना। षष्ठे शून्या। चतुर्थादुत्क्रमे-णापचायमाना तृतीये त्रिपादोना । द्वितीये शून्या भवति । षष्ठद्वितीयैकादशद्वादशानि भावमध्ये दृष्टचभावात् ग्रहा न परयन्ती-त्युक्तम् । एतदृष्टचानयनायेदं गणितमुक्तं भवति । द्रष्ट्रग्रहं दश्या-द्विशोध्य शिष्टं दृष्टिकेन्द्रं, तस्मिन्नेकराइयूने दशराश्यिषिके च न पश्यति । तत्र पञ्चाधिके दक्षिणा दृष्टिः, पञ्चराश्यूने वामा दृष्टिः स्यात् । दृष्टिकेन्द्रं पड्राइयधिकं राशिदशकादिशोध्य शिष्टं लिप्ती-कुत्य ज्ञानरथैर्विभनेत् । लब्धा दृष्टिः । अथ पश्चरारयधिकं चेत्, राशिपञ्चकमपास्य ज्ञानोदयैर्विभनेत् । राशिचतुष्काधिकं चेत्, राशि-पञ्जकाद्विशोध्य शिष्टं ज्ञानतुङ्गैर्विमजेत् । राशित्रयाधिकं चेत्, राशिचतुष्कान्निहत्य शिष्टं लिसीकृतं ज्ञानतुङ्गसहितं ज्ञानरथैर्विभजेत् । राशिद्वयाधिकं चेत् राशिद्वयमपास्य शिष्टं कलीकृतं ज्ञानधीयुतं ज्ञानतुङ्गिविभनेत् । अथ एकराश्यिवकं चेत् राशिमपास्य शिष्टं ज्ञानरथैर्विभनेत् । लब्धा दृष्टिस्यात् । उक्तं च श्रीपतिना-

हश्यो द्रष्ट्रा विरहिततनुः षड्झहेम्योऽधिकश्चेत दिग्म्यश्रोध्यो विहितकिकः खाभ्रपक्षाद्विमकः । हष्टिस्सा स्याद्यदि शरगृहेम्योऽधिकः पश्चहीनो छिप्तीभूतो धृतिशतहतस्स्याचतुर्भाधिकश्चेत् ॥ त्यक्लेपुम्यः खखरसगुणैविह्निम्योऽधिकश्चेत् शोध्योऽव्यिभ्यः तदनुकलितष्पष्टिकत्यासमेतः । भक्तो ह्रचश्चेश्शतविनिहतै राशियुग्माधिकोऽपि ह्याम्यामूनो नवभ्रतयुतः षष्टिकत्यासमेतः । एकोनितश्चेकगृहाधिकश्चेत् कलीकतो ह्रचश्चश्चरतिनिकः । एवं स्कुटाः खेचरहष्टयस्त्यु-द्विग्म्योऽधिकां पश्यति न महेन्द्रः ॥ इति ।

यस्मादिह मन्दादीनां तृतीयदशमादिदृष्टिषु पादादिदृष्ट्य एवानीताः, तस्मात् तद्दृष्टिसामग्रचापादनाय त्रिपादादिदृष्ट्यो ²निधेयाः। तथा च श्रीपातिः—

त्रिद्धचेकपादाः क्रमशो(भि)निषेयाः शनैश्चराचार्यमहीमुतानाय् । त्रिकर्मणोधीं मुतयोश्च रन्ध्रवन्व्वोःस्थितानामिह पूर्वदिक्षु । इति । मन्दादीनां तृतीयदशमादिषु पादवृद्धचोदितानीता दृष्टिरेव पूर्णो कार्थेत्यन्ये । तथा च श्रीधरः—

दशमञ्यादिके स्थाने पादवृद्धचोदिता हि या ।
सूरसौरिकुजाः पूर्णा ढाप्टे कुर्वन्ति तां ऋषात् ॥ इति ।
यथा त्रिदशादिस्थानेषु सामान्येनोदिताः पादादिदृष्टयः क्वित्प्रदेशे युक्ता व्यवस्थापिताः, एवं त्रिदशादिस्थानेषु सामान्येनोदि-

¹ विभक्त:.

 $^{^2}$ आभेधेयाः.

तास्त्रिपादादिक्षेप्यदृष्टयोऽपि तदनुसारेण व्यवस्थापनीया इत्यन्ये, तथा च सूर्यदेवः—

यथा द्रामस्थानस्योक्ता पाददाष्टिः दृष्टिशून्यं द्रामरा-श्यन्तमुपऋम्य प्रातिछोम्येन दशमादी भवति। तथा तत्स्था-त्रिपाददृष्टिरापि दृष्टिशून्यद्शमराहयन्तात् नस्यादिता दशमादौ भिततुमहिति । एवं पञ्चमदशमादौ गणितानीता पाददृष्टि-रिष पूर्णा भवतीति । एवं त्रयः पक्षाः । तेषु श्रीपतिमतं तदुक्त-वदानीताया दृष्टेः रूपाधिक्यस्यापि क्वित्संभवान्न साधु। नापि श्री-धरमतम्, तदुक्तवदानीतानां त्रिद्शादिस्थानेषु सामान्येनोदितानां पूर्णेटछीनां राश्यादिमध्यानेतेषु सामान्यदर्शनात् । सप्तमस्थाने तु सर्वेषां सामान्येनोदितायाः पूर्णदृष्टेः राश्यादिमध्यान्तेषु वैषम्यदर्शनाच । सूर्यदेवमतं तु त्रिदशादिस्थानेषु त्रिपादादिक्षेप्यदृष्टिः फलराशि राशि-छिप्तात्रमाणराशि तत्तद्राश्यंतत्तत्स्थानग्रहान्तरिष्ठप्ता इच्छाराशि परि-करुप्य, त्रैराशिकेणानीतं गणितसिद्धपादादिदृष्टिषु क्षिपेत्। एवं च राश्यादिमध्यमानतेषु साम्यं। रूपाधिक्यं च न स्यादिति युक्तं च नैतच सारं, एकस्मिन्नेव भागान्तरेऽतिवैषम्यदर्शनात् । तथाहि---मन्दस्य दशमराश्यारम्भे पूर्णी हः हैः । नवमराश्यन्ते पादहिछ-रेवेलेकिसमनेव भागान्तरे महद्वैषम्यमापद्यते । यथा सप्तमनिवन्धना पूर्णो इष्टिब्बछमावमध्यमुशकम्य प्रवृता क्रमेण वर्धमाना सप्तममध्ये पूर्णा भवति । ततस्तस्मादारम्य क्रमेण क्षियमाणाष्टममध्ये शून्या । एवं त्रिदशादिस्थाननिबन्धनाः पादादित्दृष्टयोऽपि तत्पूर्वभावमध्यात् प्रवृत्ताः तत्त्रिभावमध्ये भवन्ति, तदुत्तरभावमध्ये शून्याश्च । तत्तद-न्तराळे गणितेन पूर्वीत्तरदृष्टचनुसारेण दृष्ट्यो व्यवस्थापिताः। एवं

त्रिपादादिसेप्यदृष्टयोऽपि तत्प्राग्मावमध्यात्प्रवृत्ताः त्रिद्शादिमावमध्ये पूर्णाः तदूर्ध्वभावमध्येऽविसता यथा स्युस्तदनुसारेण निषेयाः । इहापि त्रिपादादिहक्सेप्यद्यष्टि फलराशि राशिलिप्ताप्रमाणराशि तत्तद्वाव-मध्यतत्तत्स्थदृश्यप्रहान्तरिलाः इच्छाराशि परिकल्प्य त्रेराशिकेणातं सेप्यदृष्टिषु विशोध्य शिष्टं गणितानीतदृष्टिषु सिपेदिसेषा सुगमा युक्तियुक्ता च दृष्टिः । ननु द्वितीयषष्टयोदृष्ट्यभावः केश्चिद्वलः, श्रीपत्यादिभिस्तयोयुक्ता दृष्टिव्यवस्थापितेति विरुद्धं, न, श्रीपत्यादिभिद्धं हृष्टारं दृश्याद्विशोध्य तत्केन्द्रराशिभिदृष्टिव्यवस्थापिता । पूर्विदृष्टाः कान्तराशिप्रदेशं भावमध्ये कत्वा तद्भावमध्ययोः दृष्ट्यभाव उक्तः । इति ॥ स्रहाणां मित्रामित्रभावमाह—

क्रेया जीवकुजेन्द्वो रिवबुधौ गुर्वक्शीतांशवः शुक्राकौ कुजविध्विनाः शनिबुधौ शुक्रेन्दुजौ च क्रमात् । अर्कादेस्सुहदस्समास्तु शशिजः सर्वे च काव्यार्कजौ मन्दाचार्यकुजादशनिर्गुरुकुजौ जीवः परे शत्रवः ॥ २८॥

जीवकुजेन्द्व इत्यादिपदक्रमेण कथिताः सूर्यादीनां सुहृदः मित्राणि मवन्ति । अथ शशिज इत्यादिपदक्रमाडुक्ताः समाः उदा सीनाः । सर्व इति । रविबुधयोर्भित्रत्वात् तदन्ये—कुजगुरुशुक्रमन्दा इत्युच्यन्ते । परे भित्रेभ्यस्सेभम्यश्चान्ये शत्रवो भवन्ति । एतदुक्तं भवति बृहज्जातके—

रात्र् मन्दिसतौ समरराशिसुतो मित्राणि शेषा रवेः तीक्ष्णांशुहिमरिश्मिनश्च सुहदौ शेषास्समारशीतगोः। जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य मुहदो ज्ञोऽरिस्तिताकी समो मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुश्रात्रुस्समाश्चापरे । सूरेस्सौम्यसितावरी रिवसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा सौम्याकी सुहदो समो कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी । शुक्रज्ञौ सुहदो समस्सुरगुरुः सौरस्य चान्येऽरयो ये प्रोक्तास्सुद्श्विकोणभवनातेऽमी मया कीर्तिताः ।

इतीदं सत्यमतम् । यवनमते शत्रुमित्रे द्वे एव निसर्गजी, न समः। तथा च तत्रैव--

> जीवा जीवनुषो सितेन्दुतनयो व्यक्ती विभूजाः क्रमा-दिन्द्वकीदिकुजेन्द्रिनाश्च सुहृदः केषांचिदेवं मतम् । सत्योक्ते सुहृद्क्षिकोणभवनात् स्वात् स्वान्त्यधीयर्मपाः स्वोच्चायुस्सुखपाश्च छक्षणविधेनीन्ये विरोधादिति ।

इह यवनमतात्सत्यमतस्य साधुत्वापाद्नायायं लक्षणिविधिः ।
तथाहि—महस्य स्वित्रकोणराशेः द्विचतुःपञ्चाप्टनवद्वादशसङ्ख्यराशीनां स्वोच्चराशेश्राधिपत्यकता मित्रता । तस्मात् तृतीयषष्टसप्तमदशमैकादशराश्याधिपत्यकता रात्रुता । प्रहास्तु मित्रत्वयोगात्
मित्राणि, शत्रुत्वयोगात् शत्रवः, उभययोगान्मध्या भवन्ति । सूर्यसोमो स्वाम्यद्वयाभावात् मित्रे शत्रू वा स्तः, न समाविति लक्षणासिद्धत्वात्
अनेकाचार्याभिमतत्वाच्च सत्यमतमेव श्रेयः, न यवनेश्वरमतिमिति तदनादत्य सत्यमतमाश्रितमाचार्येण । लोकेऽपि शत्रवोऽपि कदाचिन्मित्री
भवन्ति, मित्राण्यपि शत्रूभवन्ति, प्रहा अपि तद्वदिति ॥

तात्काछिकशत्रुमित्रतामाह—

मेषूरणाम्बुसहजायधनव्ययेषु

यो यस्य तिष्ठति स तस्य सुहत्तदानीम् । अन्येषु वैर्युभयथारिसुहत्त्वयोगात् ज्ञेयो प्रहोऽधिसुहृदध्यसुहृत्समश्च॥

यस्य प्रहस्य दशमतुरियनृतीयैकादशिद्वतीयद्वादशेषु यस्तिष्ठित स तत्स्था प्रहस्तस्याविभूतस्य प्रहस्य तदानी तत्काले मित्रं मनति । अन्येषु दशमादिन्यतिरिक्तेषु प्रथमसप्तमपश्चमनवमषष्ठाष्टमेषु स्थितः तत्काले शत्रुर्भविति । तथा तत्स्यप्रहस्य सोऽपि मित्रं शत्रुश्च स्थात् । तावुभावन्योन्यमित्रे अन्योन्यशत्रू च स्तः इत्यर्थः । उभयथा—नैसार्ग-केण तात्कालिकेन च । अरिश्च मुद्धच अरिसुद्धदे । तयोभीवोऽरिसुद्ध-त्वं, तद्योगात् अरिसुद्धत्त्वयोगाच हेतोरित्यर्थः । स प्रहोऽधिसुद्धद्य-सुद्धत् समश्च ज्ञेयः । चकारस्समुच्यार्थः । तौ मुद्धन् असुद्धचेति । एतदुक्तं भवति—यो यस्य नैसार्गिकस्सुद्धत्, स तात्कालिकसुद्धत्त्वयोगादिधि-सुद्धत् भवति, तात्कालिकारित्वयोगात् समः, यो नैसार्गिकश्चात्रः स तात्कालिकारित्वयोगादिधिनसुद्धत् भवति, तात्कालिकारित्वयोगात् समः, यो नैसार्गिकश्चात्रः स तात्कालिकारित्वयोगादिधिनसुद्धत् भवति, तात्कालिकसुद्धन्वयोगात् सुद्धत्, तात्कालिकारित्वयोगादिधिनस्तमः, स तात्कालिकसुद्धन्वयोगात् सुद्धत्, तात्कालिकारित्वयोगादिश्च भवति । तथाच वराद्दमिद्धिरः——

अन्योन्यस्य घनव्ययायसहजव्यापारबन्धुस्थितास्तत्काले सृहद्स्त्वतुङ्गभवनेऽप्येकेऽर्यस्त्वन्यथा।
ह्रचेकानुक्तभपान् सृहत्समिरिपून् सिश्चन्त्य नैसिर्गिकान्
तत्काले च पुनस्तु तानिधसुहिन्मित्रादिभिः कल्पयेत्॥ इति।
यो यस्य स्वोच्चराशो तिष्ठति, स तस्य तात्कालिकमित्रमित्येतः
दाचार्येण युक्तचयुक्तामिति नोकम्। यसमादुचस्थस्य मित्रत्वे नीचस्थेन शत्रुणा भाव्यमिति॥

कालहोराधिपानाह--

दिनदादशांशो मतः कालहोरा पतिस्तस्य पूर्वस्य वाराधिनाथः। ततष्पष्ठपष्टाः क्रमेणेतरेषां निशायां तु वारेश्वरात्पश्चमाद्याः॥२०॥

दिनस्य स्फुटिदनप्रमाणस्य द्वादशांशः — किश्चिद्नाधिकसा-धिद्विविद्यादेकात्मकः काल्रहोरासंज्ञः। तस्य तद्वारेशः पतिः, ततो द्वितीयस्य वारेशात् षष्ठः, तृतीयस्य तस्मात् षष्ठः पूर्वस्मात् यश्चतुर्थो भवति । एवमन्येषामपि तक्तत्षष्ठास्स्वामिनस्स्युः। एवं निशायामपि द्वादश-काल्रहोरासंज्ञाः। तत्राद्यस्य वारेशात् पश्चमः पतिः। द्वितीयादीनां वारेशपश्चमात् पष्ठषष्ठाः पतयस्स्युः, प्रतिदिनं चतुर्विश्वातिकाल्रहोरा-स्तासां वाराधिपाद्याः यथोत्तरं सप्तैव पौनःपुन्येनावृताः पतयो भवन्ति।

यथोक्तमार्थभटेन--

सप्तिते होरेशाश्श्रानेश्वराद्या यथाक्रमं शीवाः । शीव्यक्रमाचतुर्थाः भवन्ति सूर्योदयाद्दिनपाः ॥ इति ।

रानैश्वराद्या इति रानैश्वरगुरुभौमार्कशुक्रनुषचन्द्रा उच्यन्ते । अत्र केचिदाहुः—दिनस्यैव चरवशात् ह्यासवृद्धी स्तः, तदनुसारेणः काछहोराणामिति । तथाच श्रीपतिः—

वारप्रवृत्ता विटिका द्विनिद्याः कालास्य होरापतयश्सराप्ताः । वाराधिपाद्या रविशुक्रसौम्य-शशाङ्कसौरेड्यकुनाः क्रमेण । इति । कालहोरास्तार्धद्विघटीरूपा नियमिताः। तथाच भरद्वाजः— यावन्नाडीद्वयं सार्थं कालहोरेति चोच्यते। अहोरात्रे चतुर्विराद्धोरास्तास्स्युस्समा इति॥

अन्ये तु दिनवत् काछहोराणामपि चरवशात् हासवृद्धी वाञ्छन्ति । तथाच सर्वसिन्धौ—

यमकण्टकहोराद्धिप्रहारगुळिकाद्यः ।

दिनरात्रिस्प्रशो नाड्यः तहुणास्त्रिशता हताः ॥ इति

तहुणाः--स्फुटदिनगुणिता इत्यर्थः । एतदेव सारं, यस्मादुकं--

प्रातिदिनपतेर्गण्यास्सायं तत्पश्चमादितः। इति । तथाहि काल् होराणां सार्विद्विचटीक्द्रपत्वे नियते यदा त्रिशाद्धटीमितं दिनं तदा रात्रो प्रथमहोराया वारेशपश्चमः पितस्यात् । यदा तु सार्वसप्त-विश्विद्विचित्रात्मकं तदा वारेशसप्तमः पितः प्राप्नोति । यदा सार्व-द्वात्रिशद्धिकात्मकं तदा वारेशतृतीय इति । अथ होराणां दिन-द्वाद्शांशप्रमाणत्वे सर्वदा शर्वरीपूर्वहोराया वारेशपश्चम एव पित-भवति । काल्होरास्विनयतमानाः सार्विद्विच्छीक्दपाः तद्नाधिका वा स्युः । तस्मात् दिनद्वादशांशः काल्होरेत्येतदेवानेकाचार्या-भिमतमाचार्येणोक्तम् । तुशब्दो मतान्तरद्योतनार्थः । दिवापि वारेश्वरात्पञ्चमाद्या होरापतय इति । तथा चोक्तमित्रणा—

> गुर्वाराकेभृगुज्ञेन्दुमन्दा अकादिवारतः। चतुर्विज्ञांशाणा वारमन्त्यं वारेशितुः क्रमात्॥ इति

अथ नक्षत्रसंज्ञामाह—

नक्षत्राणां नामान्यश्विन्यादीनि छोकसिद्धानि। निजदेवताभिधानैरभिधास्यन्ते क्विच तान्यत्र॥ नक्षत्राणि सप्तिवंशतिः, तेषां नामान्यश्विन्यादीनि । अश्विनी भरणी कृत्तिकेत्यादीनि लोकसिद्धानि । अतस्तानि नेहामिधीयन्ते इति शेषः । अत्र शास्त्र तानि कृचिन्नक्षत्रनिर्देशे कार्ये श्राव्यवृत्तप्रथनाय निजदेवतामिधानैः—निजनामिधः—अश्विनीत्यादिभिः, स्वदेवतानामिधः अश्विनावित्यादिभिर्वा, स्वदेवताकृतनामिधः 'सास्य देवता ' इत्येथे तिद्धतप्रत्यान्तेर्नामिस्राश्विनमित्यादिभिर्वा वक्ष्यन्ते ॥

नक्षत्राणां देवता आह—

भानामिष्यमाग्निघातृ हा होनो हे हो ऽदिति गीं— ष्पतिः स्तपौँघाः पितरो ऽर्यमा भगरवी त्वष्टा ऽऽहा-गेन्द्राग्नयः। मिन्नेन्द्रौ निर्ऋतिः पयोदकुसुमं विश्वे मुकुन्दो वसुक्षीरे हा। वज एकपात् पुनरहिर्बु भ्रचश्च पूषाचिपाः॥ ३२॥

अश्विन्यादीनां भानामश्व्यादयस्सप्तिविश्विताः अधिपास्त्युः । आश्विन्या अश्विनौ देवता, भरण्या यम इत्यादि । घाता—प्रजापितः । आदितिः—देवमाता, गीष्पितः—वृहस्पितः । सर्पेघाः—सपिश्रेष्ठाः । अर्थमभगौ द्वौ देवौ । लष्टा—देविशिलिः । आशुगो—वायुः । विशाखानस्त्रस्येन्द्राशी द्वौ देवता । तथाच श्रूयते—विशाखे नक्षत्रं इन्द्राशी द्वौ देवता । तथाच श्रूयते—विशाखे नक्षत्रं इन्द्राशी द्वौ देवता इति । मित्रो देवः । पयोदकुमुमं जलम् । विश्वे—विश्वदेवाः । मुकुन्दो—विष्णुः । वसवोऽष्टौ देवाः । क्षीरेशो वरुणः, अज एकपात्—अजैकपान्नाम देवः । अहिर्नुध्रचो देवः । कोचित् पूर्वोत्तर्फलगुन्योः देवताविनिमयमामनित । तथा च रङः—

अश्वी यमदहनकमलनशिश्चित्रभृदादितिजीवफणिपितरः । समगोऽर्यमा दिनकरस्त्वष्टा पवनश्च शक्ताश्रो । मित्रश्चिक्तो निर्ऋतिस्तोयं विश्वे हरिवेसुर्वेरुणः । अजपादोऽहिर्बुध्रचः पूषा चेतीश्वरा मानाम् । इति ॥

तदनादरणीयं, अश्रीतत्वात् । श्रुतिविरेश्वे अस्य ज्योतिश्शा-स्त्रस्य श्रुत्यङ्गत्वमेव नोपपद्यत । आचार्योक्तमेव श्रौतम् । तथा च श्रूयते—

> 'फल्गुनी नक्षत्रमर्थमा देवता, फल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता' इति । तस्मादत्रोक्तमेव साधीय इति । केषांचिद्धानां संज्ञान्तरमाह-—

पूर्वा फल्गुन्यषाहाश्च पूर्वाः प्रोष्ठपदा अपि । पूर्वात्रयं विदुस्तस्मादुत्तरं चोत्तरात्रयम् ॥ ३३ ॥

फलगुनीसंज्ञे आषाढासंज्ञे प्रोष्ठपदासंज्ञे च द्वे द्वे नक्षत्रे स्तः । तत्र पूर्वे नक्षत्र त्रयं पूर्वात्रयं विदुः । पूर्वेत्रयादुत्तरं यत्रक्षत्र-त्रयं तदुत्तरात्रयं विदुः ॥

शूर्पिद्वदैवसंज्ञा विशाखयोरिदितिभस्य मात्रा-ख्या । प्रोष्ठपदादितयस्य क्रमशस्स्यात् भाद्रबु-भ्रयसंज्ञानम् ॥ ३४ ॥

विशाखयोः-विशाखाक्षत्रस्य शूर्प द्विदैविमिति संज्ञाद्वयं स्यात् । अदितिमस्य-पुनर्वसुनक्षत्रस्य मातृसंज्ञा । प्रोष्ठपदाद्वयस्य क्रमशो भाद्रबुध्रच संज्ञा स्यात् । पूर्वप्रोष्ठपदानक्षत्रस्य भाद्रमिति उत्तर-प्रोष्ठपदानक्षत्रस्य बुध्रचामिति संज्ञे स्त इत्यर्थः ॥

नक्षत्रनिर्देशे लाववायाह—

यन्नक्षत्रोपपदा यावत्यभिधीयते पुरासंख्या । भानामिह सा संख्या विज्ञेया तावतां तदादीनाम्॥

यन्नस्ततमुपपदं कृत्वा यावती—द्वित्रचादिका संख्या पुराभि-धीयते—अभिधास्यत इत्यर्थः । 'यावत्पुरानिपातयोर्छट्' इति भविष्यति छट् । सा नक्षत्रोपपदा संख्या तदुपपदीकृत्य नक्षत्रादीनां भानां तावतामपि व्यापिनी विज्ञेया । नक्षत्रोपपदवत्संख्यानिर्देशे तदु-पपदीभूतनक्षत्रप्रभृतीनि तावत्संख्यानि मानि प्राह्माणीत्यर्थः । यथा-चित्राद्वयमित्युक्ते चित्रास्वात्यौ नक्षत्रे गृह्मेते । श्रवणत्रयमित्युक्ते श्रवणधनिष्ठाशतमिषजो नक्षत्राणि त्रीणि गृह्मन्ते इत्याद्यूह्मम् ।

नक्षत्राणां कत्यविशेषामिधानाय विभागसंज्ञामाह—

तिष्यो वैष्णवमुत्तरात्रयवसुप्रचितसं रुद्रभं रोहिण्या युतमतदृक्षनवकं विज्ञयमूर्ध्वाननम् । मैत्राश्विन्यदितीन्दुपौष्णपवनत्वष्ट्रकदेवेन्द्रभं तिर्यग्वक्त्रमधोमुखं तद्रपरं तत्तत्समं तत्फलम् ॥

तिष्यः-पुष्यः । वैष्णवं —श्रवणं । वसुः —धिनश्च । प्राचेतसं —शतिभवं । रुद्रमं —आद्रा । एतत्पुष्यादिनक्षत्रनवकमूर्ध्वमुखसंज्ञम् । मैतं —अनू-राधा । इन्दुः —मृगिशिरः । पौष्णं —रेवती । पवनः —स्वाती । अर्को हस्तः । देवेन्द्रमं — ज्येष्ठा । एतानि भानि, समाहारैकवद्भावः । अनूराधादीदं मनवकं तिर्थङ्मुखसंज्ञम् । ताम्यामपरं ऊर्ध्वमुखन्तिर्थङ्मुखव्यतिरिक्तनक्षत्रनवकमधोमुखसंज्ञम् । मरणीकृत्तिकाऽऽश्चे-

षामखामूळिवशाखापूर्वात्रयाणीति । तत्फलं-तन्नक्षत्रनवकत्रयकृत्यं तत्त-त्समं-तस्यतस्य संज्ञासदृशीमत्यथः । तथाच श्रीपतिः —

तिष्याद्राश्चवणोत्तराश्वतभिषग्बह्मश्चविष्ठाह्मयान्यूर्ध्वास्यानि नवोदितानि मुनिभिधिष्ण्यान्यथैतेषु तु ।
प्रासाद्ध्वजहम्यंवारणगृहप्राकारस्वकोरणच्छायारामविधिहितो नरपतेः पट्टाभिषेकादि च ॥
ज्येष्ठादित्यकराश्विनीमृगशिरःपौष्णोऽनुराधानिस्नत्वाष्ट्राख्यानि वदन्ति मानि मुनयस्तिर्यङ्मुखान्यषु तु ।
अश्वेभोष्ट्रसुस्त्रासमवृषारश्चादिदन्तिश्वनौगन्त्रीयन्त्रहस्त्रप्रवाहगमनारम्भाः प्रसिद्धचन्ति च । इति ।

क्षिप्रास्तीक्ष्णकराश्विनेयगुरवो वस्वम्बुनाथानि-छश्चीनाथादितयश्वराश्व मृदवश्चित्रान्त्यिमत्रेन्दवः। उम्रा भाद्रयमार्यमाम्बुपितरो ज्ञेया बुषेरुत्त-रारोहिण्यस्स्थिरसंज्ञितास्तदपरास्तीक्ष्णाह्वयास्ता -रकाः॥ ३६॥

तीक्ष्णकराश्विनेयगुरवः स्ताश्विनीपुष्यास्त्रयः क्षिप्रसंज्ञाः । धिनष्ठाज्ञतिभवक्रवातीश्रवणपुनर्वस्वः पञ्चक्षीणि चरसंज्ञानि । चिन्त्रारेवत्यनूराधामृगज्ञीषाणि चत्वारि मृदुसंज्ञानि । भाद्रं पूर्वान्भाद्रा, यमो भरणी अर्थमा, फलगुनी पूर्वाफलगुनी, अम्बु पूर्वाषाढं पितरो भावाः एतानि पञ्च भानि उत्रसंज्ञानि । उत्तरात्रयरोहिण्यश्रतस्तारास्थिरसंज्ञाः । तदपराः आद्वीऽऽश्लेषामूलज्येष्ठाविज्ञाखा- कृतिकाः षट् तारकाः तीक्ष्णाष्याः । अन्ये विज्ञाखाकृतिकयोः

र्मृदुतीक्ष्णविमिश्राख्यामाहुः । तथाच रछः—

होतवहं सविशाखं मृदु तीक्ष्णं तद्विमिश्रफलकारि । इति । अत्रापि तत्तत्समं तत्फलमित्यनुवर्तते ।

उक्तं च रछेन--

छघुहरताश्विनपुष्याः पण्यरितज्ञानभूषणकलासु ।
शिल्पौषधयानेषु च सिद्धिकराणि प्रदिष्टानि ।
श्रवणत्रयमादित्यानिलेषु चरकमीण हितानि ।
मृदुवर्गोऽनूराधाचित्रापौष्णोन्दवानि मित्रार्थे ।
मुरतविधिवस्त्रभूषणमङ्गळगीतेषु च हितानि ।
उत्राणि पूर्वभरणीपित्रचाण्युत्सादनादिसाध्येषु ।
योज्यानि बन्धविषदहनशस्त्रवातादिषु च सिद्ध्ये ।
त्रीण्युत्तराणि रोहिण्या सह ध्रुवाणि तैः कुर्यात् ।
अभिषेकशान्तितरुनगरधर्मबीजध्रवारम्भान् ।
मूलशिवशक्रभुजगाधिपानि तीक्ष्णानि तेषु सिद्ध्यन्ति ।
अभिघातमन्त्रवेताळवन्धवधभेदसंवन्धाः ॥ इति ।

अश्विन्यार्याजभाद्रहयरविमुरजिन्मातृमित्राः

पुमांसः क्लीबाख्या मूलक्शितद्युतिजलपतयस्तार-का योषितोऽन्याः । देवक्षाणीन्दुजीवादितितपन-मरुत्पौष्णविष्णविश्विमित्रामर्त्याः पूर्वोत्तरेझान्तक-कमलभुवदिशष्टभान्यासुराणि ॥ ३७॥

आर्यो—जीवः । अजो-ब्रह्मा । भाद्रह्ययं-प्रोष्ठपदाद्वयम् । मुरजित्-विष्णुः । अश्विन्यादीनि पुंसंज्ञानि । मूलमृगशिरश्ज्ञात- भिषनस्त्रयः क्रीबाक्याः । अन्याः—भरणीकृतिकाऽऽश्केषामघात्रय-चित्रात्रयज्येष्ठाश्राविष्ठाषादाद्वयरेवत्यः पश्चदश तारकाः योषित्संज्ञाः । तपनः—सूर्यः । मरुत्—वायुः । सुगशीषादीनि नवक्षीणि देवसं-ज्ञानि । पूर्वाः—पूर्वात्रयं । उत्तरात्रयं, कमल्रमूः—ब्रह्मा । पूर्वाद्यो नव ताराः मर्त्यसंज्ञाः । शिष्टानि । कृतिकाऽऽश्केषामघामूलिवशाः खाचित्राज्येष्ठाश्राविष्ठाशतभिषम्मानि नवासुराणि राक्षससंज्ञानि । एति संवापरिणयादावुपयुज्यते ।

आंग्रयादीन्यत्र चत्वायुंडूनि प्राज्ञैरुक्तान्यन्तरङ्गाभिधानि । मात्रादीनि त्रीणि बाह्याह्वयानि ज्ञेयान्यैवं सप्तसप्तेतराणि ॥ ३८॥

आग्नेयादीनि-कृत्तिकादिनत्वार्युडूनि अन्तरङ्गाख्यानि । ततः पुनर्नस्वादीनि त्रीणि भानि बाह्याख्यानि । इतराणि मखादीनि सप्त, मैत्रादीनि सामिजन्ति सप्त, धनिष्ठादीनि सप्त मान्येवं चत्वार्यन्त-रङ्गानि त्रीणि बाह्यानि ज्ञेयानीत्यर्थः । तत्कृत्यं च वक्ष्यति ।

यदात्मनीनं शुभमन्तरङ्गे तद्गेऽपि दद्यादशुमं तु बाह्ये । इति । नक्षत्रमृक्षं मं तारातारकाप्युडु वाऽस्त्रियामित्यमरः ।

अथ तिथिसंज्ञामाह—

नन्दा च भद्रा विज्ञया च रिक्ता पूर्णेति संज्ञाः क्रमशस्तिथीनाम्।

छिद्राभिधास्तासु भवन्ति भास्व-इस्वङ्गसंङ्ख्यास्थितयस्सरिक्ताः ॥ ३९॥

प्रथमादिपञ्चदश्यन्तानां तिथीनां नन्दादयः पञ्च संज्ञाः क्रमशः पर्यायेण त्रिरावृत्ता भवन्ति, प्रतिपत्षष्ठचेकादशीनां नन्दा-दिसंज्ञेत्यादि । एषा चान्वर्थसंज्ञा विज्ञायते यथाह रङः—

नन्दा भद्रा विजया रिक्ता पूर्णास्स्वनामसदृशफलाः । इति । कैश्चिद्नयथा प्रथमादितिथिसंज्ञाः कथिताः तथा च रङ्घः—

> वृद्धिः समङ्गलाख्या बलाबला श्रीमती च शामित्रा । सुमहामहे। प्रकर्मा सुधर्मिणी चाप्यथो नन्दा । परतो यशोवती स्यात् जया तथोश्रा च सौम्यसंज्ञा च । तिथिनामानि क्रमशः * फलसंज्ञानुद्धपाणि । इति ।

चकारोऽनुक्तसमुखयार्थः । तेन तिथीनां देवता इहानुषयुक्ता इत्यनुक्ता अपि शास्त्रान्तरादवगन्तव्याः । उक्तं च रछेन—

> ' हुतवहकमलनगिरिजागजवदनभुजङ्गगुरुदिनेशशिवाः । दुर्गायमविश्वाच्युतमदनेश्वरशशिभृतः पुरा प्रोक्ताः पितरोऽमावास्यायाः ' इति ।

तासु भास्वद्वस्वङ्गसंख्याः—द्वादश्यष्टमीषक्यः रिकाभिश्चतुर्थीन-वमीचतुर्देशीभिस्सह छिद्राभिधा भवन्ति ।

दर्शस्यापि छिद्रत्वं कैश्चिदुक्तम् । तथाच-

छिद्राणि युग्मास्तिथयः सद्शीः पक्षस्य हित्वा दशमी द्वितीये। तत्रायुजरश्रेष्ठतमाः प्रदिष्टाः विना नवम्या परमार्थविद्रिः ' इति ।

^{*}स्युः फलसंज्ञानुरूपाणि इति स्यात्.

एतासु तिथिष्विप स्थिरादिमेदाः कैश्चिद्धकाः । तथाच मरद्वानः—
स्थैर्ये तु प्रतिपच्छ्रेष्ठा दशम्येकादशी तथा ।
द्वितीया सप्तमी चैन द्वादशी क्षिप्रकर्मसु ।
त्रयोदशी तृतीया च पश्चभी च मृदी शुभाः ।
अष्टमी चैन षष्टी च पूजिते मृदुद्दारुणे ।
चतुर्दशी चतुर्थी च ननमी कूरद्वारणे ॥
तेषु च व्यतिरिक्तवात् सर्वीरम्भं निनर्जयेत् ।
पोर्णमासी शुभा पुण्या पूजिता शुभक्षमेसु ।

अमावास्या निरारम्भा सर्वारम्भेषु वर्जिता ॥

इति । करणान्याह—

ववबालवकौलवतैतिलगरजवणिजविष्टिनामा-नि । चरकरणानि विदुदशुक्लपथमान्त्यार्धपू-र्वाणि ॥४१॥

तिथि द्वित्रा करोतीति करणीमत्यन्वर्थसंज्ञानात् तिथ्यर्घे करणिमिति विज्ञायते । तानि बवादिसंज्ञानि करणानि सप्त चराणि शुक्कप्रथमान्त्यार्थादारम्य आरुष्णचतुर्देश्यपरार्थानमासेऽष्ट- कृत्वः पर्यायेण भवन्ति । शुक्कप्रतिपद्परार्थादीनि तिथ्यर्थानि सप्त सप्त बवादिसंज्ञानि करणानीत्यर्थः ।

स्थिरकरणान्यसितचतुर्दद्रयपरार्घादिकानि च-त्वारि । प्राहुदशकुनिचतुष्पदसनागकिंस्तुघ्रना-मानि ॥ ४२ ॥ कृष्णचतुर्देश्यपराधीदीनि शुक्कप्रतिपत्पूर्वाधीनतानि तिथ्यधीनि शकुन्यादिसंज्ञानि चलारि स्थिरकरणानि भवन्ति । उक्तं च ब्रह्म-गुप्तेन—

> कृष्णचतुर्देश्यन्ते राकुनिः पर्निण चतुष्पदः प्रथमे । तस्यान्यार्थे नागः किंस्तुघः प्रतिपदाद्येषे ॥

तथाच भरहाजः-

तिथि तु द्विगुणं कृत्वाप्येकमेव युतं क्रमात्। शुक्के च बहुले सेर्वे सप्त रेजा बवादयः॥ करणयोनीराह वृत्तार्थेन—

तेषां सिंहव्याघकोलाः खरेभी गौद्रश्वा चेत्थं योनयस्संप्रदिष्टाः ॥ ४३॥

कोलः वराहः । खरः गर्दभः । इभः गजः । शेषाः प्रसि-द्धाः । तेषां ववादीनामिति सिंहादयस्सप्त योनयः ता एव सं-ज्ञाश्चोक्ताः । यथा ववस्य सिंहो योनिः सैव संज्ञा चेत्यादि । इत्थं-शब्दोऽनुक्तदेवतानामध्याहारार्थो वा । ताश्चोक्ता भरद्वाचेन—

> विष्णुः त्रजापतिश्चन्द्रः सुरेड्यो वसवस्तथा । माणिमद्रो यमश्चेति द्वतानि नवादि यत् ॥ इति ॥

शकुनादीनां पक्षिपशुसर्प (१) योनयः । तेनैव देवताश्चोक्ताः— मृत्युश्च पितरो नागा रुद्रश्चेति यथाक्रमम् । देवतादशकुनादीनां चतुर्णो समुदाहनाः ॥ इति ॥

अथ सूर्यादिवाराः प्रसिद्धाः तेषां योनीश्राह वृत्तापरार्धेन-

शुक्रेन्द्वार्यब्रध्नसौम्यार्कसूनु-क्ष्मापुत्राणां वासराणां च सद्भिः ॥ १३॥

ब्रथः सूर्यः, सौम्यो बुघः। शुक्रादिवःराणामि सिहादः यस्सप्त योनयो भवन्तीति मिद्रिरुक्ताः। यथा शुक्रवारस्य सिहः। इन्दुवारस्य व्याद्यः इत्यादि । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः।

वारदेवताश्च--

सूर्योदितिहराविशागुह्विष्णुकेन्द्र -कालाः क्रमेण पतयः कथिता श्रहाणाम् । वह्वयम्बुभूमिह्रिराकशचीविरिश्चा-स्तेषां पुनर्भुनिवरेः श्रतिदेवताश्च ।

पश्चाङ्गादीन्याह—

नक्षत्रवारतिथयः करणानि योगाः पश्चाङ्गमेतद-थ राशियुतं पडङ्गम् । सप्ताङ्गमित्यभिहितं ग्रहयुः क्तमेतत् वर्गोत्तमो निजनिजो भवने नवांशः॥४४

नक्षत्रं—चन्द्रस्य एकनक्षत्रभोगकालः । तथा च भरद्वाजः— यद्यनक्षत्रमासाद्य राशी यावत्तु तिष्ठति । तावत्तन्नामसंयुक्तं नक्षत्रमिति चदाते ॥ इति ।

वारः सूर्योदयहयमध्यकाञ्छः । तथा च श्रीपितः— वारत्रवृक्षिं मुनयो वद्गित सूर्योदयाद्वावणराजधान्याम् । ऊर्ध्व तथाधोऽप्यपरत्र तस्मात् चरार्धदेशान्तरनाडिकाभिः ॥ इति । तिथिः—चन्द्रस्य विवपञ्चदशांशवृद्धिक्षयकाञ्छः । तथा च मरहाजः— यदा पश्चदशो भागो वर्धते क्षीयतेऽपि वा ॥ कालेन यावता चन्द्रः स कालिस्तिधिरुच्यते ॥ इति । करणं—तिथ्यर्धकालः ।

तिथिः हे करणे ज्ञेये।

इति भरद्वाजः । योगो—िनत्या विष्कम्भादिः । स चार्केन्द्वाः श्रक्रान्तमुपक्रम्योभयोरप्येकनक्षत्रभागकालः । एतत्पञ्चकमकोक्ताः पञ्चाङ्गमित्युच्यते । राज्ञया मेषाद्याः, तैस्सह एकोक्तां षडङ्गमिति एतत्पडङ्गमेव प्रहेश्च सहैकोक्ताः सप्ताङ्गमित्युक्तम् । परिशिष्टपादेन वर्गोत्तमांशानाह । राशिषु निजनिजो नवांशो वर्गीत्तमसंज्ञः । स च चरादिषु प्रथममध्यमान्तगतः । तथा च वराहमिहिरः—

वर्गोत्तमाश्चरगृहादिषु पूर्वमध्य-पर्यन्ततः स शुभदा नव भागसंज्ञाः ॥ इति ।

कन्याहयार्घयमतौलिघटा हिपाद-स्तायाश्रया झषकुळीरमृगान्त्यभागाः। पूर्वापरे मृगहयाङ्गदले मृगेन्द्रो मेषो वृषश्च पश्वश्चतुरङ्घिसंज्ञाः॥४५॥

हयार्घ—घनुःपूर्वार्घम् । कन्याद्याश्चतारो राशयः सराश्यः धीः द्विपादः—नरराशय इत्यर्थः । मीनकिकमकरापरार्घा जलचर राशयः । मकरस्य पूर्वमर्घ ह्याङ्गस्यापरार्धमिति सद्धिराश्यर्धाः सिं हाद्यास्त्रयः चतुष्पादसंज्ञाः । अस्यैव विवरणं पशव इति । परि शिष्टो वृश्चिक एकः कीटसंज्ञ इति शेषः । एतत्प्रयोजनं च बलावलपरिज्ञानादि । अत्र गार्थः— नृयुक्तुला घटः कन्या पूर्वमर्थं च धन्विनः। लप्नस्था बलिनो ज्ञेया एते हि नरराश्यः। चतुर्थे कर्कटे मीनो मकरार्धं च पश्चिमम्। विज्ञेया बलिनो नित्यमेते हि जलराशयः। चापान्त्यार्धाजगोसिंहा बलिनः खे चतुष्पदाः। सप्तमे वृश्चिकः कीटो बलवान् परिकीर्तितः॥ इति।

विप्राह्मयौ गुरुसितौ नृपती कुजाकौँ वैदयदशादी शिहासुतो वृषलोऽर्कजोऽन्त्यः। वेदाधिपा गुरुसितारबुधा दिगीद्याः भास्वित्सितारफणिमन्दशिज्ञजीवाः॥ ४६॥

वृष्ठः शृद्धः । अन्त्यः चण्डाठः । एताः पश्च जातयः । एतः प्रश्च प्रश्नादिषूपयुज्यते । गुर्वादयश्चत्वारा वेदानां ऋग्यजुस्सामा थर्वणां पतयः । ऋचां गुरुः । यजुषां सितः । साम्नां कुजः । अ-थर्वणां बुधः । भास्वदादयोऽष्ट ग्रहाः प्रागाद्यष्टिदिशामीशा भवन्ति । यथा—प्राच्याः सूर्यः । आग्नेय्यास्सितः इत्यदि । केचित् राशि-ष्वि जात्यादिभदान्वदन्ति । तथा च वराहमिहिरः—

झवमेषवृषभिधुनाः त्रिकोणसिहतास्तु विप्राद्याः । इति । मीनकर्केटवृश्चिका विप्राः इत्यादि । मेषाद्यास्सत्रि-कोणराशयः प्रागादिचतुर्दिशामीशास्स्युः ।

तथा च वृहज्जातके—

प्रागादीशाः क्रियवृषनृयुक्किटास्पत्रिकोणाः । इति । अनयोर्यात्रोपनयनादिषूपयोगः । संज्ञामुपदिश्वति-

ज्ञेयाविन्दुकवी ह्यियौ शनिवुधौ क्रीवौ पुमांसः परे संज्ञाः काश्चन पूर्वशास्त्रगदितास्तंक्षेपतो द-शिताः । अस्मिन् रूपवपुःप्रमाणसगुणद्रव्यस्व-भावादयः कथ्यन्ते सगृहग्रहस्य न मया द्यन्यत्र तिद्वस्तरः ॥ ४७॥

चन्द्रशुक्तौ स्त्रीसंज्ञौ । शनिबुधौ नपुंसकसंज्ञौ । राहुश्च षण्डः । परे रविकुजगुरवः पुमांसः । तथा च नारदः—

पुंत्रहास्सूर्यभौमार्याः स्त्रीयहौ राशिमार्गवौ ।

नपुंसको शनिबुधो शिरोमात्रं विधुन्तुदः ॥ इति ।
एतस्याधानप्रशादिषूपयोगः । इति पूर्वशास्त्रेषु भरद्वाजवृहज्जातकाः
दिषूक्ताः । काश्चन प्रसिद्धाः राशिष्रहादिसंज्ञाः संक्षेपतः यावाद्विश्वास्त्रार्थज्ञानं संपत्स्यत तावत्य एव दार्शिताः । नाधिका इत्याह ।
आस्मन् शास्त्रे राशिष्रहाणां रूपवपुःपनाणादयो मया न कथ्यन्ते
यतस्त इहानुपयोगिनो जातकप्रशादिवेवोपयुज्यन्ते, अतस्तेषामन्यवृहज्जातकादौ विस्तरः उक्तः । राशिष्रहाणां रूपवपुःप्रमाणादिविस्तरः पूर्वाचार्थेकक एवावछान्यतामित्यर्थः । एतदुक्तं भवति—
एतच्छास्त्रार्थव्यवहारमात्रज्ञानाय तदुपयोगिनयः काश्चित्संज्ञा एवेह मयोक्ताः नान्यदनुपयुक्तमिति । तच्च यदि कस्य चित् जिज्ञासितं पूर्वशास्त्रेष्वेवावछोक्यतामिति । तत्र रूपं श्वेनरक्तादि ।
वपुः वृतचतुरश्चादि । प्रमाणं दीर्घादि । गुणास्सत्वादयः । द्वव्यं
ताम्नादि । स्वभावः तीक्ष्णत्वादिः । आदिशब्देन काछरसवयोयोनितद्वेदाद्या गृह्यन्ते । काछोऽयनादिः । संख्या एकादिः ।

वयः देशिवादिः । योनिः धात्वादिः । तद्रेदाः धान्यगुरुमाविष दादयः । प्रहाणां रूपादीनि शास्त्रान्तराभिहितानीहोच्यन्ते । सूर्यादीनां वर्णा वराहमिहिरेणोक्ताः ।

वर्णास्ताम्रसितातिरक्तहरितव्यापीतिचित्रासिताः

इति । छघुजातकम्-

चतुरश्रो नात्युचः तनुकेशः पैत्तिकोऽस्थिसारश्र ।
शूरो मधुपिङ्गाक्षो रक्तश्यामः पृथुश्राकः ।
स्वच्छः प्राज्ञो गौरः चपछः ककवातिको रुधिरसारः ।
मदुवाग्घृणी प्रियसखः तनुवृत्तश्रन्द्रमाः प्रांशुः ।
इस्वो हिस्त्रस्तरुणः पिङ्गाक्षः पैत्तिको दुराधर्षः ।
चपछः सरक्तगौरो मज्जासारश्र मोहयः ।
मध्यमस्त्रपः प्रियवाक् दूवीश्यामः सिराततो निपुणः ।
व्वनसारिश्वस्थूणः सततं इष्टस्तु चन्द्रसुतः
मधुनिभनयनो मतिमानुपचितमांसः कफात्मको गौरः ।
ईपत्पिङ्गछकेशो मेदस्सारो गुरुदीर्घः ।
श्यामो विक्ष्टपर्वा कृटिलासितमूर्धनः सुखी कान्तः ।
कफवातिको मधुरवाक् भृगुपुत्रश्रुक्कसारश्र ।
कशदीर्घः पिङ्गाक्षः स्टप्णः पिश्चनोऽलसोऽनिलप्रकृतिः ।
स्थूलनखदन्तरोमा शनैश्वरस्त्रायुसारश्र ।

क्रणोन राहोरप्युक्तं—

अतिकृष्णतीक्षणकुटिलो दीर्बाङ्किर्विकटलोचनः पापः । वक्रगतिर्दुर्मेषाः राहुस्साक्षादघोटाष्टिः । द्यारीयमकुनभुजगेन्द्राहस्वा रविभागवौ तु मध्यतन् । गुरुचन्द्रसुती दीवीं हस्वश्रेषां वदन्त्यन्ये गुणा वृहज्जातकोक्ताः—

> चन्द्रार्कजीवा ज्ञासती कुजार्की यथाऋगं सन्वरजस्तमांसि ।

द्रव्याणि — ताम्रं स्यान्मणिहेमशुक्तिरजतान्यकीच मुक्तायसी 'इति । स्वभवाः— 'शिखिभूखपयोमरुद्गणानां वशिनो भूमिसुतादयः क्रमेण '।

'अयनक्षणवासर्तवो मासोध्वं च समाश्च भास्करात्।' कटुकछवणतिक्तमिश्चिता मधुराम्छौ च कषाय इत्यपि।

वयः—वयांसि तेषां स्तनपानबालव्रतस्थिता योवनमध्यवृद्धाः ।

अतिवृद्धा(१) इति चन्द्रभौमज्ञशुक्रार्कशैनश्चरास्स्युः॥ इति। योनिः—

बिलने। केन्द्रोपगती रिवभीमी घातुकारकी भवतः । बुधसारी मूलकरी शाशिगुरुशुकाः स्पृता जीवाः ।

तद्भेदाः—

पितृमातृसहजभार्यात्मिमश्रतनयारयो च्यवस्थायाम् । अर्कशिक्षोम्यभृगुगुरुराहुवरासूनुसूर्यसुताः ।

इत्यादि । अथ राशीनां रूपमुक्तं छघुनातके---

अरुणसितहरितलोहितपाण्डुविचित्राः सितेतरपिराङ्गाः । पिङ्गलकर्बुरवभुविमलिना रुचयस्त्वजादीनाम् ।

इति । वपुः-

मत्स्यो घटी नृिषयुनं सगदं सवीणं चापी नरेाऽश्वजवनो मकरो मृगास्यः। तौलिस्ससस्यदहना प्रवगा च कन्या रोषास्त्वनामसदृशाः स्वचराश्च सर्वे। प्रमाणं कृष्णेनोक्तम्—

युक्तप्रमाणकायाः कुळीरयुगमकरचापास्स्युः । मेषझषवृषभकुम्भाः हस्वाश्शेषाः पुनर्दीर्घाः॥

इह गुणा वन्याद्याः । अटवीक्षेत्राम्बुगिरिग्रामावटारामाः नद्या मुखं सरोऽर्णवं इत्युद्शास्त्वजादीनाम् । द्रव्यं स्वामिसदृशं । स्वभावो द्रेकाणस्वरूपं, उक्तं च बृहज्जातके—

> कट्यां सितवस्त्रवेष्टितः कृष्णः शक्त इवाभिरिसतुं रौद्रः परशुं समुद्यतं धत्ते रक्तविलोचनः पुमान् ॥ रक्ताम्बरा भूषणसक्तिचता कुम्भाकतिर्वाजिमुखी तृषाती । एकेन पादेन च मेषमध्ये द्रेकाणरूपं यवनोपदिष्टम् ॥ क्रूरः कथाज्ञः कपिलः क्रियार्थी भग्नवतोऽम्युद्यतद्ण्डहस्तः । रक्तानि वस्त्राणि विभर्ति चण्डो मेषे तृतीयः कथितस्त्रिभागः॥ कुञ्चितलूनकचा घटदेहा दग्धपटा तृषिताशनचित्ता । आभरणान्यभिवाञ्छति नारी रूपमिदं वृषमे प्रथमस्य ॥ क्षेत्रधान्यगृह्धेनुकलाज्ञो लाङ्गले सराकटे कुरालश्र । स्कन्घमुद्रहति गोपतितुरुयं शुत्परोऽजनदनो मृदुवासाः । द्विपसमकायः पाण्डरदंष्ट्ः शरभसमाङ्चिः पिङ्गलमूर्तिः । अविम्गलोमा व्याकुलिचतो

 ${f V}_{f IDYAMADAVIAM}$

वृषभवनस्य प्रान्तगतोऽयम् सूच्याश्रयं समिवाञ्छति कर्म नारी रूपान्विताभरणकार्येकताद्रा च । ¹हीनात्मजोच्छ्तभुजर्तुमती त्रिभाग-माद्यं तृतीयभवनस्य वदन्ति तज्ज्ञाः॥ उद्यानसंस्थःकवची धनुष्मान् शूरोऽस्त्रधारी गरुडाननश्च । क्रीडात्मजालङ्करणार्थीचन्तां करोति मध्ये मिथुनस्य चायम् ॥ भूषितो वरुणवत् बहुरहैः बद्धतूणकवचः सधनुष्कः । नृत्तवादितकलासु च विद्वान् काव्यकत् मिथुनराश्यवसाने ॥ पत्रमूलफलकाद्द्रपकायः काननेऽमलयशाः शरमाङ्किः। क्रोडतुल्यवदना हयकण्ठः कर्केटे प्रथमरूपमुशन्ति ॥ पद्मार्चिता मूर्घनि भौगयुक्ता स्त्री कर्कशारण्यगता विरीति। शालां पलाशस्य समाश्रिता च मध्यस्थिता कर्कटकस्य राशेः॥ भार्योभरणार्थमणीवे नौस्था गच्छति सर्पवेष्टितः । हैमैश्र युतो विमूषणिश्चिपिटास्योऽन्त्यगतश्च कर्कट ॥ शाल्मलेरुपरि गृध्रजम्बुकौ

¹ हीनप्रजोच्छि

श्वा नरश्च मिलनोंम्बरान्वितः । राति मातृपितृविप्रयोजितः सिंहरूपमिदमाद्यमुच्यते ॥ ह्याकृतिः षाण्डरमाल्यशेखरो विभित कृष्णाजिनकम्बळं नरः। दुरासदास्सह इवात्तकार्मुको नतात्रनासो मृगनाथमध्यमः॥ ऋक्षाननो वानरतुल्यचेष्टो विभित दण्डं फलमामिषं च । कूची मनुष्यः कुटिलेश्च केरोः मृगेश्वरस्यान्त्यगतस्त्रिभागः॥ पुष्पप्रपूर्णेन घटेन कन्या मलप्रदिग्धा मलसंवृताङ्गी । वस्त्रार्थसंयोगमभीप्समाना गुरोः कुलं वाञ्छति कन्यकाद्यः ॥ पुरुषः प्रगृहीतलेखिनि -रशामी वस्त्रशिराव्ययायकत् । विपुछं च विभर्ति कार्मुकं रोमव्याप्ततनुश्च मध्यमः ॥ गौरी सुधौतात्रदुक्लगुप्ता समुच्छिता कुम्भकटच्छुहस्ता । देवालयं स्त्री प्रयता प्रवृता वदन्ति कन्यान्तगतं विभागम् ॥ वीध्यन्तरापणगतः पुरुषस्तुलावा-

नुन्मानमानकुशलः प्रतिमानहस्तः । भाण्डं विचिन्तयाति तस्य च मूल्यमतत् रूपं वटन्ति यवनाः प्रथमं तुलायाम् ॥ कछशं परिगृह्य विनिष्पतितुं समभीप्सति गृध्रमुखः पुरुषः । क्षुधितस्तृषितश्च कळत्रसुतान् मनसैति तुलाधरमध्यगतः ॥ विभीषयंस्तिष्ठति रत्नचित्रितो वने मृगान् काञ्चनतूणवर्मभूत् । धनुर्धरो वानररूपमृत्ररः स्तुलावसाने यवनैरुदाहतः॥ वस्त्रीर्वेहीनाभरणैश्च नारी महासमुद्रात् समुपैति कूलम् । स्थानच्युता सर्पनिबद्धपादा मनोरमा वृश्चिकराशिपूर्वः ॥ स्थानसुखान्यभिवाञ्छति नारी मर्तृकते भुजगावृतदेहा । कच्छपकुम्भसमानशरीरा वृश्चिकमध्यमरूपमुरान्ति ॥ पृथुलिचिषिटकूर्मतुल्यवक्तृः श्वमृगसृगालवराहभीतिकारी । अवति च मलयाकरप्रदेशं मृगपतिरन्त्यगतश्च वृश्चिकस्य ॥ मनुष्यवक्त्रोऽश्वसमानकायो घनुर्विगृह्यायतमाश्रमस्थः । ऋतूपयोज्यानि तपस्विनश्च

ररक्ष पूर्वी धनुषस्त्रिमागः॥ मनोरमा चम्पकहेमवर्णा भद्रासने तिष्ठति मध्यरूपा । समुद्ररतानि विघष्टयन्ती मध्यस्त्रिमागो धनुषःप्रदिष्टः ॥ कूर्ची नरो हाटकचम्पकाभी वरासने दण्डधरो निषण्णः। कौशेयकान्युद्रहतेऽजिनं च तृतीयरूपं नवमस्य राशेः॥ रोमचितो मकरोपमदंष्ट्रः सूकरकायसमानशरीरः। योक्तृकजालकबन्धनधारी रौद्रमुखो मकरे प्रथमस्तु ॥ कलास्वभिज्ञाब्जदलायताक्षी श्यामा विचित्राणि च मार्गमाणा । विभूपणालङ्कतले।हकर्णा यो-षित् प्रदिष्टा मकरस्य मध्ये ॥ किन्नरोपमतनुः सकम्बळ-स्तूणचापकवंचैस्समान्वतः । कुम्भमुद्रहति रत्नचित्रितं स्कन्धगं मकरराशिपश्चिमः॥ स्नेहमद्यज्ञलभोजनाममन्याकुलीकृतमनास्सकम्बळः । कोशकारवसनोऽजिनान्वितो गृष्ठतुल्यवदनो घटादिगः॥ द्ग्ये शकटे सशाल्मले लोहान्याहरतेऽङ्गना वने ।

मिलिनेन पटेन संवृता भाण्डेर्मूर्घगतैश्च मध्यमः ॥
श्यामस्तरोमश्रवणः किरीटी
त्वक्पत्रनिर्यासफलैंचिमिति ।
भाण्डानि लेहिन्यतिमिश्रितानि
सञ्चारयत्यन्त्यगतो घटस्य ॥
स्तुग्भाण्डमुक्तामणिराङ्क्षमिश्चेवर्याक्षिप्तहस्तस्तिनभूषणश्च ।
भार्याविभूषार्थमपां निधानं
नावा प्रवत्यादिगतो झषस्य ।
एषां प्रयोजनमुत्तरत्र वक्ष्याम इति ॥

इत्थं विद्यामाधवीयाभिधाने चत्वारिंशत्संयुतै-रष्टभिश्च । श्लोकैर्विद्यामाधवेनात्र शास्त्रे संज्ञा-ध्यायो गुन्भितस्सोऽयमाद्यः॥ ४९॥

विद्यामाधवेन त्रोक्ते विद्यामाधवीयमित्यन्वर्थकृतामिधानेऽत्र मुहूर्तशास्त्रे विद्यामाधवेन मया अष्टचत्यारिंशत्सङ्ख्यैः पद्यैः त्रथमोऽयं संज्ञाध्यायो गुम्भितः—रचितः ॥

इत्थं विद्यामाधवीये मुहूर्वादर्शे विद्यामाधवस्यात्मजेन । संज्ञाच्यायस्सर्वेसंज्ञाभिघायी व्याख्यातोऽत्रं विष्णुनाऽऽद्योऽनवद्यः॥

> इति श्री विद्यामाधवीये मुहूर्तद्र्शने संज्ञाध्यायः प्रथमः स्लमातः.

अथ दौषाध्यायो हितीयः.

अथाभिषेयस्य मुहूर्तस्य निर्दिष्टस्येष्टत्वात् गुणानामप्वप-दोषस्वरूपत्वात् आदे। तावद्दोषानेव वक्तुमुपऋमते—

अथादिशास्त्राभिहितान् प्रसिद्धान् संगृह्य दैवज्ञहिताय कांश्चित् । इहाभिघास्यामि मुहूर्तदोषान् कात्स्रर्थेन कस्तत्कथनाय शक्तः ॥ १ ॥

अथ संज्ञाभिधानानन्तरं, यद्वा ृंगुणानां यथासंभवमुपादे-यत्वात् दोषाणामवश्यं हेयत्वात् गुणदोषनिस्द्रपणे कार्ये । तत्रादौ आदिशास्त्रेषु—वार्हस्पत्यादिषु प्रोक्तान् प्रसिद्धान् प्रधानभूतान् कांश्चित् मुहुर्तदोषान् दैवज्ञहिताय—ज्योतिर्विद्वचो हितार्थं, इह संगृह्याहमिधास्यामि । यतस्तंग्रहाभिधानमन्तरेण कात्स्वर्चेन नि-श्रेषतो मुहूर्तदोषकथनाय कश्शकः, दोषाणामानन्त्यात् अशेषतो देषान् वक्तुं न कश्चिद्दि शक्तोति । तस्मादिह प्रसिद्धा एव केचन दोषाःकथ्यन्त इत्यर्थः।

एतावन्तो दोषा इहामिधीयन्ते इत्याह त्रिभिश्कोकैः— दुष्टांस्तिथ्यृक्षवारानथ विषघटिकाः कृष्णपक्षा-पराक्षौ घूमादीन पश्च सौरान गुळिकदिनगदौ स प्रहार्घप्रहारौ । विष्ठिं षड्दुष्टयोगानुडुतिथिकुहरे काळचकार्घपातान् स्थूणादींस्त्रीश्च मृत्यून् विहग-हिमाइीखे कण्टकौ हो च गण्डम् ॥२॥

नक्षत्रं भवनं च कर्तुरशुभं वैनाशिकैकार्यळी शून्यादिप्रहयुक्तगम्यगतभं ज्वालादियोगांश्व षट्। मासाब्दावसतीरनोजदिवसान् शुक्रार्ययोर्मूहतां सं-दृष्टिं च सवेषशूलमधिकान् मासांश्व केतूद्यं॥६॥

उद्वाहे च विशेषतः परिहरेत वेषं शलाकाह्यं तत्तत्कर्मसु गहिंतां प्रहगतिं मासर्क्षराद्यपादिकान् । दोषान् कर्मविनाशकान् विदुरिमानन्याननेकान-पि ज्ञात्वा तान् परिहत्य सूक्ष्ममतयः कुर्वन्तु सर्वाः क्रियाः ॥ ४॥

दुष्टतिथयः - छिद्राः । दुष्टक्षीणि - शुभिक्रयानभिहितास्तारा राश्यश्र, दुष्टवाराः - पापवाराः, अथशब्दः आद्यर्थः, तेन पापहोराद्या गृह्यन्ते, नक्षत्रेषु विषनाडिकाः, सौराः - सूर्यचारभवाः
भूकम्पादयः, दुष्टयोगा - नित्ययोगादयः परस्परयोगादोषीभवन्तः
षद्योगाः, उडुतिथिकुहरे नक्षत्रकूपं तिथिकूपं च, कालौ द्वौ
कालर्भ कालान्तं च । चक्रार्षपतौ द्वौ-चक्रपातो वैधृतः, चक्रार्थपाते - व्यतीपातः इति, स्थूणास्त्रयः स्थूणः, कण्टकस्थूणः, रक्तस्थूणः,

मृत्यवस्त्रयः-दिनमृत्युः, तारामृत्युः, राशिमृत्युश्च । विद्यक् -अन्धनक्षत्रं त्रिविधं, आहिमशिखा-उष्णाशिखा, कण्टको ह्रौ - कण्टकनक्षत्रं यमकण्टकांशश्च, कर्तुरज्ञुभनक्षत्रं —विवदादि, कर्तुरशुभो राशिरष्ट-मादिः । वैनाशिकें।ऽशस्तारा वा, शून्यानि मासातिथिराशिनक्षत्र-शून्यानि, प्रहमुक्तगम्यगतमं - प्रहदग्वधूमितज्वालितानि त्रीणि नक्षत्राणि, कुजादिहाष्ट्रियुक्तान् षट् ज्वालादिसंज्ञांस्तारायोगान्, चतुार्वेघानां मासाः नामन्तं, त्रिविधावदानामन्तं च, अनोजादिवसाः—कालिकालकार्णव-धादिनानि, शुक्रजीवयोरस्तभावः परस्परदाष्टिश्च । चशब्देन तयो-र्वाल्यं वार्धनयं च, प्रह्वेधर्सं, प्रह्मूलाल्यं नसत्रं, अधिकांस्त्रीन् संसर्पांहस्पत्यधिकाख्यान् मासान्, केतृनामुत्पातानिवातिवृमकेतूल्काना-मुद्यः। अन्यत् विवाहे दुष्टं श्रलाकाल्यं वेधर्कं तत्तत्कर्म (मु)विगर्हितान् तेषुतेषु विवाहादिषु शुभकर्मेसु निषिद्धान्, अस्मिन् कर्मण्यत स्थाने प्रहेशुद्धिरित्येवंरूपा प्रहगतिः, अस्मिन् कर्मण्ययं **मासो नेष्टः** एतन्नक्षत्रं निविद्धं अयं राशिरानिष्ट इति । आदिशब्देनेयं तिथि-निन्दिता इदं दिनं दुष्टमि याद्य कमनुकं च द्रष्टव्यम् । इमान् उक्तान् सर्वान् दोषान् कर्मविनाशनान् विदुः । अनेन दोषाणामन्वर्थ-त्वमुक्तं--दूषयन्ति कमाणि नाश्ययन्तीति दोषा इति। ईटशानन्यानप्य-नेकान् दोषान् शास्त्रान्तरेषु दृष्टान् सर्वान् कर्मफलविनाशनान् वदान्ते । तस्मादिहोकाननुक्तांश्च व्याख्यानादिभिर्ज्ञात्वा तान् सर्वान् परिद्वत्य सर्वाश्शुमकियाः कुर्वन्तु सूक्ष्मसतयः — गुणदोषबलाबलविवेक कुरालाः । अनेन निश्रोषपरिहारस्य दुरापत्वात् गुणप्रावल्यं दोषदौर्वल्यं चान्वी-क्ष्य शुभिक्रयाः कार्यो इत्युक्तम् ॥

अथ दुष्टनक्षत्रादीनाह—

अम्यन्तकद्विरसनित्रदेशेशरुद्राः

पूर्वात्रयं च बहुलं पितृमूलशूर्याः । छिद्राश्च पापदिवसास्पदकालहोरा-

स्त्याच्यो गणोऽयमखिलासु शुभक्रियासु ॥ ५ ॥

हिरसनः--सर्पः, त्रिदशेशः-—इन्द्रः, कृतिकादयोऽष्टौ तारा समर्वेशुभकर्मसु वर्ज्याः । तदन्या त्राह्याः प्रशस्ताः । पितृमूलश्रूप बहुलं-क्रिन्याज्याः, क्रचिद्राह्याः अतो मध्याः । अत्र भरद्वानः –

रोद्रेन्द्रयाम्यज्वलनं च सार्पं

तिस्त्रश्च पूर्वो इति पापसंज्ञाः।

पापानि पापेषु तथा प्रयुक्षचात्

शुभानि तान्येषु विवर्जयीत ॥

रोषाश्शुभाः कार्यकरास्तथैव

मङ्गल्यताराश्च भवन्ति सर्वाः।

प्रशस्तमध्यानवमान् विचिन्त्य

नक्षत्रवीर्थेण समं प्रयुक्तचात् ॥ इति ।

छिद्राः-चतुर्थ्याद्याः षट् तिथयः । चशब्दात् विष्टचादिपञ्चकरणानि तथा स एव--

विष्टचां चतुष्पदे नागे किंस्तुझे शकुने तथा । वर्जयेच्छ्भकार्याणि दारुणादीनि कारयेत ।

इति । नारदोऽपि--

ववादिवाणिजान्तानि शुभानि करणानि षट् । पराता विपरीता वा विधिनैष्टा तु मङ्गले ॥ इति । पापानां दिवसराशिकालहोरा अपि त्याज्याः । शुभानां ता प्राह्याः । तथाच श्रीपितः—

सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः
सर्वकर्ममु भवन्ति सिद्धिदाः ।
भानुभौमशानिवासरेष्विप
प्रोक्तमेव खलु कर्म सिध्यति ॥
मिथुनतुलकुळीरा धन्विगोमीनकन्या
इह शुभभवनत्वाद्वाशयस्सस सौम्याः ।
अळिमृगघटसिंहाजाश्च पापास्पदत्वानमुनिभिरभिहितास्ते राशयः कूरभावाः ॥

इति । इहास्पदम्रहणेन षड्डार्गेऽपि गृह्यते, न तु राशिमात्रं, यत-इश्रीपतिः—

वर्गे शुभे लप्नगते तु सौम्ये
सपौष्टिकं कर्म बुधैः प्रदिष्टम् ।
लग्नं प्रपन्ने पुनरुप्रवर्गे
स्यात् कर्मणः क्रूरतरस्य सिद्धिः ॥
यस्य प्रहस्य वारे यत् किञ्चित् कर्म प्रकारितम् ।
तत्तस्य कालहोरायां सर्वमेव विधीयते ॥

इति । अयं नक्षत्रादिर्गणः सामान्येन सर्वशुभिक्रियासु त्याज्यः । एतद्वचितिरिक्त ऋक्षादिर्गणो प्राह्म इत्यर्थादेव सिद्धः । यदात्र कचित् कश्चन विशेषोऽस्ति स तत्रतत्रैवाभिधास्यते । एतेषु दुष्टतारातिथिवाराख्यास्त्रयो दोषा उक्ताः । पापराश्यादीनामिह त्याज्यगुणत्वख्यापनाय सहपाठः । एष कैश्चिदेक एव दोष इत्युक्तः ।

तथा च नारदः--

तिथिवारर्शयोगानां करणस्य च मेळनम् ।
पञ्चाङ्गमस्य पञ्चानां शुद्धिस्सा परिकीर्तिता ॥ इति ।
पञ्चाङ्गशुद्धिरहितो दोषस्वाद्यः प्रकीर्तितः ।
यस्मिन् पञ्चाङ्गदोषोऽस्ति तस्मिन् छमं निर्थेकम् ॥

इति । विषघटीराह-

त्रिंशद्विगुणितकृतिमनुगिरिशास्त्रिंशत्कृतिर्दि-जास्त्रिंशत् । कृतिघृतिसामिषः कृतिमनुमनुदिङ्-मनुकृतिजिनाः कृतिः ककुभः ॥ ६॥

दशविद्यानृपतिजिनाः त्रिंशत्पश्चाशतो जिना-स्तेभ्यः । परतो घटीचतुष्कं विषसंज्ञं कृत्तिकादिषु ज्ञेयम् ॥ ७ ॥

दिगुणितकृतिः—चत्वारिशत्, द्विनाः—द्वात्रिशत्, ककुभः— दशः । विद्या—अष्टादश, कृत्तिकादिषु भरण्यन्तेषु नक्षत्रेषु उक्तसंख्या घटिका अतीत्य तत्परतो घटिकाचतुष्ट्यं विषसंज्ञं ज्ञेयम् । यथा कृत्तिकायां त्रिशद्घटीरतीत्य परमेकत्रिशदाद्याश्च-तस्त्रो घटिका विषाख्याः। एवमन्येष्विष । उक्तं च सर्वसिद्धौ—

> त्रिशिद्दिनसहितो मनुस्त्रिराहितास्त्रिशत्त्रखोऽकीन्वित स्त्रिशिद्देशघृतीध्मविश्वमनवः शका दिगिन्द्रा नखाः । साव्धिर्विशातिदिग्दिशो धृतिमहीपाला जिनत्रिशतः पश्चाशिक्तिनमग्रिभादिषु परं नाडीचतुष्कं विषम् ॥

इति । त्रिशद्विगुणितकतिमनुसामिध इति पाठेर्डण्यस्ति । स एव बहुमु-निसंमतः ।

तथाच नारदः-

खमार्गणा वेदपक्षा खरामा व्योमसागराः। वाधिचन्द्रा रूपदस्ताः खरामा व्योमबाहवः॥

इति । तत्फलं-

ऋसेषु विषनाड्यस्तत्कर्तृकमिविनादानाः ॥

इति । योगानामपि विष¹नाडीः क्रचिदाहुः—
तुङ्गस्तोमस्राज्ञी रुद्रो नागो नन्दादिषु क्रमात् ।
नाडिकायाः परं वज्यश्चितस्त्रो विषनाडिकाः ॥

विष्कादिषु च

मुनिर्नम्यो नरस्सन्नो मानो नाग मनो नय। नाकस्तुत्यः शयो नेयः घेनुः कार्यो नृपो सनिः॥ मानी सूनुः भटः क्रूरो नित्यं मानो मनो घनुः। दानं श्रेष्ठं गयेऽतीते चतस्त्रो विषना। दिकाः।

धूमादीनाह—

धूमो वेदगृहैखयोदशिमरप्यंशैः समेते रवौ
स्यादिसम् व्यतिपातको विगळिते चक्रादथिसम्
युते । षड्भिर्भैः परिवेष इन्द्रधनुरित्यिसमञ्ज्ञ्यते
मण्डलादत्यष्ट्यंशयुतेऽत्र केतुरथ तत्रैकक्षयुक्ते
रविः ॥ ८ ॥

[।] घटी:.

तात्काछिकेऽकें चतुरे। राशीन् त्रयोदशमागांश्च संयोज्य धूमो नाम दोषो भवति । तिसमन् धूमराशिचकात् विशुद्धे शिष्टो व्यतीपाताख्यः । अस्मिन् व्यतीपाते षड्राशीन् संयोज्य परिवेषो नाम । परिवेषे राशिमण्डलात् शुद्धे इन्द्रधनुनीम । तत्र सप्तदश भागान् क्षिप्त्वा केतुनीम । पुनश्चातुर्यप्रदर्शनाय केतौ राशि-मेकं संयोज्य तात्कालिकोऽकीं भवति । धूमादिप्राप्तनक्षत्रांशोभय-पार्श्वीशस्त्वाज्यः । तथाच गुरुः—

चलारो राशयो भानोभीगा युक्तास्त्रयोदश ।
धूमी नाम महादोषस्पर्वशोभननाशनः ॥
धूम मण्डलशुद्धे तु व्यतीपातोऽपरो विषः ।
व्यतीपाते तु षड़ाशियुते च परिवेषकः ॥
मण्डलात्परिवेषाख्ये शुद्धे विज्ञधनुस्ततः ।
अस्मिन्नत्त्यष्टिभागस्तु युक्ते केतुः परो विषः ।
एकराशियुते केतौ भानुरेष्विन्दुलप्रयोः ।
युतेष्वायुर्यशोज्ञानवंशिवत्तविनाशनः ।
पञ्च दोषा इति ख्याताः तत्र चेद्वतिते विधुः ।
तदन्तोभयपार्थोऽशस्त्याज्यश्चान्यश्शुमो मतः ॥

इति । सौरानाह—

भूकम्पोंऽशैरशीत्याऽन्वित इन उडु यत्सर्वही-ल्कानिपातो निरयत्राधीनयाऽस्मिन् भवति कृति-कळाविश्वभागोनया च। पूर्वाहे ब्रह्मदण्डो ध्वज

इति च तया तत्र निन्द्योऽपराह्णे तेषूध्वै प्राप्तनाड्य-स्तपनगिरिहरित्तर्कनाड्योऽतिनिन्द्यः ॥ ९ ॥

अंशैरशीत्या—मागानामशित्या—राशिद्वयेन विंशत्यंशैश्चान्तिते तात्काालिकेऽर्के यन्नक्षत्रं सप्तमं स भूकम्पः । स च सर्वदा—दिवा निन्दाः, रात्रौ च निन्दाः ।

अत्र—मूकम्पे अधीनयाशित्या—अंशानां चत्वारिशता—एकराः शिना दशभागैर्युक्ते यन्नक्षत्रं पश्चदशकं स उल्काानिपातः। स रात्री, न दिवा दुष्टः।

अस्मिन्नुरुकानिपाते कृतिकलाभिः विश्वभागैश्रोनयाऽशीत्या-षट्षष्टिभागैः चत्वारिंशिक्षप्ताभिश्र युक्ते यन्नसत्रं पश्चदशं स ब्रह्म-दण्डः । स पूर्वीहे निन्दाः, नान्यदा ।

तत्न-ब्रह्मदण्डे, तया-भागाशीत्या-राशिद्ययेन विंशतिभागश्च युते यन्नक्षत्रमेकविंशं स ध्वजो नाम सौरी देशः। स चापराहे निन्दाः, न पूर्वाहे, न रात्रौ च, तेषु भूकम्पादिषु तात्कालिकी यावती घटिका वर्तते तस्याः परतो द्वादशसप्तदिक्षट्सङ्ख्या नाड्योऽतिनिन्द्याः स्युः।

तथाच गार्थः--

दशमं सप्तमं भानोः पश्चदश्येकविशतिः ।
उल्कापातो धराकम्पः ब्रह्मदण्डे। व्वजः ऋमात् ।
यस्मिन् स्थितोऽशके सूर्यस्तत्सङ्ख्यांशस्तदूर्वतः ।
वर्जितास्सीरदोषाणां स्वरमासदश्तिवः ।
नाड्यस्याज्याः प्रयतेन राशिशेषोऽथवा पुनः ॥

भरद्वाजः---

घराकम्पादिभियुक्ते वज्यसिप्तार्थनाडिकाः।

इति । नारायणः --

पूर्वाहे दण्डदोषस्स्थात् ध्वजश्चैवापराह्यके । उल्का रातौ तु विज्ञेया कम्पस्सर्वत्र गार्हतः ॥

तत्फलं गुरुणोक्तं—

कम्पे स्थानविनाशस्स्यादुल्कायां दहाते कुलम् । दण्डे स्वामिविनाशस्स्यात् ध्वजे सर्वविनाशनम् । तस्मादेष्वर्कदेषेषु सर्वकर्म विवर्जयेत् ॥ इति ।

ननु सूर्योत् सप्तमम् भूकम्प इत्याचितावतैवाभिषयसिद्धौ लम्यायां किमिदमसारमृतं अंशांशिक्षपादिकं कृतमिति, अत्रोच्यते—यदा रिवरूप (१) नक्षत्रान्तं स्थितस्तदा निन्द्यनात्योऽष्टमर्क्षेऽपि प्राप्नुयुरिति । अन्ये चोपग्रहाख्यास्सीरास्सन्ति ते चोक्ताः जयपद्धते।—

सूर्यात्पञ्चमभे विद्युन्मुखः शूल्रस्ततोऽष्टमे । चतुर्दशेऽशनिर्नाम केतुरष्टादशे स्थितः । उल्का विंशतिभे वज्जो द्वाविंशो मूमिकम्पनः । तयोविंशे चतुर्विंशे निर्यातोऽष्टावुपग्रहाः ॥

इति । उल्का स्यादेकविंशितिरिति केचित् । सौरदोषफलमुक्तं नरपतिना— स्वस्थाने विद्यता प्रोक्ता सर्वकार्थेषु सर्वदा ।

श्रीपतिनाऽपि--

इष्विन्दुभेषु न शुभं खलु कर्म कार्य-सिद्धि प्रयाति दहनादिविषादिसाद्ध्यम् ॥ इति । गुळिककण्टकार्धप्रहारानाह द्वाम्याम्-

त्रहा वारनाथादयो वासरस्य क्रमेणाष्ट्रभागाधिनाथाः क्रमेण । तथा यामवत्याश्च तत्पञ्चमाद्याः य आद्यांशानाथः स एवामष्टमस्य ॥ १०॥

उक्तक्रमात् गुळिकमर्कसृतस्य भागं जीवांशकं तु यमकण्टकमामनन्ति । अर्धप्रहारमरुणादिदिनेषु वेद-शैळाक्षिवाणवसुवित्तगुहाननांशान् ॥ ११॥

रिवसावनिद्नस्य यत् स्फुटं प्रमाणं तद्षांशानां किञ्चिदूनाधिकपादोनचतुर्वटिष्टपाणां तद्वाराधिपाद्यास्सप्त प्रहाः पतयः,
तथा रात्रिप्रमाणाष्टांशानां वारेशपञ्चमाद्याः सप्त क्रमेण स्वामिनस्स्युः ।
अवशिष्टस्याष्टमांशस्याद्यांशनाय एव पतिः । दिवा वारेशः रात्रौ
तत्पञ्चम एवेत्यर्थः । तथाचोक्तं—

त्रहा वाराधिपाद्यन्ता दिनमानाष्टमागपाः । वारेशपञ्चमाद्यन्ताः रात्रिमानाष्टमागपाः ॥

इति । दिवा रात्रे। चोक्तक्रमेण प्राप्तं मन्द्स्यांशं गुळिकमाहुः । जीव-स्यांशं यमकण्टकमाहुः । तथाच गुरुः—

> दिनमानाष्ट्रमागेशाः वारेशाद्या ग्रहाः ऋमात् । शन्यंशो गुळिको दोषा जीवांशो यमकण्टकः ॥

इति । वारेषु दिवा रात्रौ च चतुस्सप्तद्विपञ्चाष्टत्रिषट्संख्यांशानर्ध-Vidyamadayiam 12 प्रहारानाहुः। अत्र श्रीपतिः—

मनीषिणोऽर्धप्रहरान् द्वितीयादारम्य सर्वेष्विप मङ्गलेषु । भौमोशनस्मूर्येबुधार्किचन्द्रसुरेज्यवारेष्विप वर्जयन्ति ॥

एषां स्वांशेषु त्रिधा कृतेषु स्वांशत्रथमभागेऽर्धत्रहार उदेति । स्वांश-मध्यभागे यमकण्टकः । स्वांशान्त्यभागे गुळिकः । तथाचाहुः—-

> अदावर्धप्रहारस्त्यात् मध्ये तु यमकण्टकः । अन्ते तु गुळिको दोषः ॥

इति । गुळिकोदयं केचिदन्यथाऽऽहुः । तथाच श्रीपितः—

मन्वर्कदिग्वस्वृतुवेदपक्षै
रर्कान्मुहूर्तेर्गुळिका भवन्ति ।

बुवान्निरेकैरथ यामिनीषु

ते गहिंताः कर्ममु शोभनेषु ॥

इति । सर्वसिद्धौ-

स्वोदयझाश्चतुर्वाराः स्वतुल्यविघटीयुताः । द्वचूना¹ गुळिकनाड्यस्स्युरन्यथाऽन्ये प्रचक्षते ॥

सङ्गामविजये-

तद्वारादि यमान्तं ²त्रिशहुणितं त्रमाणपरिहीनं। वसुद्दतनाडिविनाड्यो गुळिकस्तात्कालिको भवति ॥

इति । ननु चतुर्णामेतेषां मतानामन्योन्यवैषम्यदर्शनात् कथमयं निश्चीयते गुळिकोदयः? उच्यते—मन्दांशो गुळिक इति सामान्याः मिघानं, तेन मन्दांशे गुळिकोदय इत्यतावदेव सिद्धम् । तस्मिन् सर्वत

¹ न्यूना—B. ² त्रिशहुणितप्रमाणपरि.

एकदेशे वेत्याशङ्कायां, 'स्वोदयद्राश्चतुर्वाराः' 'तद्वारादियमान्तम्' इत्युभे अपि प्राप्नुतः, तत्र सङ्गामविजयोक्तः मन्दांशान्तादर्वाची-नघटिकायां गुळिकोदयस्यानवसेयत्वात् तद्विदेकैव गुळिकोदयः । स-विसिद्ध्युक्तश्च तदनत्वञ्यंशे । अनयोश्च नाडिकामात्रमूनं वाऽन्तरामिति गुळिकस्योदयस्यानवसेयत्वात् तद्विदेकैव गुळिकोदय इति । तथाच नारायणः—

गुळिको नाडिकामात्रस्थायी त्याज्यस्स्वयततः। अतस्तदुद्ये क्मे कृतं सर्वं विनश्यति ॥ इति । श्रीपतिना तु तदुद्यसेपश्रदुष्टा इत्यमी मुहूर्ता निन्दिताः। तथाचात्रिः—

गुळिकान्तराशिशेषस्त्याज्यो ह्याद्यातपुष्पवत् । इति । सर्वेरापे मन्दांशान्तन्यंशे गुळिकोद्य इति प्रतिपन्नं, गुळिके कृत्यं चात्रिणाऽभिहितम् ।

गुळिके श्राद्धणेमोक्षलवनावेशनाः शुभाः । इति । गुळिकस्वरूपं सङ्ग्रामविजयेऽभिहितम् । नीलाञ्जनसङ्काशो रक्ताक्षो विषमभीषणो दीर्घः । पञ्चास्यः पृथुदंष्ट्रो भयंकरस्सर्वहा गुळिकः ॥

इति । दिनगद्दिनमृत्यू आह—

भवत्याचे बुध्नचिहरसनभयोर्मूलयमयो-दितीयस्मित्रंशे गुणपरिमिते विष्णुभगयोः। शशिस्वात्योरन्त्ये शुभफलविरोधी दिनगद-स्तृतीयेंऽशे तस्मादुपरि दिनमृत्युश्च बलवान्॥१२॥ उत्तराभाद्रपदाऽऽश्रेषयाराचेंऽशे दिनरोगः। गुणपरिमिते— तृतीये। अत्र गुरुः—

> सर्पाजतारयोराद्यं द्वितीयं यममूलयोः । श्रोणोत्तरे तृतीयांशमन्त्यांशं वायुसीमयोः ॥ दिनरोगा इमे ख्यातास्तेषु रोगी भवेन्नरः । शुभकर्मकृदत्यर्थं तस्मादेतान् विवर्जयेत् ॥

इति। दिनरोगा इति। द्वितीयांशादुपरि तृतीयेंऽशे दिनमृत्युश्च भवति। यथाऽऽह गुरुः—

हस्तवासवयोराद्यं विशाखाद्रोद्वितीयकम् ।
तृतीयोऽप्यहिर्बुधच्ये च स्वान्त्यांशं यममूलयोः ॥
दिनमृत्यव इत्युक्ताः सर्वे शोभनकर्मसु ।
कर्मकर्त्रोमृतिं दद्युस्तस्मादेतान् विवर्भयेत् ॥

इति । द्वितीयस्मिन्निति "तीयस्य वा ङित्सूपसङ्ख्यानम्" इति सर्वना-मसंज्ञायां ङेस्सिन्नादेशः । चशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः, तेन निश्चामृ-त्युर्गृह्यते । तथाचात्रिः—

> आद्यों डशोत्तर ? जीवोन्त्ये द्वितीयः पितृसोमयोः । तृतीयं पुष्यमित्राजित्रामूल्लमखास्विप ॥ विष्णुर्कयोश्चतुर्थोशो निशामृत्युश्शुमं त्यजेत् । भुक्तो व्याधिर्गतौ मृत्युर्विवाहे विषवा वधूः ॥ प्रवेशे सर्वनाशस्त्यात् दर्शने शत्रुता द्वयोः ॥

इति । सत्रहमाह—

भूपाद्गयं रिपुभयं व्यसनं प्रवासं वित्तक्षयं विशरणं च शुभक्रियासु ।

कर्तुः करोति शशभृत् क्रमशोऽर्कपूर्वे रेकां प्रहेस्सह विशन्नुडुमेकराशौ ॥ १३॥

अर्काद्येः सहैकस्मिन् राशो एकं नक्षत्रं विशन् शशी क्रमेण राजमयादीनि करोति, व्यसनं-विपत्ति, विशरणं-मरणं।अत्र गर्मः-

मूर्यो राजभयं करोति नियतं युक्तोऽर्थनाशं भृगुः स्थानभ्रंशमतो गुरुश्शिशासुतः सन्तापदुःखप्रदः । मृत्युं सूर्यसुतः करोति नियतं शस्त्राद्धयं भूभिज-स्तस्माचनद्वयुतप्रहेषु मतिमान् सर्वाः क्रिया वर्जयेत् ॥

इति । नारदोऽपि विवाहाध्याये—

शशाङ्को अहसंयुक्तो दोषस्सग्रहसंज्ञितः।
सूर्येण संयुते चन्द्रे दारिद्रचं भवति ध्रुवम्।।
कुजेन मरणं व्याधिर्बुधेन त्वनपत्यता।
दोर्भाग्यं गुरुणा चैव भागविण¹ सापत्वचं।।
थित्रवृञ्जचात् सूर्यपुत्रेण राहुणा कळहः सदा।
केतुना संयुते चन्द्रे नित्यं दुःखोपसेवनम्।।

इति । विष्टचुद्यानाह—

शुक्के वारिधिनागरुद्धतिथिसंख्यातासु पक्षेऽसिते तत्पूर्वास्विप नक्तमित्त तिथिषु प्रोद्याति विष्टिः क-मात् । दिग्यामेषु शराक्षिशै लयुगषट्त्र्यष्टेन्दुस-ख्येष्वथो यामेष्वाद्यजगच्छरान्त्यदहनेष्वन्त्याद्य-नाडीषु च ॥ १४॥

¹ सापन्नयं भागवेणच इतिस्यात्.

² प्रवज्या इति स्यात्

शुक्के पक्षे चतुर्थ्यादिषु, असिते—कृष्णे ताम्यः चतुर्थ्यादिम्यः पूर्वामु—तृतीयादिषु तिथिषु च ऋमात्—पर्यायेण नक्तं अपराधि, अहि पूर्वार्धे च विष्टिः । स्वोक्तयामघटिकायां मसयामस्वदिश्युदेति ।

तिथिनक्षत्रपूर्वाधी दिवाभागो निशा परः ॥ इति । भरद्वाजः—

यामस्सार्धसप्तघटीक्दपः । एतदुक्तं भवति-— शुक्क पक्षे चतुर्ध्यां पश्चमयामे अद्यविकायां वारुण्यां दिशि विधिरुदेति । अष्टम्यां दिताययामे लतीयविकायामाप्तेय्यां । एकादरयां सप्तमयामे पश्चमः घटिकायामुत्तरस्यां । पश्चदश्यां चतुर्थयामेऽन्त्यविकायां नैर्ऋत्यां, रूष्णो तृतीयायां षष्ठयामे तृतीयविकायां मारुत्यां, सप्तम्यां तृतीय-यामे पश्चमविकायां दक्षिणस्यां । दशम्यामष्टमयामेऽन्त्यविका-यामेशान्यां । चतुर्दर्यामाद्ययामे प्रथमविकायां पूर्वस्यां दिशीति । एतदुक्तं गुरुणा—

अत तृतीयादशम्योः विष्टग्रुद्यव्यत्ययं केचिदाहुः।

तथाच रछः--

जलानलेन्दुक्रूरेशधर्मवातेन्दुदिक्रमात् । सङ्ख्यासमानैः प्रहरैः विष्टिरप्टमुखी यतः ॥

इति । भूतदस्त्रस्वराम्भोधिषडग्निवसुरूपकाः । यामदिवसङ्खचकान्येषु ऋमात्तिथ्यधेविष्टिषु ।

एतदेव साधु । यस्माद्छो विष्टयः । तास्वाद्या प्रथमयामादौ द्वितीया द्वितीययामादिहोरान्ते । तृतीया तृतीययामद्वि¹होरान्ते । चतुर्थी चतुर्थयामान्त उदेति । पश्चम्याद्यास्तु व्यस्तमिति । प्रोद्याति—प्रकर्षेण उर्ध्वलोकादायातीत्यर्थः ।

अत्र सयामेखनुपयुक्तिमिव भाति ² द्वितीयहारान्ते इति स्यात्।

तथाच गुरुः---

यदैवावतरत्येषा दिवि भूः कम्पते तदा ।
तदानीं कृतसत्कर्म कर्जा सह विनश्यति ॥
कृष्णाम्भोदोपमेया सुमहदप्रवना वर्णचिहादिवेगैरम्रचाकाराऽवमज्जन्नयनयुगविषा द्रम्थलेकोग्रदंष्ट्रा ।
उन्नासा व्यायतास्या ज्वलनकणगणैर्विष्फुलिङ्गाङ्गमीमा
नैलोक्यं दम्धुकामा सुवि यमसदनादाविश्रस्थिह्न विष्टिः ॥

इति । तदुत्पत्तिः श्रीपितनोका— दैत्येन्द्रैस्समरेऽमरेषु विजितेष्वीद्याः क्रुघा दृष्टवान् स्वं कायं किल निर्मता वरमुखी लाङ्गलिनी च त्रिपात् । विष्टिः सप्तभुजा स्गेन्द्रगळका क्षामोदरी त्रेतगा दैत्यद्यी मुदितैस्मुरैस्तु करणप्रान्ते नियुक्ता सदा ॥

इति । इह केचित् स्वोदयादियटिकाभिः विष्टचङ्गं परिकल्प्याङ्गवि-भोगन फलमाहुः । तथाच गार्यः—

> मुखे तु घटिकाः पश्च हे कण्ठे तु सदा स्थिते । हृदि चेकादश प्रोक्ताश्चतस्त्रो नाभिमण्डले ॥ कट्यां पश्च च विद्याः तिस्तः पुच्छे जयापहाः । मुखे कार्यविनाशाय श्रीवायां घननाशिनी ॥ हृदि प्राणहरा द्येया नाम्यां तु कलहावहा । कट्यामर्थपरिश्रंशो विष्टिपुच्छे श्रुवं जयः॥

इति । तिथ्यर्धप्रथमादिविटिकाभिरङ्गं कल्पयन्ति तद्युक्तं, यत उक्तं—— यस्मिन् यामे मुखं तस्यास्तत्मयितन वर्जयेत् ॥ इति । भरद्वाजेन व्यक्तमुक्तम्-

तिथ्यर्थं करणेयुँका विष्टियंत्रोपतिष्ठते ।
तत्सर्वं परिहर्तव्यमित्याह भगवान् मृगुः ॥
करणस्य चतुर्भोगमाद्यस्य प्रथमं त्यनेत् ।
द्वितीयस्य द्वितीयं हि तृतीयस्य तृतीयकम् ॥
चतुर्थस्यान्त्यमागं हि वर्जितव्यं तु नापरम् ।

इति । नैवं चेन् पूर्णायां तिथ्यघन्याने विष्टुद्यस्तदादो प्राप्ताति । विष्टचुद्यविकायां पुच्छत्वं वा, तस्मात् स्वोदयादिघिकाभिर्मुखाद्यङ्ग-कल्पनैव युक्ता । अयं विष्टचुद्योऽवद्यं वज्येः । यस्मात् भरद्वाजः—

गुणानां तु सहस्तेऽपि नेष्टो विश्विसमाश्रयः । विष्टियोगे कतं कार्यं विनाशमुपगच्छति ॥ अन्ये यामा नातिदारुणाः । यस्मादयमेव— यदा तु जायते विष्टिः क्षणमात्रेण शाम्यति । सर्वे दहति संप्राप्ता शीव्रमाशीविषा इव ॥ इति । दृष्टयोगानाह—

नित्या विष्कम्भादयो वारतिथ्यो-वरिर्काणां वारतारातिथीनाम् । तारातिथ्यो राशितिथ्योरितीमे योगा ज्ञेयाष्पट् शुभाश्वाशुभाश्व ॥१५॥

सूर्वेन्द्रयोगना विष्कम्भाद्या नित्यसंज्ञा योगाः। तथा वारतिथि-योगाः, वारर्शयोगाः वारर्शतिथियोगाः, राशितिथियोगाः, तारातिथि-योगाः, इतीमे षड्योगाः शुभाः, षडशुभाश्च भवन्ति ।

13

नित्येष्वशुभानाह—

निन्धन्ते नित्ययोगेष्वपि नव परिघस्सव्य-तीपातवज्ञो व्याद्यातो वैधृतिश्च प्रथमपरिवृताइशू-लगण्डातिगण्डाः । लोकत्रिंशाल्वोपर्वुधतिथिवि-शिखद्वीपतर्काङ्गसंख्याः नाड्यः प्रान्तेषु तेषामपि खलु नियमात् सज्जनैर्वर्जनीयाः ॥ १६॥

नित्ययोगेषु परिवाद्या नव निन्दान्ते । प्रथमो निष्कम्भः।

तथा गुरु:-

व्याघातः परिचो वज्जो व्यतीपातोऽथ वैश्वृतिः। गण्डातिगण्डौ जाूळं च विष्कभं नव वर्जयेत्॥

इति । उषर्बुधास्त्रयः, विशिखाः पञ्च, द्वीपास्तप्त, तर्काष्पर, अङ्गानि षर्, तेषां—परिवादीनां, प्रान्तेषु लोकादिनाज्योऽवज्यं वर्जनीयाः ।

तथाच गुरुः—

त्रीणित्रीणि नव त्रिशत् तिथ्यङ्गाङ्गमुनीषवः । नाड्यो व्यावातपूर्वाणामन्ते तावद्विवर्नयेत् । इति । इह केचित् प्रान्तोष्विति प्रथमेऽन्त्ये चेत्याहुः ।

तथाच विधिरते-

ाविष्कममे चटिकोन्द्रियाणि नवकं वजातिगण्डाख्ययो नीड्यस्सम च शूळके रसवटीव्यीवातगण्डाख्ययोः । VIDYAMADAVIAM. योगादौ घटिका इमा विषसमा वर्ज्या व्यतीपातकं सत्यं वैधृतिरर्धमं च परिघं वर्ज्यं च योगद्वयम् ॥ इति ।

श्रीपतिश्र--

अनिष्टसंज्ञा इह ये च योगास्तेषामानेष्टः खलु पाद आद्यः ।
संवैधृतस्तु व्यतिपातनामा
सार्वेऽप्यनिष्टः परिचस्य चार्षम् ॥
तिस्तस्तु योगे प्रथमे सवजे
व्याचातसंज्ञे नव पश्च शूले ।
गण्डेऽतिगण्डे च षडेव नाड्यश्शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ॥ इति ।

अन्ये लाहुः—

अर्कं निधाय तस्मात्तत् त्यनत्वा मं यत् प्रदृश्यते । तस्मादुभयतस्तावन्नाड्यस्याज्या इति स्थितिः ॥

इति । दुष्टान् वारातिथियोगानाह-

अर्कस्याहुस्तर्ककुलाद्रघंकेचतुर्थ्यः प्रालेयांशोदशूलघरोवींघरषष्ठयः । क्षोणीसूनोर्भूतभुजङ्गाद्विदशम्यो . नेत्रक्षेणीनागनवम्यदशशिसूनोः ॥ १७॥

वागीशस्याहस्करनन्दद्विपषष्ठयः काव्यस्याक्षिस्थाणदिगङ्गाहिततीयाः ।

सौरस्योवींशातिजगत्यस्सनवम्य-त्स्याज्या युक्ता स्सन्ततमेते तिथिवाराः ॥ १८॥

अर्कस्य षष्ठीसप्तमीद्वादशीचतुर्थ्यः, चन्द्रस्यैकादशीसप्तमीष-ष्टचः, कुनस्य पञ्चम्यष्टमीसप्तमीदशम्यः, बुधस्य द्वितीयाप्रति पद्रष्टमीनवम्यः, गुरोः द्वादशीनवम्यष्टमीषष्टचः, शुक्रस्य द्वितीयै-कादशीदशमीनवम्यष्टमीतृतियाः, शनेः प्रतिपदेकादशीत्रयोदशीनवम्यः, एषां वारा एताः तिथयश्च युक्ताश्चेत् त्याज्या भवन्ति ।

तथाऽत्रिः —

षष्ठचादितिथयस्तप्त चन्द्रवारादिभिर्युताः । पक्षयोरिप्रदास्त्वेता वारेशो वलवान चेत् ॥

इति । गुरुः--

षष्ठी च सप्तमी चैवमष्टमी नवमी तथा ।

हादश्येकादशीयुक्ता त्रयोदश्यर्कतो विषाः ।

बुध द्वितीया कुजपञ्चमी च षष्ठी गुरोः शुक्तदिनेऽष्टमी च ।

एकादशीन्दौ नवमी च मन्दे हादश्यथार्के तिथिदग्धयोगाः ।

षष्ठीशशाङ्के नवमी च शुक्ते बुधे तृतीया तपने चतुर्थी ।

जीवेऽष्टमी सौरिदिने च सप्तमीयोगा विषाख्या दशमी च भौमे ।

प्रतिपद्धधवारेण सप्तमीनदिनेन च ।

हावेतौ वर्षशूळाख्या वर्जनीयौ सदा शुमे ।

हितीया च तृतीया च दग्धा स्यात् भृगुसूनुना ।

इत्यादि द्रष्टव्यम्।

तत्फलं गुरुणोक्तं—

दग्धयोगे कृतं सर्वं कुछं विश्वं विनाशयेत् । यथाऽस्रो पतितास्तोयिविन्दवो महतोऽप्यमी । द्युर्विवाहे वैधव्यं यात्रायां मृत्युमेव च । अभिदाहो गृहारम्भे प्रवेशे स्वामिनो मृतिः । विषयोगे कृतं सर्वं कर्तृकर्मविनाशनम् ।

प्रतिपदकादिगततिथिवारसङ्ख्यायोगे त्रयोदश्वमिते क्रकचो नाम।
तथा च नारदः —

त्रयोदश स्युर्मिळने सङ्ख्यायास्तिथिवारयोः । ककचो नाम योगोऽयं मङ्गलेष्वातिगार्हतः।

इति । वारर्क्षयोगानाह--

पितृयमवसुमैत्रेन्हिप्रशूर्पाश्विनीन्द्रैः गुरुजलपितृशूर्पत्वाष्ट्रमैत्रोत्तराभिः । अहिगिरिशविशाखाशकपौष्णाम्बुषट्कै-र्वसुनिर्ऋतियमाश्विन्यन्त्यभाद्रहिदेवैः ॥१९॥

भगजलपतिरोहिण्यमिरुद्रेन्दुचित्रै-र्मरुदजयमशूर्पार्वर्क्षपुष्याहिपित्रयैः । रविगुरुभगमातृत्वाष्ट्रतोयत्रयान्त्यैः शुभकृतिषु विनिन्दा वारयोगाः क्रमेण ॥२०॥

उत्तरास्तिस्तः, अम्बुषट्कं — पूर्वोषाढादिषड्भानि, अर्धर्शाणि, सौम्यचित्राश्रविष्ठाः, तोयत्रयं-पूर्वोषाढादित्रिभानि । रवेर्मेखायमव मुमैत्रसौम्यकात्तिकाविशाखाश्विनीज्येष्ठाभिर्नवभिः । इन्दोः पुष्याऽऽ-प्यमखाशूर्पचित्रामेत्रोत्तरात्रयेः । कुनस्य सार्पाद्रशिक्येष्ठान्येः पूर्वी-षाढादिषड्भैश्वेकादश्वाभः । बुधस्य वसुमूल्याम्याश्विनीपौण्णभाद्रः विशाखाभिः सप्तभिः । गुरोः माग्यवारुणरोहिणीकृत्तिकाचित्रासौ-म्याऽऽद्वीभिः । शुक्रस्य स्वातीरोहिणीभरणीशूर्पसौम्याचित्राश्रविष्ठापु-प्याऽऽश्लेषामखाभिद्देशभिः । शनेह्स्तंतिष्ययाग्यमातृचित्राऽषाढाद्वयश्र-वणरेवतीभिनेवाभेः । एतेर्नश्रत्रेरकीदिवारयोगाश्शुभकर्मसु निन्द्यास्स्युः। अत्र भरद्वानः—

> सूर्ये मला चन्द्रदिने विशाला कुने तथाऽऽद्री शशिने च मूलं। नैवे दिने वारुणरोहिणी च। शौके मन्दे वैश्वदेवं च शून्यम्।

नारदः--

यमर्शमर्के चन्द्रे तु चित्रा भौमे तु विश्वभम् । बुवे श्रविष्ठार्थेऽमर्स गुरोज्येष्ठा भृगोर्दिने । रेवत्यैनेऽपि नाडीनां क्ष्वेळयोगा भवन्त्यमी ।

इह अर्थमर्कं—उत्तरफलगुनी।

विशाखादिचतुर्वर्गो रविवारादिषु ऋमात् । उत्पातमृत्युव्याच्याच्या योगाश्चामृतसंयुताः॥

गार्ग्यः-

चन्द्रेऽश्विनी रवी सौम्यं ¹रौद्रे बोंधे करश्शनी। मृगी मखा कुने चित्रा ज्येष्ठा नीवेऽर्थनाशनाः।

¹ रोद्रं चैव.

गुरु:--

दस्तमैत्रपुनर्वस्वो भाद्रपादाग्निचित्रभाः । अषाढं च ऋमादर्काद्योगा विषसमाह्नयाः ।

गार्ग्यः--

आक्षेषाऽर्केऽयेमा चन्द्रे कुने याम्यं तथैव च । चन्द्रसूनौ तथा चाऽऽप्यं गुरौ जूर्पक्षेमेव च । भागवेऽदितिदैवत्यं सौरे श्रवणमेव च । मृतिश्र पचनं व्याधिः कलहा राजपीडनम् । अनिष्टयोगनामानो निन्दितारज्ञुभकमेसु । पूर्वाषाढाङ्यरेवत्यौ विज्ञाखावरुणेश्वरौ । याम्यं पुष्यं च भौमाद्यैः मृत्युयोगाः पदैः क्रमात् ।

विधिरते-

सौरेवीरयुतो हरिः श्रातिभवक् शुक्रेण वेधो ऽनिलं जीवेनेन्दवमं मखा रिवयुता तिष्येण चेन्दोर्दिनम् । फल्गुन्युत्तरचित्रभे शशिसुते भूम्यात्मजेनाग्निमं याम्यं वे यमकण्टकाद्विषसमा योगास्तु तान् वर्जयेत् ।

गुरुः---

मैत्रचित्राऽग्निदेवत्यविश्वाखावसुदेवताः । यद्यर्कवारसंयुक्ताः दोषा हालाहलोपमाः । त्रीण्युत्तराणि पैत्रान्त्यविशाखाविधुवारगाः । पूर्वाभाद्रपदं ज्येष्ठा शूर्पश्रवणवारुणं । धनिष्ठा सर्पदेवं च भौमवारेण वर्जयेत् । कृतिका सापमेत्राणि घनिष्ठा तिष्यरोहिणी ।

चित्रा च पितृदेवत्यं गुरुवारेण वर्नयेत ।

नैर्ऋतं चुघवारेण विशाखां शुक्रवासरे ।

पुनर्वमू तथा चाऽऽप्यं मन्द्वारेण वर्जयेत् ।

एषु योगेषु सर्वेषु विवाहे स्त्रियते पुमान् ।

यात्रायां सर्वनाशस्यात् नवान्नाश्चनतो मृतिः ।

विद्याऽऽरम्भे भवेनमूकः कृष्यारम्भे तु निष्फलम् ।

द्वितीयजन्मनि ध्वंमः चूडाकमीणि नैधनम् ।

गृहारम्भे पतिर्नश्येत् प्रतिष्ठा राज्यनाशनी ।

इति । प्रतिष्ठाविषये विशेष उक्तः—

अश्विनीकृत्तिकाहस्तान् बुधवारेण वर्जयेत् । भृगुवारेण तिष्याख्यश्रवणौ मरणप्रदौ ।

अत्रिः--

सूर्यादेस्सूर्यवाराद्यैः जन्मतारास्तमन्विताः । शुभकर्तुर्मृत्युदास्ताः शुभदृष्टियुता अपि ।

इति । ग्रहजन्मताराश्चान्यैरुक्ताः—

याम्य तमोऽर्कः श्रवणे रविस्तु नातो विशाखासु सितश्च पुष्ये । ¹पौष्णेऽप्यभाग्यारगकृत्तिकासु मन्दारवागीशशिखीन्दुनन्म ॥

इति । तिथिवारर्भयोगानाह--

पश्चम्या सह कृत्तिका दिनकरे चित्रा दितीये

विधौ राका धातृयुता कुजे शाशिसुते याम्यान्विता सप्तमी । जीवे मैत्रयुता त्रयोदशतिथिः श्रोणा सषष्ठी भृगौ मन्दे पौष्णयुताऽष्टमीति गदिता योगा विषाख्या इमे ॥ २३ ॥

राका-पूर्णिमा, मूर्योदिवारेषु पश्चम्यादितिथियः कृत्तिकादि-नक्षत्राणि च यदि संयुज्यन्ते विषयोगास्ते स्युः । तथाच गुरुः—

> अकीयचोः पश्चमीयुक्ता षष्ठीश्रवणभागेवाः । बुधे तु सप्तमी याम्यं रानौ पौष्णयुताऽष्टमी । सोमे द्वितीया चित्रा च कुने पूर्णेन्दुरोहिणी । गुरौ त्रयोदशी मैत्रं विषा हालाहले।पमाः । एतेषु विषयोगेषु न कुर्यात् शोभनं बुधः । रात्रुमारादि कुर्वीत शापवतसमाप्तिकम् ॥

तिथ्यक्षयोगानाह-

तिथयः क्रमेण काष्ठात्रयोदशमहीरवीषुवसु-सङ्ख्याः। विधिभगजलभुजगानलभाद्रयुतास्त्वृ-क्षलूचि(ञ्जि)नामानः॥ २२॥

जुभेषु चित्राह्यमुत्तरात्रयं मैत्रं मखां वैधसमर्कनैर्ऋते । त्रयोदशामिहिशराष्ट्रसप्तमी-तिथ्यन्वितानि क्रमशो विवर्जयेत् ॥ २३ ॥ काष्ठा-दरा । चित्राह्यं-चित्रास्वात्यौ । वैधसं-रोहिणी । दशम्यादिषट्तिथयो रोहिण्यादिषड्भैर्युक्ताश्चेत् ऋक्षळूक्षिनामाने। दोषास्स्युः । तथा चित्राह्यादिषट्पदोक्तानि त्रयोदश्यादिषट्तिथिभिः युतानि चेत् दोषास्स्युः, तान् वर्जयेत् ।

अत्र गुरुः—

प्रतिपत्पूर्वेमाषादं पश्चमे कृतिका तथा । पूर्वाभाद्रपदाऽष्टम्या दशम्या रोहिणी युता ॥ द्वादश्या सार्पनक्षत्रमर्यमा च त्रयोदशी । नक्षत्रलूश्चिरित्येते देवानामपि नाशनाः ॥

गार्ग्यः--

अनूराघा द्वितीयायां तृतीयायां त्रिकोत्तराः । पञ्चम्यां च मखा युक्ता अष्टम्यां रोहिणी तथा ॥ हस्तमूळे च सप्तम्यां चित्रास्वात्योस्त्रयोदशी । एषु कार्यं न कुर्वीत कुर्वन् क्षिप्रं विनश्यति ।

उत्तरगार्थे विशेष उक्तः—

'रोहिण्या तृतीया, मृगशीर्षेण षष्ठी, पुष्येण दशमी, अनूराधया द्वादशी, श्रवणेन पञ्चमी, पौष्णेन सप्तमी, इति । तत्रापि यत्कृतं भस्मसाद्भवति ।

इति । गुरुणा प्रतिष्ठायां विशेष उक्तः—

आद्याषाढं च पैष्णं च सप्तमी सहिते यदि । द्वितीययाऽश्विनी युक्ता प्रजानां पापहारिणी ॥ इति ॥ Vidyamadaviam, 14

तिथिराशियोगानाह—

मकरविणजी छेयेणी स्त्रीयमी हयकर्कटी विश्वमृगपती चापान्त्यो गोझषी विषमास्वमी। तिथिषु तु समास्वेते दग्धा भवन्ति झषो वृषः शशिभमबला कीटो नकः क्रमादृशमान्विताः॥

त्रतिपदादिविषमातिथिषु सप्तसु मकरतुलाद्यो है। हो राशी दग्धों स्तः । द्वितीयादिसमितिथिषु षट्सु मीनादयष्षड्राशयः स्वी-यदशमराश्यन्विताः दग्धास्स्युः । एतद्गुरुवाक्येनैवोक्तं भविति—

प्रथमायां तुलानकों तृतीयायां मृगार्कभै। ।
पञ्चम्यां सीम्यराशी द्वी सप्तम्यां चापचन्द्रमे ।
लेयकोऽपी नवम्यां च एकाद्रयां घनुक्रेषो ।
वृषमीनो त्रयोद्श्यां दम्धसंज्ञास्त्वमे गृहाः ।
जीवर्शे दे द्वितीयायां चतुर्थ्यां घटताबुद्धः ।
षष्ठचां कर्कटमेषो द्वौ नुधक्षेत्रेऽष्टमीयुते ।
कोपिसिंहे दशम्यां च द्वाद्श्यां मृगजूकमे ।
इमे मृत्युपदा योगा लग्ने तिथिषु शोमने ।
दम्धसद्मानि यत्कमें कृतं तद्दर्गनाशनम् ॥

इति । तुराब्दोऽनुक्तसमुचयार्थः । चतुर्दशीपश्चदश्योर्दग्थराशयो द्रष्टव्याः । इति ।

अत्रिः---

मृगकुम्मे चतुर्देश्यां जून्ये पर्वेद्वये हरिः॥

इति । वारलप्रयोगोऽपि कैश्चिदुक्तः—
अर्के वृषो विषौ युग्मं सिहो मौमे धनुर्बुधे ।
घटो गुरी भषरगुके तुला मन्दे विषा इमे ॥
इति । गुरुणा तिथिवारर्क्षयोगोऽप्युक्तः—
स्रुतिकायाम्यरौद्राणि सार्पमैनद्रभमेव च ।
त्रिपूर्वास्सर्वदा वर्ज्याः सर्वेषु शुभकर्मसु ॥
पापवारयुतेष्वेषु रिकाल्येद्वीदर्शायुतैः ।
षष्ठचा च सहितेष्वेषु पापांशे पापलप्रके ॥
न कुर्योच्छुभकार्याणि स्रुतं सर्वं विनश्यति ।
रोगणीदिभयादीनां कर्तव्यास्स्युः प्रतिक्रियाः ॥
एषु योगेषु शापादि विसृजेद्यस्तु तत्पुनः ।
नाऽऽयाति रोगस्नानादि स्रुते च न पुनर्भवेत् ॥

इति । अन्ये त्वेवमाहु-

तिथिवारं च नक्षत्रं छत्रं घ्रुवकिमिश्रितं । तिथिद्वादशदशकं चाष्टकं च चतुष्टयं ॥ प्रहसङ्ख्येहरेद्वागं पञ्चशेषं तु पञ्चकं । रोगो विह्विनृपश्चोरो मृत्युश्चेति यथाऋमम् ॥

इति । अयमर्थः—इष्टकालात् प्राग्गतानि तिथिवारर्सलमानि सं मिश्रच पञ्चराशीकत्य तदाशिषु पञ्चदशद्वादशाष्ट्रचतुस्सङ्खचाः संयोज्य नवभिर्विभज्य शिष्टेषु पञ्चसङ्खचा शिष्यते चेत् ते पञ्च दोषाः रोगामिराजचोरमृत्युसंज्ञास्स्युरिति ।

अन्ये त्वाहुः--

गतिथियुतलमं पञ्चधा कृत्य युक्ता तिथिरविद्शनागाम्नायसङ्ख्याः ऋमेण । वसुमृतभरशेषं शोभने वर्जनीयं रुगनलनृषचोरैर्मृत्युना चात्र दुष्टम् ॥

इति । गतातिथिषु गतराशीन् संयोज्य पञ्चरशीकृत्य तेषु तिथिरविद्शा ष्टचतुष्टयानि संयोज्याष्टभिर्विभज्य शिष्टा पञ्चसङ्ख्या चेत् रुगा-द्याख्याः पञ्च दोषास्स्युः ॥ इति ।

उडुकूपमाह—

हिगुणितमनुमुनितिथयः कृतिहयतिथितिथि-हरा मनुद्दितयम् । हिगुणितशक्वर्यकदीपाष्ट्यष्टीश-कृतिशरदीपाः ॥ २५॥

अत्यष्टिगिरिहरस्वरागिरितिथयो मनुयुगेन्द्रयुग-वाणाः। एतत्संख्यास्वन्त्या नाड्यो दस्राऽऽदिभेषु निम्नाऽऽख्याः॥ २६॥

हिगुणितमनवोऽष्टाविंदातिः। ह्यास्सप्त। मनुहितयं-अष्टाविंदातिः। हिगुणितद्यक्तरी—अष्टाविंदातिः। अङ्काः—नव । द्वीपास्सप्त। अष्टिः षोडदा। अत्यष्टिः—सप्तद्द्य। स्वराः—सप्त। मनुयुगं—इन्द्रयुगं—अष्टाविंदातिः, अश्विन्यादिषूक्तसङ्ख्यास्वष्टाविंदात्यादिष्वन्त्यास्संख्यापूरण्योऽ-ष्टाविंश्यादयो घटिका निम्नाऽऽख्याः—कूपसंज्ञास्स्युः॥ तिथिकूपमाह—

हाम्यां युक्तस्सप्तवर्गस्सतत्वा बाणाइशैला आकृतिश्व दिजाश्व ।

एतेष्वन्त्या नाडिकाः कूपसंज्ञा नन्दादीनां निन्दनीयास्तिथीनाम् ॥ ३७ ॥

द्वाम्यां युक्तस्तप्तवर्गः-एकपञ्चाशत्, सतत्वा बाणाः-ार्त्रे-शत्, शैलाः-सप्त, आकृतिः-द्वात्रिशतिः, द्विनाः-द्वात्रिशत्, एता-स्वन्त्यास्सङ्ख्यापूरण्यः-एकपञ्चाश्याद्या घटिकाः नन्दादितियीनां संबन्धिन्यः कूपसंज्ञास्स्युः।

तिथिकारककूपनिम्ननाडी-मितो हे घटिके विवर्जनीये। अवमन्य नरस्तदन्तराळे विचरन्कूप इवावपातमेति॥ २८॥

तिथिनसत्रयोः कूपाल्यनाडीमभितः—पुरतः पश्चात् एकैकेति—
द्वे घटिके त्याज्ये स्तः । यथा—कूपमनादृत्य तन्मध्ये चरन् कूपे
पति तद्वत् कूपघटिकायां शुभं कुर्वन् तत्कर्मश्चेशमामोति ।
तथाच गार्थः—

ऋक्षकूपे घ्रुवं मृत्युः तिथिकूपे घनक्षयः । तस्मात्कूपं परित्यज्य कर्माम्युद्यमामुयात् ॥ इति । अश्विन्यामष्टाविञ्ची एकोनात्रिञ्ची च द्वे घटिके कूपाख्ये स्तः

केचिदाहुः—

निगदितनाडिकान्तः कूपः तदुभयतो द्वे इति चतस्त इति।

तथा च सर्वसिन्धौ-

हरिस्पूनुश्शुको नेत्रं सेना मान्या शुकः कषिः। हरो हरिर्घनी सूनुः तपस्तुत्यं वपुनिरः। मुनि(शनि)स्पूनुस्सुकृत्सृनुः पटुस्पूनुस्सानिर्मयः। मुखीदारामनश्चेति निम्नान्यश्वचादितस्त्यजेत्। केशो भगस्सानिः कूरः खलो नन्दादिषु क्रमात्। निम्नानि वर्जयेत् पश्चात् पुरश्चेषां घटीद्वयम्। इति।

काळदेशपाह—

शनैश्वरात्सप्तममृक्षमाहुः काळं बुधास्तं कथयन्त्यथान्ये । अर्कादिवारेष्वहिभूरसेन्दुने-त्राम्बुराशीक्षणसंख्यमंशम् ॥ २९ ॥

शनैश्वर इति तदाकान्तमृत्तमृत्यते । एवं सर्वत्र प्रहाभिधाने तदाकान्तमृत्तं प्राह्मम् । शनैश्वराकान्तर्शात् सप्तममृतं काळमाहुः। तथाचाऽऽहुः—

मन्दाद्विशतिभं गण्डं सप्तमं काळसांज्ञितम् ।

इति । अन्ये काळदेशमर्कादिवारेष्वष्टमप्रथमषष्ठाऽऽद्याहि तीयचतुर्थेद्वितीयांश्चमाहुः ।

अंशो दिनाष्ट्रभागः । अत्राऽऽहुः—जयतिपुरवीरः काळदोषश्च वर्ज्यः ॥ इति ।

¹ दु:खि.

चक्रार्घव्यतिपातमाह—

चक्रार्घव्यतिपातमाहुरिह ति च्छिष्टं यहक्षं रवौ पाथोनें ऽशकतों ऽशकार्धसहितात्त्यके त्रयोविंशतः (तेः)। अन्ये याविदनाद्भवत्यदितिभं तावत्तरतं वि-दुस्सर्वे तं समये स्वकीयगणितप्राप्ते विनिश्चिन्वते॥

¹ पाथोनें राकन्यायामं राकन्यायनार्धेन त्रिंशा क्षिप्ता भिस्सहितात् त्रयोविंशादंशात् तात्का छिके ऽर्के त्यक्ते यद्दशं शिष्यते तदिह चक्रा-धेव्यातिपातं नामा ऽऽहुः । अपिच सार्धात् कन्यात्रयोविंशाच्च चक्रार्धं व्यातिपात्य तस्मात् मीने सार्धत्रयोविंशांशात् अर्के त्यक्ते शिष्टमृक्षं च तद्दूषणमाहुः।

यद्यप्यंशकार्धसाहितादित्यांशकः (१) न्यंशसाहितादिति वक्तव्यं, तत्रैव तस्योपक्रमात् इदं तु पादोनघटिकामात्रमधिकम् । तथाऽप्यल्पा-न्तरमित्येवमुक्तम् ।

अन्ये—गुर्भादय एवमाहुः—इनात् सूर्यक्षांदारम्य अदितिभं यावत्सङ्ख्यं भवति तस्मात् तावत्सङ्ख्यं व्यतिपातामिति । नक्षत्रादि-मुपक्रम्य यावती वटिकाऽर्केण भुज्यते नक्षत्रान्तात् वैलोम्येन तावत्यां घटिकायां पाते।पक्रमः । अपिच अदितिः—इन्द्रमाता, इन्द्रा-श्रतुर्देश, तन्मातरश्च तावत्य इत्यदितिशब्देन चतुर्देशसङ्ख्याऽभि-धीयते, चतुर्देशं मं—चित्रानक्षत्रं, सूर्यक्षाद्यावद्भवति तस्मात् तावत्सङ्ख्यं च व्यतिपातमिति ।

¹ पाथोनेंऽशकतः - कन्यायामंश,

तथाचाऽऽहुः---

¹धीराङ्गनामवाक्यासु तात्कालिकरविं त्यजेत् । चक्रार्थाख्यव्यतीपातो गणितेन स्फुटो भवेत् ॥ इति । अपिच—

अकीत्पुनर्वसू यावत् तावत्ताद्दिवसावुभौ ।

इति । स्वकीयगणितेन—सिद्धान्तप्रोक्तेन, प्राप्ते काले व्यतीपा सर्वेऽप्याचार्या विनिश्चिन्वते । निश्चयेन वद्नित । अन्यदेतत् सः मुद्देशवदिति ।

तथाच गुरुः--

महागणितमार्गस्थो व्यतीपातोऽतिदोषदः । बळवद्गुणसंपन्नेऽप्यसौ कुळविनाशनः ॥

इति । तन्मध्यकालो रह्छेनोकः---

तुल्येऽयने भिन्नदिशो रवीन्द्रोस्स्याद्वैधृतश्चकसमे समासे । भिन्नेऽयने तुल्यदिशोश्च योगे चक्रार्धतुल्ये व्यतिपातयोगः ।

इति । तत्स्फुटीकरणाय रवीन्दुयोगं कृत्वा तत्र चक्रार्घहीनाधिव लिसापिण्डं रवीन्दुमोगयोगेनाऽऽसं दिनादिकालेनेष्यता गतेन वा पार मध्यकालो भवति । तत्र रवीन्दुपानांस्तद्रोगैस्तात्कालिकीकृत्य रवीन्द्रो रयनांशात् सं(युज्य)योज्य भुजाकान्तिः कार्यो । यथा—

> भगीरमुद्धीं सवनी वनार्धिनी जने धनं धिहि नयं जगित्प्रये । सहाऽऽलये तापभयं नभोभयं रवीन्दुबाहादशभागजावमाः ।

अयमेव रवेः स्फुटावमः ---

शशिनस्तु पातं विशोध्य मुजाक्षेपः कार्यः । यथा---

¹ धिरागरामवाक्यात्तु.

सर्वज्ञबुधान(१)शालिकां वासाय सुनारिवागुराम् । भूमीन्द्रततश्रीनः सुखं देाः क्षेपकलाद्शांशजाः ।

चन्द्रावमक्षेपयोरेकदिशोयोंगं भिन्नदिशोवियोगं कृत्वा तद्वमश्र स्फुटा भवति । तत्र विषमपदस्थरेयन्दे।रकीवमाद्यदे।नस्तदा भाषी, यदा पातकालाधिकस्तदाऽतीतः । अथ समपद्स्थस्य व्यस्तमिति ज्ञात्वा वैधृतपातकाले विचार्यमाणेऽर्केन्दुस्फुटावमयोः समदिशोर्योगो भिन्न-दिशोर्वियोगः कार्यश्रकार्घपातकाले, अन्यथा स प्रथमो राशिर्भवति । अथ यदा पातकालोऽतीतस्तदा तत्कालातपूर्वं यदा भावी तदोर्धं कामिश्चिदिष्टवटिकाभिरकेन्दू तात्कालिकौ कत्वा प्राग्वसयोः स्फुटाव-मावानीय पातकालस्य गतगम्यतां विचार्षे प्राग्वत्तयोर्थोगो वियोगो वा कार्यः । द्वितीये उभयत्रापि पातकाले गते वा गम्ये वा सित प्रथमद्वितीयराश्योर्वियोगः । एकत्र गतेऽन्यत्र गम्ये सति योगः । स चेष्ठघटिकाहतस्य प्रथमस्य छेदः। आप्तं घटिकादि, ताः पात-नाड्यः पूर्वेपातमध्यकालात् गता गम्या वा स्युः, ताभिरकेन्दू तात्का-छिकौ कृत्वा प्राग्वत् तत्स्फुटावमयोरानीतयोर्यदि साम्यं संपद्यते तदा स एव स्फुटपातकालः, अथ न चेत् तदा तदवमाभ्यां प्राग्वत् गतैप्यत्वविचारणादिना द्वितीयो राशिः कार्यः, पातनाड्यः इष्टविटकाः प्राक्तन एव प्रथमराज्ञिः । तैरपि प्राग्वत् स्फुटपातकालस्साध्यः एवं थावद्केन्द्रोः स्फुटावमसाम्यं संपद्यते तावत्कार्थं स स्फुटपातमध्यमकालः। पातिस्थित्यर्घहीनस्तदुपक्रमकालः, पातिस्थित्यर्घयुतस्तदिरामकालस्स्यात्।

यथोक्तं सूर्यसिद्धानते-

पातकालस्स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्घवर्जितः । तस्य मंभवकालस्स्यात् तद्यक्तो**ऽथान्यसं**ज्ञितः । VIDYAMADAVIAM. आद्यन्तकालयोर्भध्यकालो ज्ञेयोऽतिदारुणः । प्रज्वलज्ज्ञलनाकारसमर्वकर्ममु गर्हितः

इति । पातस्थित्यधानयनं च तत्रोक्तं—

रवीन्दुमानयोगार्धं षष्टचा संङ्कुण्य भाजयेत् ।

तयोर्भुक्तचन्तरप्राणेः स्थित्यर्धं नाडिकाद्किम् ॥

इति । अथ यदैव माने नीयमानमप्यपक्रमसाम्यं न संपद्येत

तदा पाताभावः, यदा तु द्विरुत्पद्यते तदा द्विः पातो भवति ।

तथा च सिद्धान्ते—

रवीन्द्रोस्तुरुयता क्रान्त्योर्विषुवत्सिन्निधौ यदा । हिभैवेत् हिस्तदा पातः स्यादमावो विपर्यये ॥

इति । पातकत्यमाह—

यत्र चक्रार्घयोगो भवेत्तहिनं दानयोग्यं शुभेषूत्सृजेत् कर्मसु । तच्च तस्माद्धश्चोत्तरं चाशुभं वासराणां त्रयं केचिदाचक्षते ॥ ३९॥

एवं गणितानीतचक्रार्वयोगो यत्र दिने भवति तिह्नं कृत्सनं दानयोग्यं । तथा च सिद्धान्ते—

> रनानदानतपरश्राद्धवतहोमादिकर्मसु । प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत्काछज्ञनतस्तथा ॥

इति । स्मृतौ च

शतमिन्दुक्षये दानं सहस्तं तु दिनक्षये । विषुवे शतसाहस्तं व्यतीपातेष्वनन्तकम् ॥ इति । शुभेषु कर्मसु—विवाहादिषु वर्त्रयेत् । तथा च नारदः—

> यस्मिन् दिने महापातस्तिहिनं वर्जयेत् शुभे । अपि सर्वगुणोपेतं दम्पत्योर्मृत्युदं यतः ॥

इति । पातकाल एवेदामिति केचित् ।

तथाच ब्रह्मगुप्तः—

रविविम्बमेकमार्गोच्छिशिविम्बापकमात् भवति यावत् । तावत्फल्लं तदुक्तं तद्भावे तत् फलाभावः ।

इति । पातयागो यत्र दिने भवित तिहिनं तिहिनादधोदिनं उत्तरिदिनं चेति वासरत्रयमशुभामिति केचित्—वराहिमिहिरादय आहुः । तथाच तहाक्यं—

एष्या धनं क्षपयति व्यतिपातयागा मृत्युं करोति निचरादिप वर्तमानः । सन्तापशोकवधवनधकरस्त्वतीत-स्तस्माद्दिनत्रयमिदं प्रजहीत विद्वान् ।

ननु पातोपक्रमिनराममध्यकाल एव त्याज्यः, न दिनत्रयं । यनस्तत्रैवार्केन्दुरारिमसंघटाद्विज्ञीयते ।

तथाच सिद्धानते-

तुल्यांशुजालसम्पर्कात् तयोस्तु पवनाहतात् । तह्क्रोडभनो विद्येलामावाय जायते ।

इति । अन्यत्रांशुसम्पर्काभावात् तद्भावः, तस्माद्दिनत्रयं न दुष्टं । उक्तंच श्रीपतिना ---

भानोर्बिम्बं तुरहिनिकरणापक्रमं चैकदिकं

यावत्ताभिर्मुनिःभिरुदितस्संभवस्तत्फलस्य । तस्याभावे भवति नियतं तत्फलस्याप्यभावो यात्रोद्वाहादिषु पुनारिह द्युत्रयं नैव दुष्टम् ॥

इति । नैतत्सारं, तुच्छत्वात्, बहुसिद्धान्तभेदेनाकुछत्वाच तस्मात् स्फुटकालमभितास्त्रिशनाच्य इति ; षष्टिनाडीमितमेकदिनं त्याज्य मित्याचार्यस्य मतम् । चक्कार्धयोग इति वैघृतयोगग्रहणम् । चक्कयोगे वैधृतस्तदर्धयोगो व्यतीपातः ।

यद्वा चक्रार्थयोद्वी योगी स्तः । एको व्यतीपातः अन्यो वैवृत तेन समावित्यर्थः ।

तथाच वराहमिहिर:—

व्यतिपातगतं दिनत्रयं व्यतिपातेन समश्च वैधृतः॥

इति । सिद्धान्तेऽपि-

व्यतीपातः प्रसिद्धो यः संज्ञामेदेन वैधृतः।

इति । अथ केचित् व्यतीपातपञ्चकमाहुः ।

तथाच वराहमिहिर:--

यथा-

व्यतिपाताद्वचाघातः ण्छे दशमे च वेंघृतं धिष्णये विक्षोभणगण्डान्तावातिघृतिसङ्ख्ये च विशे च । तादिदं व्यतिपातपञ्चकं कथयन्त्युत्तरसंज्ञिता जनाः व्यतिपातवदाकुलं स्थितं बहुसिद्धान्तविभेदकारणैः॥ अन्ये च सप्त दोषा व्यतीपातसमा गुर्वित्रिभ्यामुक्ताः।

अर्केन्दुस्फुटयोगर्काद्वितीयं नवमं च मं।

षष्टं त्रयोदशं चाष्टादशेमकादशं तथा ।
एकोनिर्विशं नक्षत्रं एते चाऽऽशीविषोपमाः ।
विरोधः परिघो वज्ञं दण्डं खड्गं च शूलकम् ।
व्यतीपात इति ख्याताः सर्वे चाऽऽशीविषोपमाः ।
अपवादैर्न भिद्यन्ते बलिभिर्वा गुणैरपि ॥

इति । कण्टकम्थूणदोषानाह-

अर्कक्षोणीसुताभ्यां भवति गणनया नैर्ऋतं यावदृक्षं तावत्यौ तारके हे क्रमझ इह मते कण्ट-कस्थूणसंज्ञे । तभ्यामामूळसंख्याद्वययुतिगणितः कण्टकस्थूणनामा रक्तस्स्थूणोऽविशिष्टः क्षितिसुर-रहिते सिंहघृत्यंशके स्यात् ॥ ३२ ॥

अर्ककुनाक्रान्तनक्षत्राम्यामारम्य गणनया मूळनक्षत्रं यावत्स-ह्वयं भवति तस्मात्पुनर्मूळात् प्रभृति तावत्सङ्ख्ये नक्षत्रे क्रमेण कण्टकस्थूणसंज्ञे भवतः । तत्राकीत् कण्टकदोषः । कुनात् स्थूण-देषः । अर्कारौ तारादेः क्रमेण चरतः दोषौ तु तारानतादु त्क्रमेणिति अर्काराक्रान्तताराम्यामारम्यामूलगणिते ये सङ्ख्ये तथी-स्तांमिश्रणाद्या सङ्ख्या संपद्यते मूळादारम्य गणितस्तावत्संख्यनक्ष-त्रगतः कण्टकस्थूणदोषस्स्यात् । सिंहेऽष्टादशांशकेम्यः कुनस्फुटं विशोध्यावशिष्टतारागतो रक्तस्थूणदोषः स्यात् ।

अत्रात्रिगुरू —

यावदकां नेर्ऋत्यं तावनेर्ऋतभात् विषं । कण्टकाल्यः कुनाचैवं स्थूणाल्यः शुभनाशनः । भौमार्कसहितादृक्षाद्यावन्तर्कतनं तयोः । संख्याद्वययुतौ मूलात् कण्टकस्थूणमंज्ञितः । एषु त्रिष्विप दोषेषु कृतं सर्वं विनश्यति । सत्स्विप स्वापवादेषु बलवत्सु गुणेषु वा । कलादो ज्ञानदीपौषे कुजस्फुटगाति त्येनत् । शिष्टमङ्कारकस्थर्भं रक्तस्थूणं शुभे त्येनत् ॥

इति । अर्काकान्तनक्षत्रादाश्ळेषादिवण्णक्षत्राणि यावत्संख्यानि स्युः अश्विमात्तावत्संख्यं हरास्त्रमिति केचिदाहुः।

तथा च रछ:--

दिनकरयुताद्भादाश्लेषामखाश्रवणस्तथा निर्ऋतिभमथो चित्रा मैत्रं क्रमादथ यावति । पति ततमे चन्द्राकान्ते हरायुषमश्चिमात् किमपि हि शुभं कार्यं न तत्र विचारणे ।

इति । मृत्युदोषानाह—

व्ययेऽकों राहुर्वा रिपुनिधनयोः शीतिकिरणः सुरेडचो वा धर्मे धरणितनयः खे शिशासुतः। कविर्यस्य यूने वसति तनये सूर्यतनयो गृहं तन्मृत्य्वाख्यं निखिलशुभकार्येषु विसृजेत्॥ ३३॥

इष्टलग्रस्य द्वादशभावे यदाकों राहुर्वाऽवितिष्ठते; तथा षष्ठाष्ट-मयोश्चन्द्रो गुरुर्वा, नवमे कुजः, दशमे बुधः, सप्तमे शुक्रः, पश्चमे मन्द्रिष्ठिति तछग्रं मृत्युसंइां सर्वशुभकार्येषु विसृजेत्। एतेऽष्टौ मृत्युयोगाः, न त्वेकः। अन्यथा व्ययस्थेऽर्के बुधगुक्री सप्त-मयोः कथं स्तः।

अत्र गुरु:--

पुत्रस्थं भानुसूनं परिहर सनतं भागेवं सप्तमस्थं जीवं षण्मृत्युसंस्थं नवमदशमयोभीमसौम्यो क्रमेण । चन्द्रं षष्टाष्टमस्यं दशशतिकरणं द्वादशस्यं ससपं संत्रोक्ता मृत्युयोगा मरणभयकराः कीर्तितास्सर्वकार्थे ॥ इति । गुरोष्षडष्टान्त्यस्थे चन्द्रे शकटो नाम दोषः । गुर्वत्री—

गुरुस्थानात्तु शीतांशी षडन्तं संश्रितेऽष्टमं । योगोऽयं शकटो नाम वधं दद्यात् शुभे युतः । इति ।

दयुश्चित्राशूर्पचक्रांबुविष्णु-क्षीराधीशा बुध्नचदस्नान्तराश्च। धाता रुद्रो देवसूरप्यजाद्यै-र्मासैर्युक्ता वत्सरार्धेन मृत्युम् ॥ ३४॥

क्षीराधीशो-वरुणः, चित्राद्या द्वादश तारका मेषाचैद्वादिभिः सौरमासैर्युक्ता वत्सराधेन पड्भिमीसैर्मृत्युं दृद्युः । मेषादिमासेषु चि-त्राद्या मृत्युसंज्ञा इत्यर्थः ।

अत्र गार्ग्यः—

अने चित्रा वृषे शूर्षं यमे ज्येष्ठाडम्बु कर्कटे । श्रवणार्सिह्मासे स्यात् कन्यायां शततारका। अहिर्बुध्रचं तुलायां च वृश्यिके चाश्विनी तथा। धनुषो भरणी चैन मकरस्य तु रोहिणी। राहर्भ कुम्भमासे तु मीनमासे पुनवैसू। शून्यऋक्षा न कर्तव्याप्यणमासे मरणानदाः।

इति । अन्धमान्याह-

अर्कारूढभनाडिकामुभयतो रामाग्निषट्तारका नाडघोऽन्घैकहगक्षियुग्मकाछिताः काणास्तु तिस्तः पराः। वारान् भानि च तद्दिनान्तमभियुज्याङ्का प्रशिष्टास्सहक्काणान्या युगछोकछोचनमिता-स्ताराः प्रदिष्टाः परैः॥ ३५॥

त्रिशिखामकामुङ्कीं नाडीं विलिख्य तद्गेदिनीद्वाद्श तिर-श्रीर्लिद । तद्दजुनाडीमूले अक्तीकान्तर्स विन्यस्य ततः क्रमण नाड्यप्रेषु साभिजिन्ति भानि न्यस्यान्यत्वादीनि निरूपयेत् । तत्रा-काक्तान्तभमन्यं तदुभयपार्श्ववर्तिनाडीत्रयगनान्यन्थानि, तत्परिस्थित-नाडीत्रयगान्येकनेत्राणि, ततः परं पण्णादीगतानि द्विनेत्राणि । ततः ऋजुनाडीत्रिशिखांशकान्येकनेत्राणि स्युः ।

तथाच सर्वासिद्धौ--

एकं त्रिकं त्रिकं षट्कं त्रिकं षट्कं त्रिकं त्रिकम् । अन्धान्धकाणहकाणहकाणान्धा रवेः ऋमात्॥ इति । अन्ये त्वाहुः—

अर्कादीन् गतवारानिश्वन्यादीनि गतभानि च तहर्तमानिदेन-क्षिम्यां सह संयोज्य नविभिर्विभज्य शिष्टाश्चतस्त्रश्चेत् तदूना हिनेत्रा स्स्युः । तदूर्धं तिस्तः काणाः, तदूर्धं द्वे यद्यन्यास्तारा स्स्युरिति । तथाचोक्तम्—

> अर्कपूर्वाश्विनीपूर्वा घेनुभक्तावशोषिताः । द्रचक्षकाणद्विनेत्रास्स्युराभाण्डारादनुक्रमात् ॥ इति ।

गुरुराह भास्करादीन् वारान् त्रिघ्वान् विशो-धयेद्रगणात् । शेषे नवरविरसमितताराः काणिद-लोचनान्धाल्याः ॥ ३६॥

गुरुरन्धादिभान्येवमाह—अर्कादीन् गतवारान् वर्तमानवारसहितान् त्रिगुणान् सतो भगणात् नक्षत्रमण्डलाद्विशोध्याश्विनीमादितः कृत्वा तावरसंख्यानि भान्यतीत्व परतिशक्षेष्ठे भचके नव ताराः काणाः, ततो द्वादश द्विलोचनाः । ततष्षडन्धा भवन्ति । उक्तं च—

> वारानकीदितिस्त्रिझानादी संशोध्य चक्रतः । ततो नवाकीषट्ताराः क्रमात् काणद्विद्यक् विद्यक् ॥

इति । अत्र केचिदाहुः--

त्रिद्यानकोदिवारान् भचकाद्विशोध्यावशिष्टसंख्यात्रगतात्त-सत्रादारभ्य काणादयस्स्युरिति, तदसत्—अनिष्टभानामन्धस्वापत्तेः, तथाहि—सूर्यवारे त्रिद्यगतवारिवशुद्धभचक्रविशिष्टसंख्यात्रगतं पूर्वा-भद्रक्षं तस्मादारभ्य काणादिगणनया मूलादीनां षण्णामन्धत्वं समा-पद्येत । तच्च नेष्यते । तत्र पूर्वाभद्रादीनां षण्णामन्धत्वश्रमात् ।

> पूर्वोभद्राऽिश्वकाऽऽदित्यमखाऽर्केन्द्राग्निभात् ऋमात् । षट्षडकोदिवारेऽन्धाः शुभकमिवनाशनाः ।

इति । तच्च त्रिघ्नगतवारसंख्यास्तिस्त्रस्ताराः भचकादो विहाय तद-प्रगतरोहिणीमारम्य काणादिगणनया सेत्स्यन्तीति । अन्धादिदोषो राशीनामप्यत्रिणा—

> मेषोक्षिसिहा नक्तान्धाः दिवान्धास्त्रीयुगेन्दुभाः । कुम्भानत्यौ विधिरौ सन्थ्योः पङ्ग प्रातस्तुलाऽकिनौ । सायाह्नेऽश्विमृगौ तेषु शुभं विद्यां गातिं त्यजेत् ।

इति । विवाहिऽन्धादिराशीनां फलमन्यत्रोक्तम्— अन्धे वन्ध्या भवेत्रारी विधिरे विधवा स्मृता । पंगुमे दुभेगा नारी लग्नदीषाः प्रकीर्तिताः ॥

भानां मृतादिदोषाऽपि तेनोक्तः—

अर्कस्थमुक्तप्राप्यक्षं मृतं सप्तार्धजीवनाः । पार्श्वयोर्मृतमेकैकं पूर्णप्राणमथाष्टकम् । सस्यारम्भे च विष्कम्भे द्रुभेदे जलताडने । जलप्रवेद्यो कूपाद्यानिधाने पूर्णे गतौ । पूर्णप्राणं द्युमं मध्यमर्थप्राणं सृतं त्यजेत् ।

इति । उष्णाशिखामाह—

अश्विन्यादिषु भेष्वजाळिमकरप्राप्तांशकान्ते क्रमादंशार्घस्मरवाणरन्ध्रघटिकास्तद्वद्विशाखादिषु। मेषांशस्य मुखेऽष्ट कोर्पिमृगयोरंशावसानेऽष्टद-ङ्नाडीरुष्णशिखाऽऽह्वयाः परिहरेत् सर्वेषु कार्ये-ष्वपि॥ ३७॥

भानां नवांशकल्पनया प्राप्तमेषाळिमकराणां संबन्धिना येंऽशकाः त्रित्रिनक्षत्रात्मकर्कसमुदायानां नवानामाद्यमध्यान्स्यभेषु प्रथ- मचतुर्थद्वितीयपादा ये सन्ति तेषामन्ते क्रमात्— मेषांशान्तेऽ-शार्ष-सार्धसप्तवेदिकाः, वृश्चिकांशान्ते स्मरवाणाः—पञ्च, मकरांशान्ते रन्ध्राणि—नव नाड्यः, उष्णाशिखाऽऽख्याः अश्विन्यादिपञ्चदशमेषु मवन्ति । विशाखादिद्वादशमेषु ; अथ मेषांशादावष्ट, कोर्प्यशान्तेऽष्ट, मकरांशस्य चान्त्ये दश नाडिका उष्णशिखाऽऽख्या भवन्ति । तास्सर्वेषु शुभकार्येष्वविशेषेण त्यजेत् । उक्तं च—

> अंशिषवस्विष्वहिरन्ध्रपङ्किः नाडीस्त्यजेदुष्णशिखाः ऋमेण । भौमारसौराणशिराणिवेषु सर्वत्र विद्यात् वसुवज्यमन्त्यम् ॥

इति । गण्डदोषमाह-

ऋक्षात्सूर्यात्मजाक्रान्ताहिंशं गण्डं प्रचक्षते । हिचत्वारिंशदित्युक्ताः दोषास्त्याज्यादशुभेष्वमी ॥

शनैश्चराक्रान्ताद्विशं नक्षत्रं गण्डं नाम वदन्ति, इत्युक्ता अमी द्विचत्वारिशहोषाः शुंभेषु कर्मस्वविशेषेण सर्वेषु त्याज्या भवन्ति । सामान्याभिघानात् एषां प्राधान्येनेयत्ता निर्देशः । एवं सामान्यदेषानाभिघायाय कर्तृकर्मविशेषेण कांश्चिहोषानाह—

कर्तृजन्मादिकास्तारकाः कीर्तिता जन्मसंपद्धिपत्क्षेमकृत्प्रत्यरः । साधकोऽथो वधो मैत्रमन्यत्परं मैत्र-मित्येवमन्याः पुनश्च क्रमात् ॥ ३९ ॥ कर्तुः पुरुषस्य योषितो ऽन्यस्य वा जन्मशीद्यास्तारकाः क्रमात् जन्मादिसंज्ञास्स्युः । त्रादुर्भावकाले यत्र नशते चन्द्रास्ति । ष्ठति तदृशं जन्मश्रै, तस्माद्शमं कर्नर्ते, एकोनविष्माधानर्शे, एतानि त्रीणि जन्मसंज्ञानि ।

तथा च भरहाजः--

गर्भस्थोदव (१) नक्षत्राइशमे तु मे । तस्मात्तद्दशमे वा तत्सम्मितं जन्मसंज्ञितम् । एकोनविशं नक्षत्रं गर्भाधानमिति स्मृतम् ।

इति । तेभ्यो द्वितीयादीनि संपदादिनक्षत्राणि, तथा च--जन्मसंपद्विपत् क्षेमप्रत्यरस्साधको वधः । मैत्रं परममैत्रं च जन्म चेति पुनःपुनः ॥ इति ।

जन्मविपत्प्रत्यरवधजनमाष्टमराशितारकास्त्या-ज्याः । साष्टमगृहाः शुभेषु त्यजन्ति षष्टव्ययौ चान्ये ॥ ४० ॥

शुभक्रमेसु त्रिजनमानि—विपत्प्रत्यरवधिक्षीणि प्रथमजनमर्शो दृष्टमराशेः संबन्धिन्यस्तारकाश्च जन्मविल्नग्राभ्यामष्टमराशिना सह त्याज्यास्त्युः।

आत्रे:----

कर्तुश्चन्द्राष्ट्रवैनाशविषदः प्रत्यरं वधं । जन्मान्याद्यस्य पूर्वर्शं सर्वेकर्मसु वर्नेयेत् ।

इति । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन सप्तविंशं नक्षत्रं कैश्चित् त्यज्यते ।

तथा च विधिरते ---

त्यनेदत्र त्रिजन्मानि प्रत्यरं वयसंज्ञितम् । चन्द्राष्ट्रमविनादार्कं सप्तिविद्यतिमं तथा । अन्येषु शुभकार्थेषु विषदा साहितानि तु । वर्ज्यान्यन्यानि देषाणि शुभदानि शुभेषु च ॥

इति । मरद्वाजेन तु जन्मादीनामन्वर्थाभियानेन तत्फलं दर्शितम्—
नरस्य जन्मनक्षत्रे संप्राप्ते तु तदा बुधेः ।
जन्म संचिन्त्य वक्तव्यं देहस्थस्य यथाविधि ।
व्यापदं कुरुते यस्मात् विपत्तादीति संज्ञितम् ।
कार्याणां प्रतिषेधत्वात प्रत्यरं चेति चोच्यते ।
निधनं हि भवेद्यस्मात् सप्तमं वधसंज्ञितम् ।
तस्मादेतानि यत्नेन वर्जयेन्नैव योजयेन् ।
संपत्करेण यत्कर्म सर्वास्तत्र हि संपदः ।
क्षेमेण तु कृतं कर्म क्षेममारोग्यमावहेन् ।
साधके साधयेद्र्यानश्रमणाचिरादि ।
मैत्रे मित्रसमं प्रीति कुर्यात्कार्य फलोद्यम् ।
मैत्रे परममासाद्य यत्कार्य कुरुते नरः ।
तत्कार्य सुकरं तस्य सिध्यते नात्र संशयः ॥

इति । अष्टमचन्द्रग्रहणमुगळक्षणमानिष्टस्थानानिविष्टानां शिष्टानां ग्रहाः णामिति केचित् ।

तथाचात्रि:---

सर्वीन् लग्नान्त्यरन्ध्रस्थान् वर्जयेत्कर्तृलग्नयोः । विशेषान्त्रचम्बुखेषु इं त्यजेन् षड्ध्रातृकं गुरुप् । स्त्रीधनान्त्ये कुनं कामे भृगुं रन्ध्रे विधुं तथा । इति । नैतदाचार्यस्याभिमतम् । यस्मादसावप्टमराशिताराणां त्याज्य-त्वमभिषत्ते नाष्टमचन्द्रस्य । तथा चन्द्रग्रहणमुपलक्षणं स्यान्न तारा-ग्रहणमिति ।

तथा हि—सर्वकार्येषु चन्द्रबलमेवावस्यं ग्राह्यं। तथा SSह नारदः—

> सर्वत्र प्रथमं लग्ने कर्तुश्चन्द्रबलं ततः । कल्प्यं यदीन्दी बलिनि सत्यन्ये बलिनो ग्रहाः ।

इति । किञ्च चन्द्रबलं सर्वत्र प्रधानं । तदन्यवलं कचिदेव । तथा च रछः—

> गुरुविवाहे गमने च शुकी ज्ञाने बुधो दीक्षणके च सौरिः । रणेषु भौमो नृपद्रश्नेऽर्कः सर्वेषु कार्येषु शशी बलाब्यः॥

इति । ननु चन्द्रबलस्य प्राधान्ये तदन्यबलानामौपसर्जन्यमस्त्विति, तच परस्तात्प्रतिपिपाद्यिषितमितीह नोपलक्षितम् । अन्ये जनमराद्येः षष्टव्ययौ च त्यजन्ति ।

तथा भरहाजः-

ओजा १श्रेष्ठतमास्सर्वे नेष्टाप्षष्ठान्त्यनैधनाः । राषाश्च मध्यमाः प्रोक्ताः राशयस्सर्वेकर्मसु ।

इति । केचित् जनमलमे च त्याज्ये प्राहुः ।

तथाच नारदः--

जन्मरार्युद्रमेंनैव जन्मलमोदयेऽशुभं । तयोरुपचयस्थानं यदि लमगतं शुभम् । इति । अष्टमराश्यंशोऽपि त्याज्य इत्यन्ये । तथा विवाहनकरणे स एवाऽऽह—

दम्पत्थे।रष्टमं छप्नं राशिनी यदि छप्नगः । अर्थहानिस्तयोर्थस्मात् तद्शं स्वामिनं त्यजेत् ।

इति । एषां व्यवस्था दिश्चिता सर्वसिन्धौ— पापेशोऽष्टमराश्यंशो वर्ज्यस्तद्वद्वृषांशकः । जन्मलग्ने शुभे क्षारे मध्ये वज्योऽष्टमस्तयोः ।

इति । वैनाशिकमाह—

अष्टाशीतितमों ऽशो यस्मिन् जन्मादिगणनया भवति । वैनाशिकं तदृक्षं त्यजन्ति केचित् तमे-वांशम् ॥ ४९ ॥

यस्मित्रंशे जन्म तस्मादारम्य तदादिगणनया अष्टाशीतितमे। नवांशको यस्मित्रक्षत्रे द्वाविंशे त्रयोविंशे वा भवति तन्नक्षत्रं वैनाशिकं— विनाशकारि ।

तथा च भरद्वाजः —

द्वाविशे वा त्रयोविशे त्वष्टाशित्यंशको भवेत् । वैनाशिकं तु तज्ज्ञेयं नक्षत्रमिति तच्छुतिः । विनाशं कुरुते यस्मात् तस्माद्वैनाशिकं भवेत् ।

इति । तद्भं शुभेषु त्यजन्ति— केचित् तमष्टाशीतितममंशमेव त्यजन्ति ।

तथा च गुरु:---

वैनाशिकाऽऽख्ये नक्षत्रेऽप्यष्टाशीत्यंशकं विना ।

शिष्टांशाः शुभदास्सर्वे जन्मनीन्दुगतांशतः । इति । अत्र द्वाविंशस्य त्रयोविंशस्य वैनाशिकस्य वैनाशिकत्वानव-धारणादनभिधानम् । तद्वधारणस्यांशिवन्धनत्वात्तद्भिधानम् ।

किञ्चाऽऽचार्यस्येदमत्रामिमतम्—अपवादाभावे नक्षत्रमेव त्याज्यं, सत्यपवादेंऽश एवेति । अन्ये मानसादीनामुपलक्षणमिद्गिषाहुः । तथा च नारदः—

जन्मकींद्रशमं कर्म सङ्घातक्षं तु षोडराम् । अष्टादरां सामुदायं त्रयोविंदां विनारामं । मानसं पञ्चविंदाक्षं तस्मादेषु द्युपं त्यजेत् । इति । आचार्येणोपसर्भनानीति नोकानि ।

एकांगळमाह—

संप्राप्ते परिघादियोगनवके पैत्राहिपुष्यादिति-त्वाष्ट्रेभ्योऽश्विभतस्तुषारिकरणान्मूळाच मैत्रादिष। प्राक् पश्चाच यथाक्रमं विगणिते तारागणे संख्य-या चन्द्राकिश्विततारके यदि समे दोषोऽयमे-कार्गळः ॥ ४२॥

परिवादिषु निन्दातयाऽभिहितेषु नित्ययोगेषु नवस्वेकस्मिन्
प्राप्ते; मखादिस्वोक्तभादारम्य प्राक् पश्चात् क्रमोत्क्रमाम्यां गणिते
सित भगणे चन्द्राकांक्रान्तनक्षत्रे यदि समसंख्ये स्तः तदैकार्गळो
नाम दोषस्स्यात् । प्राचीमृज्वीमेकां रेखां तद्रेदिनीस्त्रयोदश तिरश्चीराष्टिख्य ऋजुरेखाग्रे मखादिभानि विन्यस्य तद्दन्यानि षाड्वंशतिमानि
क्रमेण तेषु चन्द्राकों स्वाक्रान्तर्क्षयोर्विन्यसेत् । तत्रार्केन्दू यद्युभावेकरेखारूढो स्तः तदेकार्गळो दोषः ।

तथा च श्रीपति:---

एकामूर्ध्वगतां त्रयोदश तथा तिर्यगताः स्थापयेदेखाश्रकामिदं बुधिरामिहितं खार्जूरिकं तत्र तु ।

ग्यावातादिषु मूर्धि मं च कथितं तत्त्रैकरेखास्ययोास्मूर्याचन्द्रमसोमिथो निगदितो हक्पात एकार्गळः ।

ग्यावातश्रुलपरिघव्यतिपातपूर्वगण्डातिगण्डकुलिशोपु सर्वेष्ट्रतेषु ।

आदित्यचन्द्रिपतृसर्पभदसमूलमेत्राख्यतिथ्यसुरवर्धाकिमानि मूर्ष्वि ।

दिनकरहिमररम्योद्दिष्टिसंपातजनमा

भवति विक्रतमूर्तिः कोऽपि रौद्रो मनुष्यः ।

पतित भुवनमध्ये मङ्गलानां विनष्टचै

जवलनकपिलहृष्ट्या निर्देहन्त्या जगन्ति ॥

इति । शून्यान्याह—

कुम्भान्त्यवृषवीणाजस्त्रीकीटवाणिगदिवनः। कर्की मृगमृगेन्द्रौ च चैत्रादौ शून्यराशयः॥४३॥

चैत्रादिमासेषु कुम्भादयश्जून्या भवन्ति । स्त्री-कन्या, वणिक्-तुला, अश्वी-धनुः, मृगेन्द्रः-सिंहः, । अत्र गुरुः--

> चैत्रे कुम्भस्तदा वज्यों वैशाखे मतस्य एव च । ज्येष्ठे वृषो यमश्जुच्यां मेपं नभित वर्जयेत् । नभस्ये कन्यका वज्यों वृषे वृश्चिक एव च । ऊर्जे तु तौछिको वज्यस्सह चापं तथा विषम् ।

सहस्ये कर्कटो वज्यों नक्तं तपिस वर्जयेत् । तपस्ये तु हरिर्वज्यों राशयो विषवत् शुभे । अतिशून्यकरा ज्ञेया मासिमास्यिखिले त्वमी । एषु यच्छुभदं कर्म कृतं तत्सर्वनाशनम् ॥

काद्ये विश्वार्थिचत्रापवनभमिदितिं भाग्यवस्वृ-क्षके वार्विश्वर्क्षे वारुणान्त्ये इारकृतिमितिभं सोमिपत्रचाग्निपुष्याः । पड्विंद्यौन्द्राग्नित्रा र-वितुरगिद्यावा विष्णुमूळे यमेन्दू ज्ञान्यास्ताराः क्रमेण त्यजतु पदमिता मास्सु चैत्रादिकेषु ॥४४॥ इति।

कः-ब्रह्मा । आर्थो-बृहस्पतिः। वाः-वारि । शरक्रतिःपश्चाविंशातिः । चैत्रादिषु मासेषु काद्य इत्यादिषु क्रमेण पदिमताः
सुवन्तैकैकपरिच्छिन्ना एकद्वाः त्रिचतस्त्रो वा ताराः शून्यास्त्यजतु
शुभकर्ममु त्यजेदित्यर्थः । विष्यर्थे छोट् ।

एतदुक्तं भवति गुरुणा--

रोहिणी चाश्विनी चैत्रे शून्यमे परिकीर्तिते । वैशाखे त्वं प्ट्रवायव्यवैश्वातिष्यास्तु शून्यमाः । मासि ज्येष्ठे तथाऽऽदित्यमाषाढे मगत्रासवी । श्रावणे वैश्वतत्पूर्वनमस्ये पौष्णवारुणे । अजैकपादिषे नेष्टं पूषेन्द्रश्मिष्वाः परे । सहे विशाखा मैत्रं च माद्रपादं तथोत्तरम् ।

¹ बुध्रंगेक्षेन्द्रार्शामत्राः प्रथमरवीति ॥ पा ॥

सहस्येऽश्विकराद्गीस्स्युहीरमूछे तपस्यसत्। तपस्ये भरणी शक्ते शून्यभान्याहुरअजाः। शून्यभेषु तु यत्कर्म तत्सर्वं नाशतां ब्रेजत्। कर्जा सह कुछनैव धनेन महताऽपि च।

इति । रविभुनगशिवानिति केवां चित्पाठः

तथा चात्रिः---

शून्यास्तिप्येऽहिरुद्रार्काः कर्कटं सितसप्तभी ॥ इति । केचिन्मेषादिसौरमोसषु शून्यान्येतान्याहुः।

तथा च विाधिरते-

चैत्रे वाजिप्रजेशों वृषभयुजि रवों जीवविश्वेन्दुवायू-निद्यं वे तृतीये भगमपि वसुमं तचतुर्थे च शून्यं ।

श्रावण्यां चाऽऽप्यमूले युवातियुजि मगे वारुणं पौष्णमाहु-श्रेषे चाजैकपादं राशिगुरुपितृखान्यष्ठमे शून्यमग्निम् ।

ऐन्द्राप्तमैत्रे नवमेऽप्युपान्त्यं सापि च हस्तं दशमे सरौद्रं । मूलं च विष्णुं मवमासि शून्यम् ज्येष्ठां च याम्यं त्यज फाल्गुने च ॥

इति । 'इह श्रावण्यां चाऽऽप्यमूले इति' । विधिरतेनोक्तमनादरणीयम् । प्राक्तनेस्तथाऽनभिवानात् ।

भरहाजश्र-

आषाडसंज्ञे नभासे त्यजेच नमस्यमासे वरुणं च पौष्णम् ॥

इति । शून्यतिथीराह—

षड्वाणार्ककुलाद्रिपङ्त्युद्धिदिग्धात्रीमहेशा-चलक्षोणीलोचनपावकाष्टनवसंख्यातेषु मासेष्टु-पि। शून्याख्याः प्रथमादिकाश्च तिथयः पक्षे सिते कीर्तिताः त्याज्याः पश्चदश क्रमेण खलु ताः कृष्णे दितीयादयः॥ ४५॥

नुलाद्रयः—सप्त, पङ्किः—दरा, उद्धयः—चत्वारः, षडादिप्रो-क्तसंख्यातेषु मासेष्विप शून्याख्यासिमतेषु मासेषु भाद्रपदादिषु पश्चदशमु शुक्के क्रमेण प्रतिपदाद्याः पूर्णिमान्ताः पश्चद्श, रूष्णे तु द्वितीयाद्याः दशीन्ताश्चतुर्दश, रूष्णप्रतिग्दा सह पश्चद्श तिथयः शून्याख्याः शुभकर्ममु त्याज्याः । एतदुक्तं भवति गुरुवचनेन—

प्रथमा च द्वितीया च सिते रुष्णे नमस्यके द्वितीया च तृतिया च श्रावणे सितरुष्णयोः। फाल्गुने सितरुष्णाख्ये तृतीया च चतुर्थिप इषे सितेतरे पक्षे चतुर्थी पश्चमी कमात्।। सितेतरे तपस्ये तु पश्चमी पष्टचसत्क्रमात् गुचौ सितेतरे पक्षे षष्टी सप्तम्यसत्क्रदे। पौषे पूर्वे च रुष्णे च सप्तम्यष्टम्यसत्क्रदे। चैत्रे पक्षे सिते रुष्णे अष्टमी नवमी न सत् माघ सनवमी पक्षे सितेऽथ दशमी परे श्वेते रुष्णेऽप्याश्वयुके दशम्येकादशी न सत्। मधौ पूर्वे परे पक्षे न सदेकादशी परा

माधवे सितरुष्णाख्ये द्वादशी च तयोदशी ।
त्रयोदशी सिते ज्येष्ठे रूष्णे चासचतुर्दशी ।
ऊर्ने चतुर्दशी श्वेते रूष्णे पञ्चदशी न सत्
पौर्णमासी कुहूश्चेव सहे द्वे प्रतिपन्न सत् ।
तिथयो मासशून्याख्याः शुभकर्मविनाशनाः
एषु पित्रचाणि कुर्वीत कर्माण्यात्महितेच्छया ॥ इति ।

षड्वाणार्ककुलाद्गिपङ्कचुद्धिदिक्क्षोणीति केषांचित्पाठः । सोऽ-नादरणीयः । यस्मादत्रिः—

शून्यं यमेन्द्रो सिंहोऽन्त्ये तृतीया पश्चमी सिते ॥ इति । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तथाहि—मेषचापादिमासेपु द्वन्द्रोषु काचिद्वितीयादियुग्मतिथीनां दग्धत्वमाहुः । तथाच रछः—

> झषघनुषावृषघटयोः ककचैनयोार्मिथुनकन्ययोरर्के । हरिकोरयोर्म्हिगवणिनोर्दग्याश्चैकान्तरा द्वितायाद्याः ॥

इति । केचित् पञ्चम्यादिपूर्णात्रयवर्जितानां त्रतिपदादिद्वादशितिथीनां तत्पूर्णात्रयपादानां द्वादशानां च क्रमेण मेषादिराशिषु क्रूराकानेतेषु दग्धत्वमाहुः । तथा स एव—

मेषाद्यानामाद्याश्चत्वारः पञ्चमी चतुर्णां च

परतः परतोऽन्येषां न शुभा स क्रूरराशितिाथैः ॥

इति । आश्वयुजादिषु शुक्कसप्तम्यादयो मन्वादितिथय इति । कार्तिकादिषु युगादितिथय इति कैश्रिन्निन्दिताः। तथाच श्रीपतिः—

> आश्वयुनशुक्कनवमी द्वादश्यूर्ने मधी तृतीया च । भाद्रपदेऽपि तृतीया श्रावणमासे लमावास्या॥

एकादशी च पौषे शुनिसितदशमी च सप्तमी माघे । बहुळाष्टमी नभरयेऽप्याषाढे कार्तिके पूर्णो ।। फाल्गुनासितपञ्चदशी चेत्री ज्येष्ठस्य पौर्णमासी च । मन्वन्तरादय इमाश्चतुर्दशोक्ता बुधैः पुण्याः ॥

इति । अत्रिः—

कार्तिके नवमी शुक्का तृतीया माधवेऽमला । माचे दशीं नभस्थेऽन्त्या त्रयोदश्योर्युगाद्यः आसु श्राद्धं शुभं दत्तं स्नातमक्षयमेति च ॥

इति । शून्यमासमाह-

्षोषा मासद्यान्य इति कैश्चित् देशेषु केषुचित्। वर्ज्यते गुभकार्येषु विवाहेषु विशेषतः ॥ ४६॥

पै।षो मास इति धनुस्स्थेऽर्के शुक्कप्रतिपदमारम्य मकरस्थेऽर्के दर्शावसानश्चान्द्रो मास इत्युच्यते । तथाच भरद्वाजः—

मीनगे स्यात् सिनीवाछी सूर्ये वे मेषगे कुहूः ! स चैत्र इति विज्ञेयो मासो वर्षादिसंभवः ! वैशासो मेषवृषयोरेवं मासाः ऋमेण तु । राइयो राश्योस्तु विज्ञेया भास्करस्य प्रवर्तनात् ॥

इति । अन्ये लाहुः—

Ł,

यस्मिन् मासे पौर्णमासी पुष्ययुक्ता स पौष इति । तथाचामरः—

> पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी मासे तु यत्र सा । नाम्ना स पौषी माघाद्यास्त्वेवमेकादशापरे ॥ इति ।

केषु चित्—कर्णाटककोसलादिषु देशेषु पौषमासरशून्य इति शुमकार्येषु विवाहाद्युपनयनादिषु केश्चिद्धर्ज्यते । केश्चित् पौषो न शून्य इत्युपनयनादिषु गृह्यते । विवाहादिषु ब्राह्मादिषु विशेषतो नियमात् बहुभिवेज्यते । अन्येषु शुभकार्येषु केश्चिदेशाचारेण वर्ज्यते केश्चिकेत्यनियमः । तस्मान्नायं सर्वत्र शून्य इष्यते ॥

अथ दग्धादिभान्याह—

प्रहैरिनिन्द्दिन्दुजभार्गवैर्य-न्मुक्तं च युक्तं च यियासितं च । क्रमेण दग्धं ज्वलितं तदृक्षं धूमायमानं च शुभेषु जह्यात् ॥ ४७॥

प्रहैः चन्द्रबुधशुक्रेभ्योऽन्यैः यन्नक्षत्रं मुक्तं भुक्तोिज्ञतं तह्ग्धं, यद्युक्तं भुज्यमानं तत् ज्वित्तं, यत् यियासितं तद्धृगयमानमिति त्रीणि नक्षत्राणि शुभेषु वर्त्रयेत् । अत्र भरद्वाजः-—

> प्रहेर्युक्तं च मुक्तं च कााङ्कितं चेति भत्रयम् । गर्हितं तु तदा ज्ञेयं सर्वारम्भेषु नित्यशः ॥

इति । इदं सामान्यम्, विशेषो ब्रह्मयामळ उक्तः—
नक्षत्रं ऋरसंयुक्तं विद्यादालिङ्गितं त्रिये
ऋरमुक्तं भवेदग्वं तदस्रस्थं विधूमितम् ।
दग्वेन मरणं विद्यात् ज्वालितेन कुलक्षयः
धूमिते भङ्गमायाति तस्मान्त्रीणि त्यनेत् सदा ॥
विवाहे विधवात्वं च गमने न निवर्तते

रुषयो निष्फलास्तर्वा वापितं न प्ररोहित ।
यित्किञ्चित्कियते कर्म तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ इति ।
स्यादेतत्—यदि क्रूरमुक्तमेव दग्धं; तत्कथं जीवत्यक्तस्य दग्धत्वं,
अथ शुभमुक्तमपि, तत्कथं शुक्रमुक्तस्य न स्यादिति, सत्यं, ज्ञापकात्सिद्धमित्यभिद्ध्मः । ज्ञापकं च परस्ताद्ववादकथनम् । नन्वेवं
क्रूरजीवैरिति सुवचं, कुतो प्रहैरनिन्द्विन्दुजभार्गवैरिति, अत्र ब्रूमः—

बुघस्य पापयोगात् पापत्वे सिद्धे तन्मुक्तस्य दग्धत्वं मा भूदिति । अथापि व्यर्थमनिन्दुग्रहणं, सर्वेषां दग्धत्वादिप्रसङ्गात् । यतस्ता-राणामिन्दुसंयोगेनैव व्यवहारप्रसिद्धिः ॥

यथाऽऽह भरद्वानः —

यदान्नसत्रमासाद्य राशी यावत्तु तिष्ठति तावत्तन्नामसंयुक्तं नसत्रमिति चसते ॥

इति । नैतत्कृष्णे, क्षीणेन्दुसंयोगात् भानां दग्धत्वादि समस्त्विति । अस्तु कामिष्टमेव संपद्यते, यतश्चन्द्रक्षये सर्वकर्माणि वज्यानि । उक्तं हि भरद्वाजेन—

यथा चन्द्रमसी वृद्धिः शुक्रपक्षे छतं तथा । कृष्णपक्षे छतं तद्वत् क्षीयते न च वर्षते ॥ इति । नायं नियमः, कृष्णेऽपि शुमक्रियाणां विधानात् । तथाहि भरद्वाजः—

गुक्के वा यदि वा कृष्णे कार्यास्सर्वाश्गुमाकीयाः । गुभैर्वलयुतैर्द्धे चन्द्रे क्रूरैर्विवर्जिते ॥ इति । नन्विदं दोषभङ्गकथनं दग्धादिष्वप्यनिवार्यामिति चेत्, नायं दोषभङ्गः, गुक्ककृष्णयोरविशेषकथनात् । तस्मात् कृष्णपक्षस्य वर्षे-त्वनिषेषायानिन्दुग्रहणमिस्यनवद्यम् । ज्वालादियोगानाह— भौमात भूपनगाव्धितत्वमनवो ज्वाला गुरेार-ङ्कभं व्याधिस्तोमजतोऽष्टसङ्कृतिधृतीराहुर्महा-कण्टकम् पातात्पश्चममीश्वराश्च परिघं शुकाच तिथ्यद्रयो देषस्सूर्यसुनादद्यातुंकृतयः खण्डस्स्मृतः पण्डितैः ॥ ४८॥

भौमाकान्तनक्षत्रात् षोडशसप्तमचत्र्येपञ्चविशचतुर्देशानि पञ्च-क्षाणि ज्वालासंज्ञानि । गुरोनेवमं व्याचिः, बुधादष्टमचतुर्विशाष्टादशानि त्रीणि महाकण्टकसंज्ञानि । राहोः पञ्चमेकादशे परिघाल्ये । शुकात् पञ्चदशसप्तमे दे द्वेषाल्ये । शनेद्शमष्टविशानि त्रोणि खण्ड-संज्ञानि ॥ अत्राऽऽहुः—

सप्तमं षोडरां मौमात् पश्चितिरां चतुर्दराम् । चतुर्थे च भवेज्ज्वाला देषश्शुकाच सप्तमम् । पश्चद्रां रानेदेग्धं षष्टेकाद्शिविशत्यम् । पातात्त्र्योदरां दण्डं पश्चमकादरां त्यनेत् ।

अत्र गुरु:-

ऋक्षात्सी। स्ययुताद प्टघृतिजैने निशाकरे

महाकण्टकनामेद दोषत्रयमनिष्टकत् ।

बृहस्पतियुताह साझवमोऽऽपि गदाऽऽह्वयः

शुक्राच दशमो रोगः शनेरेकादशो यमः ॥

राहोस्त्रयोदशो गर्द्यः केतोः पश्चदशो गरः ।

एषु सर्वेषु दोषेषु शुभानि परिवर्जयेत् ॥

इति । मासानाह—

सौरो राशिषु सूर्यसङ्क्रभणतश्चान्द्रस्तु दर्शान्त-Vidyamadaviam को विज्ञेयस्मितपक्षपक्षतिमुखिंद्यहिनस्मावनः।
नाक्षत्रदशिमण्डलादिति मता मासाश्चतुर्घा
क्रमादन्त्येऽहस्त्रयमाद्ययोश्चरमयोदिकपञ्चनाडीस्त्यजेत्॥ ४९॥

मेषादिराशिषु सूर्यस्य सङ्कमात् तत्तत्तंज्ञः सौरो मासः । यथा-मेथेऽर्के सङ्कान्ते मेषो नाम इत्यादि ! दर्शस्यान्तोऽवसानं कं शिरो यस्य स दर्शान्तकः, शुक्कप्रतिपदादिरमावास्यावसानः श्चान्द्र इत्यर्थः । त्रिंशिद्दिनानि परिगाणितान्यस्येति त्रिंशिद्दिनः त्रिंशान्द्रस्थान्तः सावनः । शशिमण्डलाचन्द्रस्य चक्रभ्रमणात् नाक्षत्रः, इति मासाश्चतुर्था मवन्ति ॥ तथाऽऽह मरद्वाजः—

चान्द्रो नाक्षत्रिकः सौरस्सावनश्च तथैव च ।
उक्ताश्चतुर्विधा मासा लोकेषु व्यावहारिकाः ।
चान्द्रं तु चन्द्रार्कसमागमाम्यां नाक्षत्रमाहुश्चाशिमण्डलेन ।
सौरं तु राश्चि प्रति सूर्यगत्या त्रिज्ञहिनं सावनसंज्ञमायीः ॥
इति । मासेषु बहुषु सत्स्विष चतुर्भिरेव व्यवहार इतीह चतुर्णीमभिधानम् । तथा च सूर्यसिद्धानते—

बाह्मं दिव्यं तथा पिड्यं प्राजापत्यं च गौरवम् । सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मासानि वै नव । चतुर्भिर्व्यवहारोऽत्र सौरचान्द्रार्क्षसावनैः।

इति । चतुर्ष्विप च द्वावेव विशिष्टो, तथाचोक्तं— शशिमासश्च सौरश्च द्वी विशेषी विशेषतः । चान्द्रेण व्यवहारोऽत्र सौरेण सह कर्मसु ॥ इति । तद्वचवहारोऽत्रिणोकः—
अभिषेके तु नाक्षत्रं सावनं जननादिषु ।
पित्रये चान्द्रमसं शस्तं सौरं पूर्ते प्रशस्यते ॥

इति । किंच—
यात्रोद्धाहब्रतक्षोरितिथिवर्षविनिर्णयः ।
यर्ववास्तूपवासादि कृतस्त्रं चान्द्रेण गृह्यते ।
सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाञ्दपास्तथा ।
वर्षकालाविधिश्चैव सावनैरेव गृह्यते ।

गौरवेणापि कचिद्वचवहारः, तथाचोक्तं— गुरुवारेण संमूताः षष्टचव्दाः प्रभवादयः॥ इति॥ सङ्कमानाह—

अर्के स्थिरान् विद्याति विष्णुपदाभिधानाः तेभ्यः परांश्च षडशीतिमुखाश्चतस्त्रः । सङ्कान्तयस्त्वजमृगास्यतुलाकुळीरान् द्वेयाः क्रमादुदगवाग्विषुवायनाऽऽख्याः ॥ ५०॥

स्थिरराशीन्—वृषिसिहवृश्चिककुम्मान् अर्के प्रविशति विष्णुप-दाभिघानाश्चतस्तः सङ्कान्तयो भवन्ति । तेम्यः परानुभयराशीन् मिथुनकन्याघनुर्मीनान् विशति षडशीतिमुखाख्याः, मेषमकरतुला-कुळीरान् विशति उदग्दक्षिणविषुवायनाख्याः, मेषतुले विशत्युत्तर-दक्षिणाविषवसंज्ञे, मकरकुळीरौ विशत्युत्तरदक्षिणायनसंज्ञे स्त इत्यर्थः॥ अत्र गुरुः—

> स्थिराख्ये चोभयाख्ये च भानोस्संवेदानं यदा। तदा सङ्कान्तिनाम स्यात् राशौराशौ विषोपमः॥

इति । अत्र श्रीपतिः--

हरिपदं स्थिरभे रविसङ्कर्षं द्वितनुभे षडशीतिमुखं भवेत् । उदगवागयेन मृगकिकणोः कियतुलाधरयोविषुवं स्मृतम् ॥

इति । सङ्कान्तिमध्यकालात्पूर्वतः परतश्च षोडश नाडिकाः पुण्यः कालमाहुः ।

तथाच श्रीपतिः--

, पूर्वतश्च परतश्च सङ्कमात् पुण्यकालवटिकास्तु पोडरा॥

इति । केचिदन्यथाऽङहुः, तथाच ब्रह्मगुप्तः—

मानार्घोत् षष्टिगुणात् मुक्तिहृताझाडिकादिल्रव्धेन ।
राश्यान्तात् प्रागादेः पश्चादन्यत्र सङ्कान्तेः ॥
सङ्कान्तिपुण्यकालो यञ्जव्यं नाडिकादि तु द्विगुणं ।
स्नानजपदानहोमादिकोऽत्र धर्मो विशिष्टफलः ॥
एवं नक्षत्रान्तात् तिथिकरणान्तात् शशिप्रमाणार्घात् ।
षष्टिगुणात् रविशिशिनोर्भुक्तचन्तरल्रव्धविकामिः ॥

इति । गुरुस्ताह-

राशौराशौ तु सूर्यस्य प्रवेशसमयो नृणाप् । निमेषस्यायुनांशस्त्यात् सोऽप्यस्माभिने गण्यते ॥ तथाऽपि समयस्तस्य कथिनो ब्रह्मणा स्वयम् । तस्योपान्तेऽनुपान्ते च समसप्तार्धनादिकाः ॥ इति । एष सङ्कान्तिकालः कत्स्नस्तदादिर्मध्योऽन्तो वा पुण्य इत्यत्र व्यवस्था रह्नेतोका—

मध्ये विषुवित दानं विष्णुपदे दक्षिणायने चादी । षदशीतिमुखेऽतीते तथोदगयने च मूरि फलम् ॥

इति । स्नानश्राद्धादिकर्मणां दिवैवोक्तत्वात् रात्रिसंक्रमे कथीमत्य-त्रोक्तं---

> अर्घरात्रमितिक्रम्य यदा संक्रमते रिवः । तदा द्वितीये दिवसे स्नानदानादि कारयेत् । यद्यर्घरात्र एव स्यात् संपूर्णे संक्रमा रवेः । तदा दिनद्वयं पुण्यं स्नानदानजपादिषु ॥

इति । अत्र व्यवस्था नारदेनोक्ता-

अहस्संक्रमणे क्रत्स्नमहः पुण्यं प्रकीर्तितम् । रात्रौ संक्रमणे मानोः व्यवस्था सर्वेसंक्रमे । सूर्योस्तमयसन्ध्यायां यदि सौन्यायनं मवत् । तदहः पुण्यकालस्स्यात् परतश्चेत परेऽहिन । सूर्यस्योदयसन्ध्यायां यदि यान्यायनं भवेत् । तदोदयाहः पुण्यं स्यात् पूर्वोहः पूर्वतो यदि । प्रागर्वरात्रात् पूर्वाहः शिष्टवद्विष्णुपादयोः । षडभीतिमुखे चैवं परतश्चेत् परेऽहिन ।

यामवशात् फलमुक्तं रख्ठेन-

पूर्वा है पीड्यते राजा मध्याहे च द्विजोत्तमाः । अपराहे तथा वैश्याः शूद्राश्चास्तमये रवेः । प्रदोषे तु पिशाचाश्च अर्धरावे तु राक्षसाः । अर्धरात्रे व्यतीते तु पीड्यन्ते नटनर्तकाः । उषःकाले तु संप्राप्ते हन्यन्ते प्रामिणो जनाः । हन्यन्ते व्रतिनस्तेवें सन्ध्याकाले न संशयः ।

इति । उदिग्विषुवस्य नारदेन विशेष उक्तः— दिवा चेन्मेषसंक्रान्तिरनर्थकलहमदा । रात्रौ सुभिक्षमतुलमुद्ये कलहमदा ।

इति । वारवञ्चात् संक्रान्तिनामानि श्रीपतिनोक्तानि— घोरा रवे। ध्वाङ्क्यमृतद्युतौ च संक्रान्तिरारे च महोदरी स्यात् । मन्दाकिनी के च गुरौ च मन्दा मिश्रा भूगौ राक्षसिकाऽर्कवुत्रे ॥

इति । केचित् नक्षत्रविशेषवशात् घोरादीनाहुः— उत्रः क्षिप्रचरैर्मित्रध्रुवमिश्राख्यदारुणैः । ऋक्षैः संक्रान्तिरर्कस्य घोराद्या क्रमशो भवेत् ।

इति । तत्फलं चोक्तं भरद्वाजेन—
जनो नन्दित मन्दायां मन्दाकिन्यां रसक्षयः ।
ध्वाङ्क्यां प्रभूतसिल्लं घोरायां शस्त्रजं भयम् ॥
महोदरी च राजधी राक्षसी चाप्यनिष्ठकृत् ।
मिश्रा विमिश्रा फलदा सङ्कान्तीनां फलं स्मृतम् ॥

इति । तिथ्यर्धिवशेषाच फलमुक्तम्— किंस्तुझकौलवचतुष्पदनागपाक्ष-ष्वेतेषु तिष्टति सुभिक्षकृदंशुमाली । मातङ्गगर्दभकयोश्शयितोऽर्वहार्नि कुर्यात्रिविष्ट इतरेषु समं विधत्ते ॥

इति । रछस्त्वाह—

नागे चतुष्पदे तैतिले च रागितस्य सङ्क्रमो भानोः । सङ्क्रमणमुत्थितस्य तु राकुने किंस्तुझकौलवयोः । विष्टिबनविणनबालवगरेषु भानोभविनिविष्टस्य । वृष्टचर्यादेरेवं ऋमशोऽनिष्टेष्टमध्यमता ॥

- इति । जन्मादितारावशात् फलमुक्तं नारदेन— सङ्कान्तौ ग्रहणर्क्षं वा जन्मन्युभयपार्श्वयोः । नेष्टं ततर्ष्यद्रमु ग्रुमं पर्यायाच्च पुनःपुनः । हानिर्नृद्धिः स्थानहानिस्तत्न्नार्सिर्भारमीः क्रमात् ॥
- इति । सङ्क्रान्तिदोषे तत्परिहारश्चोक्तः । तिलोपरि लिलेचकं तित्कोणं तिशूलकम् । तत्र हेम विनिक्षिण्य दद्याद्दोषापनुक्तये ॥
- इति । अत्र हवीषि चोक्तानि —
 अतं च पायसं भक्ष्यमपूर्णं च पयो दिषि ।
 चित्रालगुडमध्वाज्यराकरा भवतो(?) हिवः ॥
 तिलान् काञ्चनशूलं च नववस्त्रं च दक्षिणाम् ।
 संक्रान्तिदोषसंभूतदोषनाराय दापयेत ॥

तन्मन्त्रं चाऽऽहुः— सर्वेग्रहर्सतारेश सर्वेश त्वं हि भास्कर । संक्रान्तिशूल्दोषं में निवारय दिवाकर ॥

इति । हेमाद्रौ — तत्र कूरसमायुक्ते चाद्यामं जायते ध्रुवम् । शुभग्रहयुते शूळे त्वशुभत्वं न विद्यते ॥ षट्के कूरसमायुक्ते सत्फळं च न विद्यते ।

इति । तत्रैव शुभचन्द्रताराबलवज्ञात् शुभाशुभं वाच्यमित्युक्तं नारदेन—
याद्दशेनेन्दुना भानोस्सङ्कान्तिस्ताद्दशं फलम् ।
ततः प्राप्नोति तद्राशौ जीतांशोस्साध्वसाधु तत् ।
ताराबलेन शीतांशुः तद्वलाद्दलवान् रविः ।
बली सङ्कममाणस्तद्वलात् खेटा बलान्विताः ॥

इति । इह केचिद्यनांश्वसिह्तस्यैवार्कस्य राश्यन्तरसङ्क्रमात् सङ्क्रा-न्तिमाहुः । तथाच श्रीपतिः—

> यावद्भिरंशैरयनच्युतिस्स्यात् तद्भागकालेन दिवाकरस्य । च्युतिभवेद्विष्णुपदादिकानां रहस्येपतन्मुनिभिः प्रदिष्टम् ॥

इति। नन्तत्र कथमयन(चलनां)शैरिकस्य विष्णुपदादिसङ्कमाणां च्युति-रिमधीयते, तत्रैव तेषां टक्साम्यसंभवादिति चेत्, स काममस्तु,(१) को दोषः। तत्पातकालसंख्या चाप्यत्रोक्ता—

> उदगयने रातादिवसा याम्ये त्वयने चतुव्वाष्टिम् मेषतुले वोडराभिः रोषा मासा दिनत्रये फलदाः ॥

इति । नारदेन यतो राशौ रवेः प्रवेशः स सङ्क्षम उच्यते । न त्वयननिवृत्त्यादिः । अयनांशैस्तु छायानयननिवृत्त्यादिस्साध्यते । उक्तंच सूर्यसिद्धान्ते— तत्संयुक्ताइहात्क्रान्तिः छायाचरदछादिकम् । स्फुटं दक्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्वये ।

इति । तस्मादसारमेतत् । यत्पुनराहुः— आक्षेत्रपार्धादक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम् ॥

इति । तदौत्पातिकं, यस्मात् काश्यपः— सापीर्घात् दक्षिणं भानोःश्रविष्ठाद्यं तथोत्तरम् । कदाचिदासीद्यनमुत्पातं नैव शास्त्रतः । इति ।

त्यजन्ति पूर्वं च परं च सङ्क्रमात् दिनानि षट् विष्णुपदात्तथाऽयनात् । शुभक्तियायां विषुवात्परं दिनं परं परेभ्यश्च दिनार्धमृत्सृजेत् ॥ ५१॥

विष्णुपदसङ्क्रमदिनादयनसङ्क्रमादिनाच पूर्वं च त्रीणि पश्चाच त्रीणि षट् तिह्नमेकीमिति सप्त दिनानि त्येजेत् ॥ तथाच गार्ग्यः—

> कृतिकायां मखायां च वैशाखे वसुदैवते अर्कस्योभयपार्श्वस्थं मध्ये सप्तदिनं त्यजेत् ।

इति । भरद्वाजोऽपि —
अयनान्तर्गते सूर्ये त्रचहं(१)पूर्वमेव तु
त्रचहं तु निवृत्ते च वर्ज्यास्स्युष्पडहास्तथा ॥

इति । विषुवसङ्कमदिनात्पश्चाद्दिनमेव त्यजेत् । प्राग्दिनत्रयमेव । VIDYAMADAVIAM.

अत्र गुरु:--

पूर्वेऽतीते च विषुवे वज्योध्यष्टिस्तु नाडिकाः कालोऽतिपुण्यस्तत्पूर्वे देवानां वा शुमावहः ॥

इति । ननु गुरुणा विषुवात्प्राग्दिनं वर्ज्यमुक्तं, अत्र तु त्रिदिनः मिति विरुद्धं, नैतदस्ति, गुरुणाऽपि 'मासान्ते तु दिनत्रयम्' इति सामान्येनाभिधानात् । किञ्च 'कालोऽतिपुण्यस्तत्पूर्व' इत्यभिद्धता दिनत्रयं दुष्टं तत्र दिनमितदुष्टं इति विभज्योक्तं भवति । उद्ग्विषु-वसङ्कमात् पश्चाद्पि त्रिदिनं त्याज्यमित्याहुः, तथा च गुरुः—

पूर्वेऽतीते च पूर्वस्य दिनत्रयमशोभनम् ॥

इति । आचार्यस्याप्येतद्भिमतम्, यस्मात् सौराब्दादौ त्रचहं परि हरोदिति वक्ष्यति । अत्र केचिदेवमाहुः—विषुवात् प्राक्पश्चाच त्रचहमिति । तथाच विधिरते—

> तुलायां च किये भानोस्संवेशो विषुवं स्मृतम् । नवत्यो नाडिका वज्यीः पूर्वीश्चेव तथा पराः ॥

इति । नैतत्सारं, प्रागुक्तिनरासात् । षडशीतिमुखसङ्क्रमेम्यः पश्चाहि नार्धं त्यजेत् । प्राक् त्रचहमेव ।

उक्तं च विधिरते —

अन्यराशिषु सङ्कान्तेर्भानोः पूर्वीपरास्त्येजत् । त्रिंशत्त्रित्रशत्तु नाडीश्च शूलदोषा इति स्मृताः ॥

इति । अब्दानाह —

सौरो रवेर्द्वादशमिस्तु मासै-श्चान्द्रैग्तु तैः प्राकृतसंज्ञितोऽन्यः।

जैवस्तु सूर्याद्विषणोदयादिः बुधैस्त्रिघेत्थं परिकाल्पितोऽब्दः ॥ ५२॥

द्वादशिः सौरमासेरेकस्तौराडव्दः, चान्द्रमासैः प्राक्ततोडव्दः । तुशब्दः कदाचिच्चान्द्रैस्त्रयोदशभिवेंकोडव्दस्यादितं द्योतनार्थः ॥ तथाच श्रुयते—

"द्वादश मासास्संवत्सरः, त्रयोदश मासास्संवत्सरः "

इति च । स चाधिमासाऽऽगमे संभवति । सूर्योत् गुरूद्यदि-नमारम्य नैवोऽब्दः । इत्थं त्रिधाऽब्दपरिकल्पना ॥ तथाच भरद्वाजः—

प्राक्ताव्दो गुरोरव्दः सौराव्दास्त्रिविधास्समाः
तेषामादौ तथाऽन्ते च त्रचहं वर्जयेच्छुमम् ।
चान्द्रद्वीदशिममिसैः प्राक्ताब्दः प्रकीर्तितः ।
यदा गुरूदयो मानोर्गुरोरव्दस्तदादितः ॥
इति । जैवाव्दस्त्दाक्जीवस्थितनक्षत्रसंज्ञस्स्यात्, तथाच वराहमिहिरः—

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री । तत्संज्ञो वक्तव्यो वर्षो मासः क्रमेणैव ।

इति। ते तु कार्तिकाद्याः द्वादश, ते पुनः प्रभवाद्याः षष्टिरब्दाः। तेऽपि बार्हस्पत्यमध्यमराशिभोगसंभवाः। तथा च श्रीपतिः—

> इयं हि षाष्टिः परिवत्सराणां बृहस्पतेर्मध्यमराश्चिभोगात् ॥

इति । सूर्यसिद्धान्ते--

द्वादराझा गुरोर्याता भगणा वर्तमानकैः । राशिभिस्सहिताश्शुद्धाः षष्टचा स्युर्विजयादयः ॥

इति । तदानयनमुक्तं च श्रीपितना— राकेन्द्रकालः पृथगाकृतिद्यः राशाङ्कनन्दाऽश्वियुगैस्समेतः ।

शराद्रिवस्विन्दुहृतस्सलब्धः

षष्ट्याप्तरोषः प्रभवादयोऽब्दाः ॥

इति ।

सप्तान्ते रविवत्सरस्य दिवसांस्तान् पश्चपश्चा-न्ययोः प्रारम्भे दिवसत्रयं परिहरेत् तेषां त्रया-णामपि । प्रान्तेऽब्दित्रितयस्य पक्षमपरे त्याज्यं विदुस्सूरयः सप्ताहान्युपरागतोऽथ नृपतिप्राण-प्रयाणात्तथा ॥ ५३॥

सौराब्दस्यान्ते सप्त दिनानि वर्जयेत् । प्राकृतजैवयोरन्ते पश्च-पश्चाहानि । तेषां त्रयाणामप्यब्दानामादौ त्रिदिनं त्यजेत् । अपरे अब्दत्रयस्यान्ते पश्चदश दिनानि त्याज्यमित्याहुः । तथाचोक्तं—

> घटिकाद्वयमृक्षान्ते मासान्ते तु दिनत्रयम् । पक्षान्ते वर्जयेत्पक्षं प्रहणाद्दिनसप्तकम् ॥

इति । गुरुः--

प्षु सर्वेषु कालेषु बहूनां दोषसंमवात् । विषतुल्या भवन्त्येते कालास्तेषु शुभांस्यजेत् ॥ इति । नन्वत्र जैवाब्दस्यान्तयोः जीवबाल्यास्तदोषाम्यां वर्ज्यत्वे सित पुनर्वर्ज्यत्वाभिधानमनर्थकम्, न, तयोमीसोक्तकार्येष्ववर्ज्यत्वात् । वर्षा-द्यन्तदोषौ तेष्विप वर्ज्यविति । अथ कुतः प्राकृताब्दान्ते पञ्चाहं वर्ज्यमुक्तं, यस्मात्—

पञ्चम्याः परतः कृष्णे तिथयः परिवर्जिताः ॥

इत्यनेनैवार्थिसिद्धिः, नैष नियमः, चन्द्रे प्रबले कृष्णे त्रयोद्श्या अपि प्राह्मत्वात् । अत्र त्रयः कल्पाः—वर्षान्ते वर्जयेत्पक्षं इत्याद्यः । सप्तान्ते रिववत्सरस्येति द्वितीयः । त्रचहं वर्जयेदिति तृतीयः । तेषु गुणदोषबल्लाबलं ज्ञात्वा चिकीिषतकर्भगौरवं चिवक्ष्य तद्नुगुणं योजयेत् । तथाच भरद्वाजः—

गुणदोषांश्च संचिन्त्य मत्वा तेषां बलाबलम् । योजयेच यथाकालं ज्ञात्वा तत्कर्मगौरवम् ॥

इति । सर्वत्रायमेव न्यायो य्राह्यः । सूर्थैन्द्रोरुपरागतः सप्ताहानि त्यनेत् । अथराब्दोऽत्र मतान्तरद्योतनार्थः । तथाच विधिरत्ने—

> चन्द्रसूर्योपरागे तु त्रचहं पूर्वे शुभं भवेत् । सप्ताहमशुभं पश्चात् त्रहशूलमिति स्मृतम् ॥

इति । अन्ये त्वाहुः—प्राक् त्र्यहं पश्चात्त्य्यहं तिह्नमेकिमिति सप्ताहा-नीति । तदसत् । यस्मात् गुरुः—

पश्चादेवोपरागेण दोषस्त्यांनैव पूर्वतः
गृहदाहादयो दोषा यथा स्युर्दहनात् परम् ॥
इति । इह गृहदाहादयो दहनात् प्रागप्रतिपत्तेः परमेव स्युः, उपरागस्तु ग्रहणात् प्रागपि प्रतिपत्तेः न तथिति मन्वानाः केचिद्रचवस्थामाहः । तथाच नारदः—

उत्पातग्रहणादूर्धं सप्ताहमखिलग्रहे नाखिले त्रिदिनं नेष्टं नेष्टं तद्रमृतुत्रयम् ॥ ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं पश्चात् ग्रस्तोदये तथा । सन्ध्यायां त्रित्रिदिवसं निक्शेषे सप्तसप्त च ।

इति । नृपतिः—स्वामी, देशाधिपतिषी, अस्य प्राणप्रयाणं—निर्याणं— मरणं, ततः परं तथा—सप्त दिनानि वज्योनि । इह नृपतिग्रहण -मुपछक्षणं, नृपमन्ज्यादीनां । तथाच गुरुः—

नृपो वा नृपमन्त्री वा दैवज्ञो वा महामितः ।
पुरोहितोऽथवा विद्वान् भिषम्वा नृपसेवकः ॥
यज्वा वा वेदविद्विद्वान् यतिवी संयतिन्द्रियः ।
यत्र देशे मृता ग्रामे सप्ताहं वर्जयेच्छुमम् ॥

इति । नृपादिमरणिनिम ताशौचसद्भावात् ताविह्नानि क्रियानहेत्वा-भिधाने गुरुज्ञातिबान्धवाद्याशौचेऽपि यावदाशौचदिनं शुभं वर्ज्ये मिति सिद्धमेव । यस्मात् यात्रायां नारदोक्तं—

> उत्सवीपनयोद्घाहप्रतिष्ठाशौचमूतके । असमाप्ती न कुर्वीत यात्रा मत्यी जिजीविषुः॥

इति । स्मृतिश्र —

'नित्यनैमित्तिकानि निवर्तेरन्'

'इति। नन्वत्र नृपनिधनानिमित्ताशौचमेकाहमेव' 'त्रेते राजनि सज्योतिः' इति स्मृतेः, कथं सप्ताहमिति, त्रजानामराजकत्वेन मङ्गलासंभवादिति ब्रूमः। श्रीदिनान्याह—

क्रमशः सितपक्षपक्षतिप्रमुखा छोचन संयुता-

¹ संयुता तिाथिः

स्तिथीः । अचलैरपहृत्य शिष्यते यदिदं श्रीदिव-सादि सप्तकम् ॥ ५४॥

वर्तमानमासस्य शुक्कप्रतिपदादिगतितथीद्दीम्यां संयोज्य सस-भिरपहृत्य यच्छिष्यते—यावदविशष्टं तद्वस्यमाणं श्रीदिवसादि दिन सप्तकं तावत्सङ्ख्यं दिनं भवतित्यर्थः । तत्रैकिस्मन्नविशष्टे श्रीदिनं, द्वयोः कल्लिदिवसमित्यादि । अताऽऽहुः—

> तिथि च त्रिंशता गुण्य द्वाभ्यां च गुणयेत्ततः । आहत्य पक्षसङ्ख्याभिर्घरण्या संयुतं पुनः । वर्तमानतिथेस्संख्यां संयुज्य गिरिभिर्हरेत् । गिरिस्टब्धफले शेषा योगाः श्रीदिवसादयः ।

इति । एतदेवाचार्येण ध्रुवमिनवन्धेनोक्तं । केचिदन्यथाऽऽहुः— युगवर्षाणि द्वादशिमर्ह्त्वा गतमासैः संयोज्य पुनिस्त्रंशता संगुण्य गतितिथिभिः संमिश्य त्र्यशीत्युत्तरशतेन छित्वा अविश्वष्टेषु षोडशसु श्रीदिवसः, ततो दशसु किछदिनमित्यादि । तथाच मरद्वानः—

दिवसाष्षोडरा पूर्व पङ्तिः पश्चाद्यैकपञ्चादात् । चला।रेंशचैकात्रेंशत् पञ्चेव लोकाष्ट ॥ रूपतुल्यान्युगजातांस्तान(?)तीत्य दिवसगणान् । शेषेषूक्तदिनान्ते श्रीदिवसाद्या भवेयुस्ते ॥ इति । एतचैकैकस्य कतिपयाहस्स्थायिलात् मिथो वैषम्याचाचार्यस्य नामिमतम् ॥

सप्त दिवसास्समृतादश्रीकलिनन्दनकालकार्णे-नामानः । जयवघघनार्णवाख्यास्तेषु च विषमा-द्रशुभास्समा न शुभाः ॥ ५५ ॥ अस्य भरद्वाजवाक्यं व्याख्यानं ---

श्रीदिवसः कलिदिवसोनन्दनदिवसश्च कालकर्णी च । जयदिवसो वधादिवसो धनदिवस श्रेति सप्तेते ।

इति । सप्तमो धनार्णवदिवसः तेषु सप्तदिनेषु विषमाः कलिदिव-साद्यस्त्रयः कष्टाः । अत्र गुरुः—

> श्रीनन्दजयाच्याश्र धनतिद्विसेश्वराः । योगास्तेवे समा होते शुभदा बिलेनो यदि ॥

इति । एषां शुभाशुभनक्षत्रादियोगेन फलाधिक्यं । तथाच मरद्वाजः—

दिवसे तु तथा प्राप्ते नक्षत्रे च शुभाशुमे । द्विगुणं तत्फलं दद्यात् तस्मात्तानुपलक्षयेत् ॥

इति । गुरुशुऋयोरस्तादिपञ्चदोषानाह-

हृइयौ यदाऽहिन जनैर्वजतो यदाऽस्त

मन्योन्यतः स्मरगतौ च यदार्यशुक्तौ । कर्माणि तत्र समये न शुभानि कुर्यात् नैवारभेत श्शिजेऽस्तगते च विद्याम् ॥ ५६ ॥

गुरुशुको यदा अहानि दिवा सूर्यस्यार्थोद्यात्परमधीस्तमया-द्वीत् जनैः पशुपादिभिर्द्धश्या तदा काले शुभकर्माणि न कुर्यात्, तयो-र्यावाद्दिनानि दिवा न्योम्नि दृश्यत्वं तावादिनानि शुभं न कार्यमित्यर्थः ।

ननु रात्रिदृश्यानां तारादीनां दिवा दर्शनस्योत्पातत्वात् तस्य च 'विविधोत्पाताश्च तं वासरं वर्जयेत् इति वक्ष्यमाणत्वात् कुतः पुनिरह पृथ्यवचनं, उच्यते—तत्त्रैकं दिनमेव त्याज्यं, इह तु यावद्दर्शनं दिना-नीति विशेषः । यदा च तौ सूर्यप्रत्यासत्तिवशादस्तं रात्रावण्यदर्शनं व्रजतः ; यदा चान्योन्यतः सप्तमभावगतौ स्तः। तस्मिन् काले शुभानि न कुर्योत् । अत्र गुरुः—-

यदा दिवेव दश्येत जीवशुको नभस्तले तयोरन्यतरो वाऽपि स कालो बहुदोषदः। ततः प्रमृति सप्ताहमेकाहं शुमनाशनम् तयोरालोकनं यावत् शुमं तावद्विक्वेयेत्। दिवा निदर्शनात् पश्चात् प्रत्यहं सप्तसप्त च गुरुशुक्तो यदा मूढं गच्छतो दोषदो तदा। विवाहे विधवा नारी द्विजनमानि वटोर्मृतिः चूडाकृते शिशोर्मृत्युः स्थापने देशनाशनं। यदा जीवसितो चक्रे परस्परमुदीक्षितो सप्तमस्थो तदा दोषो मूढलाद्वितिरच्यते॥

इति । तथा बुधेऽस्तर्गते विद्यामेव नारमेत, उक्तं च विद्याप्रकरणे गुरुणा—

' शंसन्ति ज्ञेडप्यनस्तरे '

इति । विवाहादिकं काममारमेतेत्यवधारणार्थः ।

प्राक्पश्चादुदितं रवेभृगुसुतं बालं वदन्ति क-मात् बाणदीपदिनानि वृद्धमनयोरस्ते दिनव्य-त्ययात्। उदाहे क्रमशोऽङ्गनापुरुषयोहिन्ता स एवं गुरुस्सर्वेषां च तयोदिशशुस्थविरता विदेषिणी क-र्मणां ॥ ५७॥ वक्रत्वान्मन्दया गत्या मूर्यविप्रकर्षवशात् प्राच्यां दिश्युदितं दृश्यत्वमापत्रं; तथा निसर्गात् शीव्यया गत्या प्रतीच्यां दिशि दृश्यत्वं प्राप्तं शुक्कं क्रमण बाणद्वीपदिनानि प्राच्यामुद्यदिनोद्यात् परं पञ्च दिनानि प्रतीच्यामुद्यदिनात्परं सप्त दिनानि बालं। तथा अनयोः प्राक्प्रतीच्योरन्ते मूर्यसन्निकर्षवशात् दृश्यत्वे सित दिनन्यत्ययात् वृद्धं वदन्ति, प्राच्यामस्तदिनोद्याद्वीक् सप्त दिनानि प्रतीच्यामस्तदिनास्तमयाद्वीक् पञ्च दिनानीत्यर्थः । ब्राह्मान्दान्ति स्त त्राच्यामस्तदिनास्तमयाद्वीक् पञ्च दिनानीत्यर्थः । ब्राह्मान्दान्द्वाहे स शुक्रो बालो वधूहन्ता, वृद्धो वरहन्ता, गुरुरप्येवं -शुक्रवत् बालो वृद्धश्च, तस्य तु वक्रास्तोद्याभावात् प्रच्यामेवोद्यः प्रतीच्यामेवास्तम् । तत्रोदयदिनोदयात् परं पञ्चदिनानि बाल्यं, अस्तदिनास्तम्याद्वीक् पञ्चाहानि वृद्धत्वं । अत्र गुरुः—

प्राक्पश्चादुदितः शुक्तः पश्चसप्तदिनं शिशुः । विपरीतं तयोरस्ते वृद्धस्तद्वत् गुरोरपि ॥

इति । अन्ये त्वन्यथाऽऽहुः । तथाच नारदः-पश्चात्प्रागुदितः शुक्रो दर्शात्रिदिवसं शिशुः ।
वृद्धः पञ्चदिनं पक्षं गुरुः पक्षं तु सर्वतः ॥

इति । अन्ये च--

वृद्धश्जुकः पति हन्ति वालश्जुकस्तु योषितं। एवमेवामरगुरुः विद्यारम्भे गुरुस्तथा ॥

इति । बुधशुक्रयोः रात्रिसन्दर्शने शुभं कार्ये । यथाऽऽह भरद्वाजः—

> मूढस्थे तु गुरौ शुक्ते शुभकर्म न कारयेत् । यदा सम्यक्त्रदृश्येते आरभेत हि तौ यदि ॥

इति । विद्यारम्भे बुधस्यापि बालवृद्धत्वे शुक्रवत् द्रष्टव्ये । ननु——

नोत्पातपरित्यक्तः कदाचिद्पि चन्द्रजो ब्रजत्युद्यम् ॥ इति बुघोद्ये उत्पातश्श्रूयते, स कयं विद्यारम्भे शस्यत इति, उच्यते — सत्यमुत्पात एव, तथाऽपि तस्य नानिष्टक्रच्वनियमः, किं तर्हि, सर्वत्र प्रक्त्यन्यत्वमात्रविधिरेव । तथाहि बुबोद्ये प्राक् वृद्धि-मतां हानिः, हानिमतां वृद्धिः, सुखिनां दुःखं, दुःखिनां सुखं, तस्मात् नायमन्योत्पातसदृश इत्यदोषः ॥ स्रहेवेधमाह— •

हरिणाननस्य दशमांशकत-स्त्यजतु(त) प्रहान् स्फुटतमानिखळान् । अवशिष्टमत्र शुभकर्मणि त-द्रहवेधदुष्टमिति मं विसृजेत् ॥ ५८॥

मकरस्य दशमांशकात् स्फुटांस्तात्काछिकानकीदिकानष्टौ य्र-हान् विशोध्यात्र यदविशष्टं नक्षत्रं तत् तस्य यहस्य वेधेन दुष्ट मिति यतस्तस्मात् तच्छुभकमाणि विस्रजेत्। एतदुक्तं भवति भरद्वाजवाक्येन—

> स्थाप्येकविंशं नक्षत्रं तत्तद्रहगतिं त्यजेत् । शिष्टं तद्रहवेधस्स्यात् तत्तचारममादितः ॥ ग्रह्वेधयुते चर्ते याकृतं तदिनश्यति । कूराणां तु हरेत्प्राणान् सौम्यानां कर्मनाशकृत् ॥

इति । नन्विहैकविश्विमिम्यो ग्रहभुक्तनक्षत्राणि सनाडिकानि विशाध्या-वशिष्टसमसङ्ख्यनक्षत्रमश्विन्यादिकं श्रविद्धमित्यम्यधायि, भरद्वाजेन तु तत्तद्गहचारक्षीदिकमुक्तमिति महद्वैषम्यम्, अत्रोच्यते, नाद्यं, मुनिमत-विरुद्धत्वात् । नापि द्वितीयं, सर्वत्रैकाविशस्य मस्यैव वेधप्रसङ्गात्, अयमत्रार्थः--मकरस्य दशमांशात् सूर्यदिन् केत्वन्तानष्टौ ग्रहान् युग-पद्विशोध्य शेषे(षो) यावत्संख्यं नक्षत्रं तत्तद्गहचारक्षीत् तावत्संख्यं तत्तद्गहविद्धमिति । तथाच गुरुः —

मकरे द्राभागेम्यस्तर्वत्रहगति खजेत् ।
शिष्टं तद्रहवेषस्यात् तद्रहस्यर्शमादितः ॥
काळरात्रोऽर्कवेषस्यात् कुजवेषोऽस्तरात्रकः ।
बुषवेषोऽनुरात्रस्यात् गुरुवेषोऽप्यरात्रकः ॥
शुक्रवेषोऽप्रिरात्रस्यात् शनिवेषोऽन्यरात्रकः ।
राह्वेषो विषाख्यस्यात् केतुवेषोऽङ्गरात्रकः ।
प्रह्वेषास्तथा ख्यातास्तर्वरात्रं वदन्त्यसत् ॥

इति । वास्तुनिषिद्धवेधमाह—

धातृश्रीनाथरुद्रानिल्राविवरुणाः काल्मित्रा-र्यमाम्भोबुध्रचार्याद्दशक्रपूषाश्र्वचिहिनर्ऋतिमखा-स्त्वाष्ट्रवस्वेन्दवानि । भाष्ट्रेन्द्राप्ट्रक्षविश्वादितिदहन-भगाः पश्रवर्गास्स्युरेषां वर्ग तद्वेधदुष्टं त्यजतु गृह-विधौ (कृतौ) सप्रहा यत्र ताराः॥५९॥

प्राचीः सप्त तिरश्चीः पश्च रेखाः लिखेत्, चतुर्वैदातिप-दानि स्युः । तत्प्राञ्चेखाग्राणि विषमाणि परस्परंसंयोज्यार्धचन्द्रा-कारं पदत्रयं स्यात् । एतिमदं सप्तिविद्यातिपदं चक्कं तत्र मरु-त्कोणादिपदेष्वारोहावरोहक्रमेणाश्विन्यादीनि भानि तेषु तत्स्थग्र- हांश्च विन्यसेत् । तत्र तिर्यक्पङ्किपञ्चकगतास्ताराः परस्परं विध्य-न्तीति ता एवाह । चतुर्थपङ्कौ रोहिण्याद्याप्षट्, द्वितीयपङ्कौ भरण्याद्याः, आद्यपक्ङ्कचां पूर्वाभद्राद्याप्षट् ताराः, एविममे पञ्चवर्गा-स्तारागणाः स्युः, एषां मध्ये यद्वर्गतारायां स्रहस्तिष्ठति स तद्वर्गं विध्यति, गृहविधौ-वास्तुकर्भणि तन्नक्षत्रगणं त्यजेत् । यथोक्तं—

> विधुविम्बत्रयं न्यस्य दीर्घरेखाश्रतुः क्षिपेत् । अश्विन्यादीनि ऋक्षाणि तत्र संस्थापयेत्क्रमात् ॥ उद्योगं शुभदं प्रोक्तं तिर्यग्रेखासु निन्दितम् । ग्रहस्य चन्द्ररेखायां संस्थितं गृहकणिकम् ॥

तत्फलं च —

भानौ राजमयं कुजेऽनलमयं पुत्रसयश्चन्द्रजे जीवे दैत्यगुरौ च हानिरुदिता द्रव्यसयसमूर्यजे । रोगं भोगिपतौ च मन्दिरविधौ चन्द्रेण साकं स्थिते तद्वर्गक्षेगते फलं निगमितं केतौ च केचिद्रजम् ॥

सप्तरालाका चक्रमाह--

रेखास्सप्त लिखेहजूरिममुखं तिर्यत् च ता-स्तावती रेखांग्रेष्वभिजिद्युताः प्रतिलिखेदग्रद्या-दिताराः क्रमात् । यत्रैकामधितिष्ठतः प्रतिमुखं साकं शलाकां प्रहेदशीतांशुस्तु शुभैश्व शूलमु-दितं तत्पापसंज्ञं महत् ॥ ६०॥

अभिमूखं ऋजूस्सप्तरेखास्तिर्यंक्च सप्त लिखेत्, तद्रेखाग्रेषु ऐशा-

न्यादिष्वभिजिद्युनाः कृतिकाद्यास्ताराः क्रमात् सप्तसस विलिख्य सूर्योदिग्रहान् स्वस्वचारभेषु न्यसेत् । अस्मिश्रके यत्र नक्षेत्रे च-न्द्रोऽन्यो ग्रहश्र हो परस्परं प्रतिमुखी भूलेकां शलाकां श्रयतः तन्नक्षत्रं शुभेश्रन्द्रप्रतिमुखस्थेश्शूलम् । पापैर्महाशूलमित्युक्तं, मुनिभि-रिति शेषः । गुरुः—

> प्राचीस्सप्त लिखेंद्रेखाः उदीर्चीस्सप्त विन्यसेत् । तदन्तेऽनलभाद्या स्स्युस्तारा यस्यां प्रहास्स्थिताः ॥ तद्रेखाभिमुखी तारा महादेषवती तदा । महाशूलं च शूलं च पापसाम्याह्रयेप्रहैः ॥ महाशूले कृतं कर्म विनाशमिष्णच्छति । शूले कर्तुर्विनाशाय तेषु चन्द्रो यदि स्थितः ॥

इति । ब्रह्मयामळे--

स्थिरकार्यं विवाहं च प्रवेशं गमनं तथा । न कुर्याच्छूळथोगेऽस्मिन् जातस्यात्र मृतिभवेत् ॥

विवाहे विशेषफल्रमुक्तं—

रिवविधे तु वैधव्यं भौमवेधे प्रजासयः । अन्नपानाव्ययोऽप्येवं बुधवेधादुदीरितः ॥ देवाचार्यस्य वेधेन नित्यं भवति दुःखिता । शूलवेधे पति त्यक्ता ब्रजेत ललना ध्रुवम ॥ श्रोनेश्चरस्य वेधेन प्रख्याता गणिका भवेत् ।

इति । अत्रिणा प्रथमार्तविवशेषफलमुक्तं— सप्तरेखाकते विद्धे सूर्याद्यैसप्तिभिविधौ । द्रिद्रा म्रियते वन्ध्या श्रीमती पुत्रिणी क्रमात् ॥ मृता स्त्री कुलटा साध्वी नारी तु प्रथमातेवे ।

इति । इन्दोर्थाविति मे प्रहो भवति भात्तस्मात् पुनस्ताविति स्यादिन्दुर्थोदि तत्र शूलमुदितं पापप्रहेस्तन्महत् ॥ इति कचित्पाठः । चन्द्राक्षाद्यावित नक्षत्रे प्रहास्तिष्ठति पुनस्त-स्मात् प्रहचारक्षीत् तावित चन्द्रश्चेत् तत्र शूलमुदितं । तथाच मर्वसिद्धौ —

ऋमोत्क्रमेण गणिते नक्षत्रे प्रतिदिक्तिश्वेत । यत्र प्रहेन्दुमे तुल्ये तत्र शूलं विपत्प्रदम् ॥

इति । अधिमासानाह--

संसर्पो रिवमासि दर्शयुगळं पूर्णाहयं वाऽस्ति चेत् तिस्मिन् पौष्णयुगं भवेद्यदि विदुस्तं केचिदं-हस्पतिम् । सूर्येन्द्रोर्यदि मध्ययोगयुगळं मध्येऽर्क-मध्योत्थयोः सङ्कान्त्यो रिवमास आद्य इति वा मासास्त्रयो निन्दिताः ॥ ६ १ ॥

एकस्मिन् स्फुटार्कमासे मध्ये सङ्गान्तिद्वयं अमावास्याद्वयं पूर्णिमाद्वयं वाऽस्तिचेत् स मासः संसर्पस्यात् । यदि तस्मिन्नर्कमासे रेवतीद्वयं स्यात् तं मासमंहस्पतिमाहुः । संसर्पहस्पती केचिद्वदन्ति तथाच—

पूर्णोह्यस्यं स्याद्यदि चार्कमासे संसर्पमासः कथितो विरिश्चिना । तत्रैव पौष्णद्वयसात्रिपति चांहस्पतिस्तद्युगळे च निन्द्यम् ॥ इति । अन्ये त्वन्यथाऽऽहः---

रविमासि दर्शेद्धयसद्भावस्तु चन्द्ररविसङ्क्रमाभावात् सिद्ध्यतीति। संसर्पे इति रविमासि दर्शाभावें।ऽहस्पतिरिति। तथाचात्रिः—

> यास्मन् मासि त सङ्गान्तिस्सङ्गान्तिद्वयमेव वा । मलमासस्स विज्ञेयस्सर्वकर्मबहिष्कतः ग

इति । अथार्कस्य मध्यभोगोत्पन्नयोर्द्वयो राशिसङ्कान्त्योर्मध्ये यद्यर्केन्दुः मध्यसमान्निताद्वयं स्यात् सोऽधिमासः, तथाचात्रिः—

रविमध्यमसङ्कान्लोर्द्शे मध्येऽधिमासकः ॥

इति । एष मध्योऽधिमासः सौरसौम्ययोर्युगपत्त्रवृत्तिमारम्य ऋमेणोप-चीयमानं तयोरन्तरमधिमासस्स्यात् । तच्च—

> अब्दे। द्वावष्टमासाश्च षोडशाहास्त्रिनाडिकाः । विनाज्यः पञ्चपञ्चाशद्यिमासान्तरं स्फुटम् ॥

इति अत्रिणोक्तं । यद्यप्ययमधिको गणितेनाप्यानीतः, तथाऽपि न व्यवहारयोग्यः मध्यत्वात् गृहमध्यवत् ।

यथा ब्रह्मगुप्तः—

यस्मान मध्यमसमः प्रतिदिवसं दृश्येते प्रहो भगणे । तस्मात् दृक्तुरुयकरं वक्ष्ये मध्यस्फुटीकरणम् ॥

इति । रफुटस्तु रफुटार्केन्दुजन्यत्वाद्वचावहारिकः ब्रह्स्फुटवादिति । तमाह—आद्य इति वा। आद्या एकस्मिन् रफुटार्कमासे रफुटपुष्पवन्तस-विकर्पातिरायः सम्भवद्दीद्वयसात्रिपातजन्मा संसर्पमास एवाधिमासः इति—सौरचान्द्रद्वयसमााप्तिरित्यर्थः।

उक्तंच-

मेषादिस्थे सावितारे यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः । चैत्राद्यस्स ज्ञेयः पूर्णेद्वन्द्वेऽधिमासोऽन्यः ॥

इति । वाशब्दो मतान्तरद्योतनार्थः । तथा सौरे चान्द्रद्वयारम्भश्चेत् अधिमास इति केचित् । तथा च रछः—

> यदा शशी याति गभस्तिमण्डलं दिवाकरस्सङ्क्षमणं च यात्यनु । विवाहयज्ञोत्सवनाशहेतुक स्तदाऽधिमासः कथितस्स्वयंभुवा ॥

इति । अत्र दर्शान्तेऽर्कसंक्रमः, तस्मात्परतः प्रतिपदुत्तरसंकः मादवीगेव प्रतिपदिति चान्द्रद्वायारम्भः । भरद्वानश्च—

सिनीवाछीमतिऋम्य यदा संक्रमते रविः । अधिमासस्स विज्ञेयस्सवैकर्ममु गर्हितः॥

इति ।

दष्टचन्द्रा सिनीवाली कुहूर्गूढ्विशाकरा ॥ इति । अन्ये तु मन्वते ; द्विश्चन्द्रोदयश्चेद्धिमास इति । तथा च स्मृत्यन्तरे—

> एकस्मिन् सौरमासे तु यदेन्दोरुदयो द्विधा। अधिमासस्सुटः शोकः कर्मणां निष्फलप्रदः॥

इति वचनात स्फुटाधिमास एव व्यावहारिक इत्यत एवेदं प्राह्म मिति । यथोक्तमाग्नेयस्मृतौ— हिवारमुद्यो यावदिन्दोस्सीरे भवेतदा । अधिमासस्स विज्ञेयस्स्वकर्मबहिष्कृतः ॥ मूढो(घी)त्पत्तिभवेदिन्दोर्द्शन्ते मूक्ष्मरूपिणः । दर्शप्रतिपदादो तु किश्चिह्नचक्तिभीविष्यति ॥

इति । केचित् पूर्णिमान्तसंयोगनक्षत्रनाम्नां मासानां ह्योस्साम्यं यदा-स्यात् पूर्वस्तयोरिधमास इति ।

उक्तं सूर्यसिद्धानते—

नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः । कार्तिकादिपु संयोगे कत्तिकादि द्वयं द्वयम् ॥ अन्स्योपानस्यो पञ्चमश्च तिभा मासास्त्रयस्मृताः । वैशाखादिषु कृष्णे च योगः पञ्चदशे तिथौ ॥

इति । सटरायोः प्रथमातिक्रमकारणाभावात् प्रथम एवाधिमासः । अन्ये तु त्रिचान्द्रस्प्रक्सीरोऽधिमास इति वदन्ति । यथा —

दर्शप्रतिपद्धिवरद्वितयं राविमासि यत्र संभवति । अधिमासो भवति तदा यदा च चन्द्रार्कयोगयुगळमपि ॥

इति । अयमत्र स्फुटतमाधिमासो युक्तश्च, यस्मादेकैकस्मिन् सौरे एकैकश्चान्द्रसमाप्यते अन्यः प्रारम्यते, अत्र तु द्वौ समाप्येते द्वावारम्येते इत्येकोऽधिकः । तथाहि—दर्शान्ते प्राक्तनस्समाप्तः, प्रति पदादावन्यः प्रारच्यः, स च दर्शान्ते पूर्णः, पुनः प्रतिपदादावृत्तरो मास आरच्य इति । किञ्चायमधिमासः सौरचान्द्रान्तरजः, स च सौरे चान्द्रत्रयसंस्पर्शादापति । यथा—चान्द्रसावनान्तरजमवमदिनं साबतदिने चान्द्रदिनत्रयसंस्पर्शन।त् पति तद्वद्यामित्यनुमितः चान्द्रद्वरसमाप्तिरिधमान इत्यादीन्येकदेशलक्षणानि । यस्मात् तत्र

चान्द्रह्मयारम्भो नास्ति, अन्यत्र न चान्द्रह्मसमाप्तिः । तृतीयेऽपि हिश्चनद्रक्षयो नास्ति, चतुर्थे मासनामज्ञानमात्रं कथं चित्संपद्यते । अत्र त्रिचानद्रमासस्पर्शि सर्वमेतत्संपन्नमिति । संसर्पाहस्पत्यिकसंज्ञानस्योऽधिमासा निन्दिताइशुमकर्मस्वित्यर्थः । तथाच गुरुः—

संसर्पाहरपती मासी अधिमासश्च निन्दिताः।

इति । अधिमासश्चेति पृथग्वचनं ताभ्यां तस्यातिदोषत्वरुयापनार्थम् । तथाचोक्तं—

अधिमासो ऽतिनिन्द्यस्त्यात् संसपाँहस्पती तथा । इति । यदा पुनरेकस्मिन् वत्सरे तेषु द्वौ त्रयो वा भवेयुः तत्राधि-मास एव निन्दाः, गणितेनाप्यधिकत्वात् ॥ केतूदयादीनाह—

यस्मित्रस्तमयन्ति वक्रगमनं यत्रारभन्ते प्रहा यस्मिन् देवनृपोत्सवादिविविघोत्पाताश्च तं वासरं। निर्घातेऽथ सघूमकेतुजनने सोल्कानिपाते दिशां दाहे भूचलने प्रहप्रहरणे चाह्नां त्रयं वर्जयेत्॥६२

ग्रहाः कुनादयः पश्च यस्मिन् दिने अस्तं सूर्यप्रत्यासतिवशाददरीनं गच्छिन्तिः यत्र वक्रगमनं स्वचारेण भगणे प्राद्धाखं
गच्छन्तः स्वोच्चाकर्षणवशात् प्रतिकूलगितमारभन्ते यस्मिन्नेव देवानां नृपाणां चोत्सवादिः प्रवर्ततेः यस्मिन् विविधा उत्पाताश्च
संभवन्ति तद्दिनमेकं वर्जयेत्, अत्र भरद्वानः—

प्रहाणां पञ्चसङ्खचानां येनाह्वा अस्तमयः कृतः । तद्हः परिहर्तव्यं वक्रारम्भे दिनं तथा ॥ तिहिनावगमाय कतदृवसंस्कारं शीघ्रश्रहमुद्यकालिकं मन्द्रग्रहम् स्तकालिकं कत्या तद्कीन्तरांशान् प्राक् स्वोदयन पश्चादस्तोद्येन हत्वा त्रिभिदशौर्तिवभव्य आसप्तंशेषु सप्तद्शत्रयोदशौकाद्शनवपः अदशिमतेषु कुनाद्योऽस्तं गच्छिन्ति। तदूनाधिकेष्वनुपाताहिनं साध्यम्। तथा दिनावगमनाय प्रहाणां स्वमध्यमस्फुटयोरन्तरमाधिकत्य स्फुटा-न्मध्यन्यूने तत्स्थशीघ्रमध्यमे विशोध्याधिके संयोज्य तस्मात् स्फुटे त्यक्ते शिष्टाश्चत्वारो राशयः पूर्णाश्चेद्वक्रमारभन्ते। देवानामुत्सवाः—प्रतिष्ठास्नपनपर्वोदयः, नृपाणामिषेषककुमारोद्यविवाहाद्याः, आदिः शब्देन ग्रामदेशजात्थादीनामुत्सवा गृह्यन्ते। गुरुः—

यास्मिन् ग्रामे नृपाणां वा देवानां वोत्सवा भवेत् ।
स दिनोऽवश्यतस्त्याज्यास्त्रिदिनं यन्न शक्यते ।
अहानि यानि तान्यत्र देवानामुत्सवस्य च ।
तानि सर्वाणि वज्यांनि यथोक्तं शुभकर्ममु ।

अत्र केचिदेवमाहुः— यिसम् काले ग्रहा अस्तं गतवद्वचोित्र न टश्यन्ते स कालस्त्याज्यः । यस्मात् भरद्वाजः—

शुक्राकेन्दुबुधाचायीश्रेष्ठाः पश्च महाग्रहाः ।
तेष्वेकोऽप्यम्बरे दृष्टो नास्ति चेन्नास्ति तद्गुणः ।
व्यपेतदोषे विमलाम्बरे च
सूर्येन्दुताराग्रहसम्भवांश्च ।
तदा समीक्ष्य प्रयतेत नित्यं
समृद्धिमारोग्यनयाभयार्थी ।

इति । यत्र काले वक्रगमनं-प्रतिकूलस्थितिमानिष्टस्थानास्थिति ग्रहाः कुर्वन्ति तं कालं वर्जधेत्, यस्मात् भरद्वाजः—

> यदा प्रहाणां वैषम्यं सर्वारम्भं परित्यजेत् । कार्यविश्वकरा ह्येते कृतमप्यत्र नश्यति ॥

इति । यद्वा ग्रहाः यदा अस्तं निष्प्रभतां गच्छन्ति तदा वक्र-गमनं गतिविकारमारमन्ते, तदा शुभं वर्जयेत् । यस्मात् भरद्वाजः—

> अविकारगतिच्छायाः प्रसन्ना स्स्युर्येदा प्रहाः । आरभेत शुभं नित्यं विकारे नैव कारयेत् । प्रहादन्यन्न विद्येत लोकेषु हि शुभाशुभे ।

तथा--

कालावस्था प्रहावस्था ज्ञातव्याः पूर्वमेत्र तु । वर्णाचारप्रभाश्चेव प्रहनक्षत्रयोस्तथा ॥

इति । अत्र देवोत्सवो यज्ञादिः, नृपोत्सवः सङ्ग्रामादिः। तथाच यस्मिन् काले देशे वा जना अस्तं क्षयं यान्ति तदा वक्र-गमनं गतिस्तम्भं यान्ति । तथा च भरद्वाजः—

> राजदुर्भिक्षयोगादिभयस्थे नैव कारयेत् । यस्मिन् जनपदे य्रामे स्वगृहे वा विश्वेषतः ॥ देशे प्रसन्ने कर्तैव्यं व्यपेतमयहेतुकं । मङ्गल्यानि च कार्याणि प्रतिसाधुजनेर्वृतैः ॥

इति । उत्पातास्त्रिविधाः मौमा आन्तरिक्षा दिव्याश्च । तत्र भूमि-गता अनिप्रज्वलनादयो भौमाः । ध्वजादिस्त्रपा व्योन्नि दृश्यमाना आकारविशेषाः आन्तरिक्षाः । नक्षत्रसंस्थिता उल्काकारास्तेज-स्स्कन्धाः दिव्याः । यथाह नारदः— दिव्यान्तिरिसभौमास्ते शुभाशुभफलप्रदाः ध्वनाश्च शस्त्रभवनरथवृक्षगजोपमाः । स्तम्भशूलशिखाकाराः आन्तिरिक्षाः प्रकीर्तिताः नक्षत्रसंस्थिता दिव्या भौमा ये भुविसंस्थिताः ॥ एते (हि) विभिन्नस्त्रपास्स्युजनतूनामशुभाय मे ।

गर्गश्च ---

स्वभीनुकेतुनक्षत्रग्रहताराकंचनद्रजम् ।
दिवि चोत्पद्यते यच तिह्व्यमिति कीर्तितम् ।
वाय्वभ्रसन्ध्यादिग्दाहपरिवेषतमां च ।
खपुरं चेन्द्रचापं च तिद्वद्यादन्तिरक्षजम् ।
भूमावुत्पद्यते यच स्थावरं वाऽथ जङ्गमम् ।
तदैकदेशिकं भीममुत्पातं परिचक्षते ।

किश्च देवप्रतिमादीनामानिमित्तचळनजिएताद्यनिम्नज्वळनं त रूणामनृतुप्रसवः । शुष्कविरोहः पतितोत्थानादि रक्तवर्षणमकाळ-वृष्टिनेदीनां रक्तप्रवाहादि रात्राविन्द्रधनुद्रेशनं अनिमहततूर्यनादादि प्रतिसूर्यदर्शनं पश्चमहवकारम्भ इत्यादि । यदन्यत्—प्रकृत्यन्यत्वं स सर्वे उत्पात इति तद्दर्शने तिहनमेकमवश्यं वर्जयेत् । सप्तः रात्रमित्यन्ये । तथाच नारदः—

> अकालजासु नृपतिर्विद्युज्जननवृष्टिषु । उत्पातेषु त्रिरूपेषु सप्तरात्रं न च व्रजेत् ॥

इति । केचित् महोत्पाताः चूमकेत्वाद्यस्तेषु विशेषमाह—निर्घात इति । विविधगतीनां पातानामन्योन्याभिघातात् सशब्दं भूमौ पातो निर्घातः । उक्तं च वराहमिहिरेण— पवनः पत्रनाभिहतो गगनाद्वनौ यदा समापति । निर्घातो भवति तदा

इति । धूमसमवर्णश्चापाकारो व्योम्नि दृश्यमानः केतुर्धूमकेतुः । तथाच नारदः---

अनिष्टदो धूमकेतुः राक्रचापस्य सन्निमः। द्विस्त्रिश्चतुद्दशूलरूपः स च राज्यान्तकृतदा ॥

इति । नरापचारसंकुद्धदेवताविसृष्टास्त्रमथी चतुर्हस्तदीर्घाऽल्पपुच्छा बृहच्छिराः निपतन्ती तेजेारूपा उल्का नाम, उक्तं च—

> उल्का शिरासि विशाला निपतन्ती वर्धते प्रतनुपुच्छा । दीर्घा च भवति परुषा भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ॥

इति । अकस्मादिशिज्वालावलीढानामिव धूमाकुलितजनदृष्टीनां दिशां दर्शनं दिग्दाहः। अकस्माच भुवस्स्वस्थानाचलनं भूवलनं, अत्र नारदः—

> भूभारभिन्ननागेन्द्रशीर्षविश्रामसंभवः । भूकम्पस्सोऽपि जगतामशुभाय भवेत्तदा ॥

त्रहाणां स्वस्व कक्ष्यावशात् उपर्थेधश्चरतामप्यतिदूरतया हब्बण्डल-साम्यादेककक्ष्यास्हढानामिव हश्यमानानां राश्येशकालकृतक्षेत्रप्रदेश-साम्याद्याऽन्योन्ययोगसंपादिनी हाष्टिस्तद्रह्युद्धम् । उक्तंच वराहमि-हिरेण—

> दिवसकरेणास्तमयः समागमश्र्यीतरश्मिसहितानां । कुसुतादीनां युद्धं निगद्येतऽन्योन्ययुक्तानाम् ॥ वियति चरतां ग्रहाणामुपर्युपर्यात्ममार्गसंस्थानाम् ।

अतिदूरादृग्विषये समतामिव संप्रयातानाम् ॥ आसन्नक्रमयोगात् भेदेखिखांशुमर्दनात् सङ्कैः । युद्धं चतुष्प्रकारं पराशराद्येर्मुनिभिरुक्तम् ॥

इति । एतानि निर्वाता ोनि यस्मिन् दिने भवन्ति तदिनादि दिनत्रयं वर्जयेत् । अत्र गुरुः—

> दिग्दोह वा महादाहपातनेऽनम्बुवर्षणे । उल्कापाते महापाते महाद्यानिनिपातने । अनभ्रेऽद्यानिपाते च भूकम्पपरिवेषयोः । ग्रामोपान्ते शिवाशब्दे दुनिमित्ते न शोभनम् । केतवो यत्र दृश्यन्ते स भूमा वा पृथग्दिशः । युद्धे ग्रहाणामन्यान्यं निर्वाते वा कुकम्पने । महापातयुते काले सप्तरात्रं शुभं त्यनेत् ॥

इति । इह यत्सप्तरात्रं शुभं त्यजेदित्युक्तं तत् बहूत्पातसिन्नपाते वेदितन्यम् । यदा त्वेकेको महोत्पातस्तदा त्रिदिनमेव । यदा पुनरेकेकः क्षुद्रोत्पातस्तदा तदिनमेव त्याज्यमिति न्यवस्था । किञ्चाय
मप्यर्थ उक्तः—निर्घातो महानदृष्टनिमित्तरशन्दः । धूमो नाम—
दिग्नयप्यदृष्टभूलश्रक्षुनिरोधकः । केतवे दृश्यमानरूपा ग्रहा, तेषां
प्रादुर्भावश्रेत् तदुपलन्धिदिनानि परं च दिनं विषयत्। यथाऽऽह गुरुः—

केतवो धूमसंयुक्ता दृश्यन्ते यदिवा निारी । तस्या दर्शनतः पश्चात् तदाऽप्यशुभदोषदाः ॥

इति । अत्र केचिद्धा द्योतिताश्च सन्ति, यथा-यिसम् ग्रहा अस्तं रिमक्षयं गच्छन्ति नत्तस्त्रग्रमिति । अत्र गुरुः-- वृश्चिके दश भागा स्स्युर्कस्यास्मिन् शनेश्चरः(?)।

मकरेऽत्यष्टिभागाश्च सोमस्य स्वामिनोदिताः॥

कुम्भेऽष्टो भूमिपुत्रस्य गुरोरिस्श्च तदिदुः।

कन्यायां नव भागास्स्युभृगुजस्य च चान्द्रिणः॥

राहोरिष्टो क्रिये केतिर्थमे भागास्त्रयोदशः।

एवं ब्रह्मणां सर्वेषां राशिभागाः क्रमात् स्थिराः॥

स्वात्स्वादुक्तस्थिरात् बोध्याः स्वस्वशुद्धप्रदाः क्रमात्।

शिष्टा राश्यंशिक्षास्स्युस्स्वकीया ब्रहरश्मयः॥

स्वकीया रश्मयस्तिषां स्वतुल्यफलदास्स्मृताः।

बेल्रैहीनयुतस्यापि रश्मयोऽप्यवलावलाः॥

इति। तथा यस्य जनमर्क्षे प्रहास्तमयवऋयुद्धकेतूद्योत्पातादयो भवन्ति स च शुभकर्म वर्जयेत् ॥ तथा च भरद्वाजः—

> वक्रं वाऽस्तमयं युद्धं राहुकेत्वोश्च दर्शनं । यस्य यस्मिस्तु नक्षत्रे प्रवर्तन्ते तथाविधाः । सर्वोरम्मं परित्यज्य तूष्णीमासीत बुद्धिमान् ।

तथा यस्मिन्नक्षत्रे कुनादयोऽस्तमयं वक्रगति कुनीन्त यत्र वा उत्पाता दृश्यन्ते तन्नक्षत्रं ग्रुभकर्मसु त्यनेत् । तथा विक्रमसिंहः —

यद्भुक्तं शिनराहुमूर्यरुधिरविद्धं च यचाचला कम्पोल्कापतनोपरागपरिधिप्रायेरपायेहितम् । भुक्तं यद्विधुनाऽन्यथा विरहितज्योतिर्प्रहास्तोद्यो यस्मिन् यद्गह्वऋपीडितमुडु क्लिष्टं तदाचक्षते ।

इति । केचिदेवं योजयन्ति-गृह्यन्त इति ग्रहाः पदार्थाः यस्मिन् दिने अस्तमयन्ति दुर्दिनत्वादस्तमिता इवाद्यश्या भवान्ते, ऋजुजन्मयोनयोऽ-

प्यस्पष्टलक्ष्यत्वात् वकं कौटिन्यं अयन्ते, यास्मिन् राजोत्पाताद्या विविधा उत्पाताश्च तिद्दनं कृत्स्नं देवनृपोत्सवादिप्रतिष्ठाभिषेकादि शुभं वर्जयेत् । कालाध्वनोरत्यन्तसंयोग इति द्वितीया । अत्र भरद्वानः—

> निर्मलं सुदिनं प्राहुर्दुर्दिनं कलुषाम्बरम् । सुदिने तिद्धं कर्तव्यं दुर्दिने चैव वर्जयेत् ॥ चन्द्रादित्यगतं तेजस्तत्कालं न तमेवृतम् । न कुर्याद्यावतस्तावत् दीप्तिदोषहतो भवेत् ॥

इति । केतुजनने केतूद्ये शुभं वर्जयेत् । तथाच गुरुः— केतवो राहुजारशून्यास्त्रयस्त्रिशचरन्ति च । रवेट्यये द्वितीये च षोडशात्यष्टिसङ्ख्यकाः । एतेषामुद्ये राशो छतं सर्वं विनश्यति ।

भरद्वाजोऽपि--

दुविज्ञेया हि बहवो प्रहास्सूर्येण सञ्चराः ।

ग्रहः—

तस्मात्सूयीन्वितं क्षेत्रमतीव भयदं भवेत् ॥ षण्णवत्यप्यहो भानुयविचराति कालतः । महादोषप्रदः कालः शुभान्यत्र विवर्जयेत् ॥

इति । सर्वसिद्धौ—
अर्कात् कर्माम्बुगा राशी राहुकेतू विनिन्दितौ ।
न चेत्रत्राभिनिद्योगा युतिदृष्टिस्तु वा सतः ॥

इति । वेधमाह-

देदे कोणादिकोणं प्रतिलिखतु पुरः पश्चपश्चाथ तिर्यप्रेखास्तास्वीज्ञाकोणप्रभृतिषु गणयेत् भा-

नि वह्नचादिकानि । यश्मिन्निन्दुर्ग्रहश्च प्रतिमुख-मयतः साकमेकां इालाकां नक्षतं वेषदुष्टं परिण-यनविधौ तद्विपत्तिं विषत्ते ॥ ६३॥

कोणाहिकोणं प्रति—ईशानान्निर्ऋतिं अमेर्वायुं प्रति हेहे रेखे ऋज्वयो, पुरः पञ्च तिर्यक् , तिरश्चीः पञ्चरेखा लिखतु । अथ तद्ने-खांग्रष्वीशकोणे दक्षिणकोणाग्रमारम्य कृतिकादीनि सामिजिद्गानि विन्यस्य स्वचारर्क्षेषु ग्रहांश्च न्यस्य गणयेत् । यस्मिन् ऋले चन्द्र-स्मूर्याद्यन्यो ग्रहश्चोमौ परस्परामिमुखौ भूत्वा युगपदेकां शलाकां यदि प्रामुतः तन्नक्षत्रं तद्गहवेधेन दुष्टं परिणयनविधौ विवाहे विपात्तं करोति श्रीपतिः—

> उर्ध्वा रेखाः पश्च तिर्यक् स्थिताश्च द्वेद्वे रेखाकोणयोरत्र चके । अग्ने घिष्णयं शम्भुकोणे द्वितीयां नाड्यां न्यस्यत्तान्यतस्सामिनिन्ति । चक्ने तस्मिन्नेकरेखास्थितेन ज्ञेपं विद्धं नूनमृक्षं ग्रहेण । कैश्चित्तस्मिन् शोच्यते पादवेषो भानां चिन्त्यश्चात्र छत्तानिपातः ॥

ग्रहवशात् फलमुक्तं सुबोधे—

एतस्त्रिव चके प्रतिमुखभगताः शर्वरशिस्य नेष्टाः शुक्रज्ञाचार्यपातारूणकुजशनयः कुर्युरेते क्रमेण । वेश्यां वन्ध्यामपुत्रां मरणभयमथो मर्तृनाशं प्रजानाम् नाशं मःनापहानिं परिणयनविधौ वेषदोषाः प्रदिष्टाः ॥ इति । अत्रैकां रालाकां नक्षत्रपादवज्ञात् जतुर्घा विभज्याद्यन्तयोर्भेध्ययोश्च पादयोः वेधं केचिदाहुः, तथा च रक्षः—

> बालाग्रेणापि यथा दक्चलने वेधकस्य लिक्षात्रात् । खलु सिद्ध्यते न सोऽर्थस्तद्देदेधोऽपि विश्रष्टः । तस्माद्देधरालाकां कृत्वा पाँदेश्चतुर्भिरन्वेष्यम् । पादात्पादान्तारेतो अष्टरालाकस्त्वसमवेधस्त्यात् । विध्यदिग्धेन इतस्य पत्रिणा मृगस्य मांसं शुभदं क्षताद्दते । यथा तथाऽत्राप्युदुपाद एव

प्रदूषितोऽन्यत्त्रितयं शुभावहम् ॥

इति । अत्र व्यवस्था नारदेनोक्ता— पाद एव शुभैर्विद्धे निन्दितेनैव ¹ कुत्स्त्रमम् । क्रूरविद्धयुनं विष्णयं निश्विलं नैव पादतः ॥

इति । लत्तादे वर्क का श्रीपतिना—

क्रक्षं द्वादशमुष्णरहिमरवनी सूनुस्तृतीयं गुरुष्पष्ठं चाष्टममके नश्च पुरतो हन्ति स्फुटं लत्त्या ।

पश्चात् सप्तमामिन्दुनश्च नवमं राहुस्सितः पश्चमम्
द्वाविश्वं परिपूर्णमूर्तिरुदुपः सन्ताडयेकेतरः ॥

इति । तत्फलं चोक्तं ब्रह्मयामळे-

सूर्येण पुत्रनाशस्त्यात कुनराहुशनैश्चरैः।
मरणं जीवलत्तायां बन्धुनाशो भवेत् प्रिये।
शुक्रेण कार्यविभ्रंशमनधेश्शाशिसूनुना।
चन्द्रेण सुमहांस्त्रासो लत्ताचातफलं स्मृतम् ॥

¹ निन्यते नैव इति स्यात्

इति । स्यादेतत् — कस्यायं लतापात इति, न दिनर्शस्य चन्द्राद्धा-विश्वास्यासंभवात् । नापि जन्मर्शस्य, अप्रकृतत्वात् । यस्मात् श्रीपतिः —

कूरैर्मुक्तं कूरगन्तव्यमृशं

कूराकान्तं कूरविद्धं च नेष्टम् । यचोत्पातेर्भेोमदिव्यान्तरिक्षे-

र्जुष्टं तहत् कूरलताहतं च ॥

इति । उच्यते—दिनर्कस्यैय शुक्कान्तचन्द्राद्वाविशस्य संभवात् । उक्तं हि—' डाविशं परिपूर्णमूर्तिः ' इति । ईशकोणे द्वितायां नाडीमार-म्यायचादिमानि न्यसेदित्यत्र को नियम इत्याशङ्कच तत्परिहरन् अभि-निद्वित्तमाचछे—

पादश्चतुर्थः किल विश्वभस्य नाड्यश्च विष्णोः प्रथमाश्चतस्मः । उक्ताऽभिजिद्धक्तिरितीयमस्यां स्थितो प्रहो विष्यति घातृताराम् ॥ ६४॥

उत्तराषाढस्यान्यः पादः श्रवणस्याद्यपादादिगताश्चतः विका इत्येषैकोनविद्यातिनाड्यात्मिकाऽमिनिन्नक्षत्रमुक्तिः । अत्र स्थितो ग्रहो ग्रहस्थितां रोहिणीं विध्यति । तथाच श्रीपतिः—

> अन्तः पादो वैश्वदेवाह्वयस्य विष्णोधिष्ण्यस्याद्यनाज्यश्चतस्तः । उक्ता मुक्तिश्चाभिजित्संज्ञकस्य तत्स्थे खेटे रोहिणीनां च वेघः।

इति । यत्पुनरात्रिणोक्तं—

श्रोणादौ विश्वभान्त्ये स्थादमिनित् घटिकाष्टकम् ।

इति, तत्तु सिद्धान्तो कनसत्रभुक्तिविरुद्धवात् नाभिषतम् । ननु सप्त-विश्वतिनक्षत्राणि, किमिद्मभिनित्राम, भूबलशास्त्रेषु शलाकानामा-दिचक्रसिद्धचर्थमभिनित्रामाष्टाविशं नक्षत्रं वदन्ति । तथाच भरद्वाजः—

आषाढात्परतस्तद्वत् श्रवणात्पूर्वमेव तु । अभिजिन्नाम नक्षत्रं जून्यागतं विराजते ॥ इति । कतिषुचित्कियासु ग्रहशुद्धिनियमस्थानान्याह—

इच्छन्त्यग्रहतां समरादिषु पदेषूदाहाविप्रक्रिया-चौळप्राशनमौळिवन्धनगृहप्रारम्भणेषु क्रमात् । छप्रस्थारस्मरसंस्थिताश्च नियमात् पापाः फलं कर्मणां सर्वेषां क्षपयन्ति जीवशशमृत्पापाश्च रन्ध्रस्थिताः ॥ ६५॥

उद्वाहो-विवाहः विप्रक्रिया, उपनीतिः । चौळं-शुरकर्म, प्राशनं शिशूनां प्रथमात्रभुक्तिः । मौलिबन्धनं राज्ञां पष्टबन्धः । गृहपारम्मणं नगरप्रामगृहादिवास्तुनिवेशः । एतपु षट्सु स्थानेप्वप्रहतां प्रहाणाम-मावं इच्छन्ति । तथा विवाहे सप्तमस्थाने शुभाशुभानामनवस्थितिरेष्ट-व्येत्यादि । उक्तं च—

षाण्णां त्रयोगसमये खलु सप्तमादिः स्थानेषु षट्सु परिशुद्धिमुशन्ति सन्तः । वैवाहिकोपनयचौळनवात्रमुक्तिः मौळिकियाभवनवृद्धि (ति) रिति क्रमेण । इति । केचित् गृहारम्भाद्येकादशकर्ममु द्वितीयादिस्थानेषु शुद्धि-माहुः। तथा च विधिरते—

> गृहारम्भे त्रवेशे च वस्त्राणां घारणे तथा । यात्रीषधविवाहेषु क्षरे कर्णस्य वेधने ॥ भोजने पितृकार्थे च गर्भन्यासे तथैव च । धनस्थानाद्वचयान्तेषु शुद्धिमित्थं विदुर्बुधाः॥

इति । लग्नस्थाः सप्तमस्थाश्च पापाः सामान्येन सर्वशुभकर्मणां फलम्बश्यं नाशयन्ति, तस्मात् तङ्घमसप्तमयोः पापानामनवस्थानं सर्वकर्मस्विष्टमित्यर्थः । अत्र भरद्वाजः—

लग्ने द्वितीये जामित्रे निधने क्रूरसंयुते । तल्लग्नं क्रूरमित्याहुरन्यथा तु शुभं भवेत् ॥

इति । तथा च जीवचनद्रौ पापाश्चाष्टमस्थाः सर्वकर्मफलनाशकतः।

लप्राष्ठमस्ये कुजे महादोषः इति । नारदः—

कुनाष्टमो महान् दोषो लमादष्टमगे कुने । शुभत्रययुतं लमं त्यनेत्ततुङ्गगे यदि ।

श्रीपतिः--

प्रायश्जुभा न शुभदा निधनव्यवस्था धर्मान्त्यधीनिधनेकन्द्रगताश्च पापाः । सर्वार्थसिद्धिषु शुभो न शशी विल्नेप्र सौम्यान्वितोऽपि न शुभो निधेन विवाहे ॥

इति । चौळादीनां वर्ज्यकालमाह— सर्वारम्भेष्वयनमवदन्नुत्तरं श्रेष्ठमार्या-श्रीळादीनामितरदशुभं कर्मणां वार्षिकाणाम्।

ब्राह्मोद्दाहे त्यजतु चतुरश्चैत्रयुक्तांश्च मासा-नाषाढादींस्तमपि शुभदं मासमूचे वसिष्ठः ॥६६॥

सर्वेषु शुभकमीरम्भेषूत्तरायणं—-मकरादिमासषट्कं श्रेष्ठं इतरत् दक्षि णायनं—कक्योदिमासषट्कं चौळादीनां वर्षसङ्ख्ययोक्तानां कर्मणा-मारम्भेष्वशुभामिति पूर्वाचार्या उक्तवन्तः। तद्दन्येषां मासोक्तानां च मध्यमामित्यर्थसिद्धम्। उक्तं च भरद्वाजेन—

> पूर्वीहे पूर्वपक्षे च अयने चोत्तरे दिवा । निर्मेले दिवसे कुर्यात् शुभकर्माणि नित्यशः । अपरे निन्दितं प्राहुः कालस्याङ्गं विशेषतः । पूजितेष्वेव कर्तव्यं सततं शुभमिच्छता ।

अन्यत्र--

गृहप्रवेशवेवाहप्रतिष्ठामोश्चिवन्धनम् । मखादि मङ्गलं कर्म विधेयं चोत्तरायणे । याम्यायने शुभं कर्म मासप्राधान्यकर्म च ।

इत्यादि । अत्र केचिदाहुः—

तैषादिवोदगयनमाषाढाद् क्षिणं निज्ञा । तैषादिमासद्वन्द्रेषु केचित् षड्तवोऽनदन् ॥

इति । नैतत्सारम् । औत्पातिकत्वात् । सारं तु सूर्यचारकतमेव । यस्मात् भरद्वाजः—

> भास्करे विषुरेखाया उदक्स्थे चोत्तरायणम् । दक्षिणस्थे ततस्सूर्ये विद्यात्तद्दक्षिणायनम् ।

अन्यत्र च-

सौम्यायनं मासषट्कं मृगाद्यं भानुभुक्तितः।

अहस्मुराणां तद्रात्रि कक्यीचं दाक्षिणायनम् ।

इति । श्रीपतिश्र-

मृगादिराशिद्वयमानुभोगात् षट् चर्तवस्स्युश्शिशिरो वसन्तः । श्रीष्मश्च वर्षाश्च शरच तद्वत् हेमन्तनाम्ना कथितस्तु षष्टः ॥

इति । यत्पुनरुक्तं—

माघादिमासौ द्वौद्वौ षडृतवाश्शाशिरादयः।

इति । तचान्द्रविषयम् । तथा च अयूर्वे —

"मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू" इत्यादि । अनयोस्सौर-चान्द्रयोः देशस्थित्या पित्रहाः । अथ ब्राह्मे व्राह्मणानामुक्ते— ब्राह्मे प्राजापत्ये देवे आर्षे च विवाहे चैत्रेण सह आषाढादिमासच तुष्टयं वर्जयेत् । तथाच गुरुः—

> चैत्रे चाषाढपूर्वेषु चतुर्व्विष च वर्जधेत् । अन्ये सुशुभदा मासाः सौरेणेतेऽतिशोभनाः ।

इति । वसिष्ठः आषाढमासमिप शुभदमुक्तवान् । चैत्रश्रावणभाद्रपदा-श्वयुनाश्चरवारो मासा निन्दिताः । तथा च तद्वाक्यं—

> अष्टो मासाः प्रशस्तास्त्युः चत्वारः परिवर्जिताः । प्रशस्तेष्वेव मासेषु विवाहं योजयेद्धुघः । चत्वारो निन्दिता मासाः श्रावणाश्वयुजौ तथा । चैत्रे प्रोष्ठपदे चैव विवाहं नैव योजयेत् ।

इति । पेषः प्रागेव शून्यतानिन्दित इति षडिप निन्दिता इति केचित्, तथा च भरद्वाजः—

> मावफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाश्शुभावहाः । मध्यमः कार्तिको मार्गशीर्षोऽन्ये निन्दिताः परे ।

इति । आषाढाद्याश्चत्वारो निन्दा। इत्याद्यः, त एव संचैत्रा इति द्वितीयः । सचैत्रस्तेषां तृतीयः त एव चाऽऽप्याषाढपौषाश्चत्वार इति चतुर्थः । माघफालगुनाषाढास्त्रयः इति पञ्चमः । एषु पञ्चमु पक्षेषु प्राक्तनैः प्रोक्तेषु अयं श्रेयान् अयं कनीयानित्यूरीकर्तुं दूरीकर्तुं चानुचितम् । यतस्ते सर्वेऽपि महान्तः पृथक्षृथक् शास्त्रप्रणेतारः त्रिकालद्शैन-संपन्नास्सत्संप्रदायाश्च भवन्ति । यस्माद्भृद्धगर्गः—

स्वयं स्वयंभुवा दष्टं चक्षुभूतं द्विजन्मनाम् । वेदाङ्गं ज्योतिषं ब्रह्मसमं वेदैविनिस्सृतम् । मया स्वयंभुवः प्राप्तं क्रियाकालप्रसाधकम् । वेदानामुत्तमं शास्त्रं त्रैलोक्यहितकारकम् । मत्तश्चान्यान् ऋषीन् प्राप्तं पारम्पर्येण पुष्कलम् । तैस्तथा दृष्टिभिभूयो य्रन्थैः स्वैस्स्वैरुदाहृतम् ।

शास्त्रार्थानां परित्यागे महान् प्रत्यवायश्च, यस्माद्गुरुः— -मुहूर्तं वा क्रिया वाऽपि देषिशश्चत्यर्थ एव वा । शास्त्रार्थः कापि न त्याज्यस्त्यक्तोऽतीव प्रमादकृत् । दृष्टादृष्टविरोधश्च वर्गसंपद्विनाशनः । देवैरतो मनुष्येश्च न त्याज्यश्शास्त्रचोदितः ।

तद्परित्यागे कालसङ्कोचात् क्रिया न संपद्येत । एवं स्थिते देशघः मीद्याश्रयणीयम् ।

उक्तं च रहेन-

देशाचारस्तावदादी विचिन्त्यो देशेदेशे या स्थितिः सैव कार्या। लोकद्विष्टं पण्डिता वर्जयन्ते दैवज्ञोऽतो लोकमार्गेण यायात ।

इति । गुरुश्च-

अर्थप्रकरणाख्यादिलिङ्गोवित्यादिभिः सदा । देशकालादिभिश्चैव वाक्यान्तरविरोधतः । अपवादादिभिनीक्यैः सामान्येन विशेषतः । सर्वत्र सर्वानालोच्य ज्ञानी कालं समादिशेत् !

इति । अत्र बाह्योद्वाह इति विशेषाभिषानात् गान्धर्वादयः सर्वदा कार्या इत्यर्थसिद्धम् । तथा च नारदः —

> प्राजापत्यबाह्यदैविववाहा आर्षसंयुताः । उक्तकालेषु कर्तव्याश्यत्वारः फलदायकाः । गान्धवीसुरपैशाचराक्षसाख्यास्तु सर्वदा ॥

इति । केचित् ज्येष्ठमासाद्यगर्भयोर्वधूवरयोर्भङ्गलं वर्जयन्ति । तथाच श्रीपतिः—

> जन्ममासि न तु जन्मभे तथा नैव जन्मदिवसेऽपि कारयेत् । आद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि न तु जातु मङ्गलम् ॥

इति । जन्ममासेऽपि केचिद्वर्जयन्ति । तथाचात्रिः— जन्मभे जन्मदिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत् । मौक्षचुद्वाहप्रतिष्ठादि मासि तान् कुर्वते परे । ज्येष्ठो ज्येष्ठगाति विद्यात् स्नानं चौळं गृहं त्येनेत् । इति । केचित् भानोराद्वीप्रवेशमारम्य आस्वात्यन्तात् दशर्केषु वर्जयन्ति । तथा च नारदः—

न कदाचिह्रार्सेषु भानोराद्गीप्रवेशनात् ।
विवाहं देवतानां च प्रतिष्ठां चोपनायनम् ।
न गुरौ सिंहराशिस्थे सिंहांशकगतेऽपि वा ।
इति । रात्रिवर्ज्यानाह—

कृषिं बीजवापं नरेन्द्राभिषेकं सविद्यागृहारम्भदेवप्रतिष्ठाः । क्रियास्सप्त चौळादिका नामधेय-क्रियां च क्षपायां न कुर्वान्ति सन्तः ॥ ६७॥

विद्यारम्भगृहारम्भदेवप्रतिष्ठासहिताः चौळादिकाः चौळोपन-यने होतृशुक्तियोपनिषद्गोदानादिचलारि व्रतानि समावर्तनं चेति सप्त क्रियाः नामिक्रयां चैतानि रूष्यादीनि चतुर्दश कर्माणि रात्रौ वर्जयन्ति । दिवैव कुर्यादित्यर्थः । तथाचात्रिः—

नाम पुंसवनं क्षौरं बीजोप्तिस्थापनादिकम् ।
राजाभिषेकं स्थानाद्यं विद्यारम्भोपनायनम् ।
गृहप्रवेशसीमन्तश्राद्धाद्याश्च दिवोदिताः ।
एतेषां सविता देवः शेषास्सीम्या निशास्विप ।
इति । व्रतान्यपि सवितृर्वेवत्वात् दिवोक्तानि । भरद्वाजः—
बीजानां वापनं क्षौरं वास्तुकर्म कृषि तथा ।

रात्री तुन च कुर्वीत कुर्वन् क्षिप्रं विनश्यति । गुरु:-नवानां नगरादीनां प्रवेशं करीवेधनम् । राजाभिषेकं शर्वेयीमृपनीतिं न कारयेत् । सम्ध्ययोनिशि निर्वेशं प्रवेशं क्षुरकर्म च। (?)वज्यांस्स्युस्तुैलाभ्यङ्गं विशेषतः। इति । सन्ध्यात्रये सर्वकर्माणि वर्नयेदित्यन्ये । तथा भरद्वाजः---मध्याहे चार्घरात्रे च सन्ध्ययोरुभयोरि । कुर्यात्र शुभकर्माणि सिद्धिकामस्तु नित्यशः। पैञ्चाची पश्चिमा सन्ध्या प्राक्सन्ध्या रौद्रिकोच्यते । राक्षसी चार्षरात्री स्यात् बाह्मी मध्याह उच्यते । सन्ध्याप्रमाणं नारदेनोक्तं-स्यादधीस्तमयात् सन्ध्या घटिकात्रयसम्मिता । तथैवाघाँदयात् प्रातघीटकात्रयसंमिता । इति । सन्ध्या मुहूर्तभात्रेऽपीति पौराणिकाः । तथा च विष्णुपुराणे — सन्ध्या मुहूर्तमात्रा स्यात् हासवृद्धचोश्च सा स्पृता । इति । अर्धरात्रो घटीद्वयमेव । यस्मादुक्तं-" महानिशा हे घटिके " इति । मध्याह्नोऽपि घटिकाह्रयमेव, स चामिनित्काछत्वात् यात्रादौ शुभ इति वश्यति । कृष्यादिकान्यत्र चतुर्दशैवं कर्माण्यनुक्तानि निशासु यानि । सकर्णवेधेषु गृहप्रवेश-यक्तेषु तेष्वष्टमशुद्धिमाहुः ॥ ६८ ॥

कृष्यादिनामान्तानि यानि रात्रावनुक्तानि चतुर्देश कर्माणि तेषु कर्णवेषे गृहत्रवेशे च लगादष्टमस्थाने शुद्धिमाहुः। यद्यपि कर्णवेष-गृहप्रवेशावपि शास्त्रेषु रात्रावनुक्तौ तथाऽपीह कृष्यादिकानि चतुर्दे-शेति परिगणनात् पुनः पाठः । षडशीतिमुखदोषमाह—

चरादिकेषु त्रिषु मन्दिरेषु भागान् कमात् है। छशराङ्कसंख्यान् । रवौ प्रसन्ने सति दुष्प्रधर्षे वदन्ति दोषं षडशीतिवक्त्रम् ॥ ६९ ॥

चरस्थिरोभयेषु त्रिषु राशिषु सप्तमपञ्चमनवमान् भागान् रवौ प्राप्ते षडशीतिमुखं नाम दारुणं दोषं प्रवदन्ति । एतदुक्तं भवति भरद्वोजन—

चरेषु सप्तमं भागं स्थिरेष्विप च पश्चमम् । उभये नवमं चैव षडशीतिमुखं विदुः । षडशीतिमुखं वित्रेशेत् । अन्यथा चेद्विनश्यन्ति षडशीतिगते रवी ॥

इति । गण्डान्तमाह--

राशितिथितारकाणां गण्डान्तं जलघिविषय-नवमान्ते । तत्रोभयतो नाड्यः शशिगुणशरसंमि-तास्त्याच्याः ॥ ७० ॥ राशीनां जलध्यन्ते कर्क्यन्ते वृश्चिकान्ते मीनान्ते, तिथीनां विषयान्ते पश्चम्यन्ते दशम्यन्ते पश्चदश्यन्ते च, नक्षत्राणां नवमान्ते आश्चेषान्ते ज्येष्ठान्ते रेवत्यन्ते च गण्डान्तं भवति । तत्रोभयपार्श्वयोन् रेकत्रिपश्चनाड्यस्त्याज्याः । राशीनामेकस्तिथीनां तिस्त्रस्तिस्तः नक्षन्त्राणां पश्चपञ्चति । अन्ये त्वाहुः—राशीनां घटिकार्धं तिथीनां घटिका-द्वयं भानं पादेतं घटिकाचतुष्कं तथा च नारदः—

कुळीरिंसहयोश्चापकीटयोमींनमेषयोः ।
गण्डान्तमन्तराळं स्यात् चिटकार्धं मृतिप्रदम् ।
पूर्णोनन्दाख्ययोस्तिथ्योस्सन्धिनीडीद्वयं तथा ।
गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ।
सार्पेन्द्रयोष्णभेष्वन्त्यषेडियांशा भसन्धयः ।
तद्यभेष्वाद्यपादपादं गण्डान्तसंज्ञितम् ।

इति । अपरे च-

सार्पेन्द्रपोष्णिधिष्णयानां अन्त्यपादा मसन्धयः। तद्रममेषु पादार्घं गण्डान्तं नाम कीर्स्थते।

इति । तिथ्यृक्षादिसन्धयश्च वर्ज्याः । अत्र भरद्वाजः—

अशुभास्सर्पनक्षत्रसन्धयस्तिथिजास्तथा । देद्वे तयोस्तु संयोगे वज्योस्सप्तार्धनाडिकाः । अवमाधिकमासान्ते वर्षस्यान्ते तथैव च । राश्यन्ते च मुहूर्तान्ते वर्जयेत प्रयंततः । तिथिसन्धिद्वयं यस्मिन् दिने म्यानदिनं त्योजत् ।

यच्छ्रीपतिः--

यत्रैकं स्प्रशति तिथिद्वधावसानं वारश्चेदःमादिनं तदुक्तमार्थेः । यत्स्पर्शात् मवति तिथित्रयस्य चाह्नः स्त्रिद्यस्पृक् पुनर्शय तद्वयं च नेष्टम् ।

गुरुश्र-

यदा चावमरात्राणि हरयन्ते तेषु शोभनम् । वर्जयेदाहतो विद्वान् छते तत्कुछनाशनम् ॥

इति । लमदोषानाह-

लग्नस्य दोषांस्त्यज पापहष्टि पापोद्यं चोभयपापतां च । अपापलाभारिसहोत्थतां च शुभग्रहानाश्चितकेन्द्रतां च ॥ ७१ ॥

लयस्य दोषान् अनुक्तराशित्रिभ गादीन् वक्ष्यमाणान् पाप-दृष्ट्यादीन् त्यजेति पुरस्थं पृच्छकं प्रत्युक्तिः । अनुक्तराश्यादयः तक्तत्कर्माभिहितराश्यादिभ्योऽन्ये, यथा—कन्यातुलायुग्मराश्यंशा वि-वाह उक्ताः । तदन्ये अनुक्ताः । तथा च नारदः—

> तुलामिथुनकन्यांशा धनुरन्त्यांशकाः खलु । अप्यन्यांशाः शुभतरा यदि वर्गोत्तभाद्वयाः । अन्ये नदांशाः न त्राह्माः यतस्ते कुनवांशकाः । कुनवांशकलभं यत त्याज्यं सर्वभुणान्वितम् ।

इति गार्थः-

धनुर जवृषकन्याः स्वाद्यहकाणगृष्ठाः घटहरितुलयुग्मा मध्यहकाणगृष्ठाः । मकरसषकुळीरा वृश्चिकान्या वराहा यदि भवति विलयं जीवितान्तं करोति ॥

अत्र।

मेषांशादिषु वृश्चचादिविषलग्राः प्रकीर्तिताः । विषलग्रे कृतं कर्म कुलक्षयकरं भवेत् ।

इति । तथा पापदष्टचादीन् पश्च लग्नदेशांस्यन । पापदिष्टः पूर्णा न्यूना वा त्राह्मा । तत्फलं च तादशं । यद्गरद्वानः—

> द्वितीयं द्वाद्शं षष्ठं निधनं च विना ग्रहाः। निरीक्षन्ते यथा सारं सर्वे दृष्टिवशात् फलम्॥

इति । पापोद्यश्च राश्यन्तरस्थोऽपि लग्नमावाद्यन्तान्तर्गतो प्राह्यः । यद्वराहिमिहिरः—

लग्नस्य ? येंऽशाऽम्युदितो ग्रहो य-

स्तेषु स्थितो लग्नफलं स इते ॥

इति। उभयपापता—पापद्वयाश्रितोभयपार्श्वतं कर्तरी इति। यद्गुरुः—

वक्रचारौ यदा पायौ द्वितीये द्वादशे स्थितो । तदा कर्तरियोगस्स्यात् महादायो विलयतः ।

अत्र द्वितीयस्थश्चेद्यं दोषः, तदैव लग्नस्य पापद्वयस्याभिमुख्यतं-भवात्। यन्नारदः---

लग्नाभिमुखयोः पापग्रह्योरुभयस्थयोः ।

इति । लाभारिसहोत्येषु पापा न सन्तीति अपापलामारिसहोत्यं एकादशषठतृतीयेषु पापानामन्वस्थानं, शुभग्रहेरनाश्रितानि केन्द्रा-ण्यस्येति शुभग्रहानाश्रितकेन्द्रं केन्द्रे शुभानवस्थानं, एतःन् वर्ज-यत् । अत्र भरद्वाजः—

> अकर्मण्यं बलाद्धीनं शुभस्येक्षणवार्जितम् । लग्नं तत्परिहतेव्यं पाँपेर्दष्टयुतं तथा ॥

यनारदः-

कर्तरीदोषदुष्टं यत् छमं तत्परिवर्जयेत् । अपि सोम्यमहेर्युक्तं गुणैस्तर्वेस्समान्वतम् । सर्वे पापमहा १ एकादशस्थिताः । तेष्वेकोऽपि यदि श्रेष्ठः छमं निन्दितमन्यथा ।

भरहाजः--

केन्द्रैश्चतुभिस्सपन्नेहीरासंपादेहोच्यते । एकत्राशुभसंयुक्ते नेष्टं श्रेष्ठं शुभैर्युते ।

इति । चन्द्रदोषानाह—

रिप्फाऽऽवासं पापवर्गप्रवेशं
वेळावस्थाकर्मणां चाशुभत्वम् ।
प्रोक्तांश्चेन्दोः सर्वकार्येषु जद्यात्
ज्ञातं चान्यदुर्त्तिमित्तं क्षुताद्यम् ॥ ७२ ॥

इन्दोः रिष्फा SSवासं—द्वादशभावस्थितं, पापवर्गनवेशं, वेलादी-नामशुभत्वं, प्रागुक्तान् पापदृष्टचादिश्च पश्च एनान् दोषान् सर्व-शुभकार्येषु वर्नथेत्। नारदः— षडष्टारिष्फिंग चन्द्रे तक्क्षयं देशपसंयुतम् । तक्क्षयं वर्जयेद्यहादिष जीवसितान्वितम् । उच्चगे नीचगे वाऽिष मित्रगे शत्रुराशिगे । अपि सर्वगुणोपेतं दम्पत्योमेरणप्रदम् । दम्पत्योरिति कर्तुरुपलक्षणं यदन्य— षष्ठगोऽष्टमगोऽन्त्यस्थः सपापः पापवीक्षितः । दुष्कमी षड्वियश्चनद्वो मृत्युदः पक्षयोद्वेयोः ।

इति । अत्रिः—

शुभदृष्टगुर्या वर्गा वर्ज्यसें व्विष शोभनाः । पापोद्यद्यका)गाणाद्याः शोकर्से व्विष वर्जिताः । स्वांशस्थो दोषदः कृष्णे चन्द्रस्त्वोच्चे सिते शुभः ।

अन्यैवर्चातिरेकेणोक्तं-

अंशकवशेन चन्द्राद्विद्यः फलं सर्वेकार्येषु । तस्मात् शुभांशसिहिते सर्वारम्भः प्रयोक्तव्यः ।

इति । नीचरात्रंशादयश्च वर्षाः । तथाच भरद्वाजः—
प्रशस्तपक्षे शुभदे राशाङ्के
नीचारिनाशांशकवार्जिते च ।
शुभग्नेहवींययुतैस्तु दृष्टे
चन्द्रे भवेन् श्रेष्ठनमं विलयम् ।
उपचयराशों चन्द्रयुक्तक्षेत्रेऽपि विश्रहे
शुभैईष्टे शुभांशस्ये शुभदस्तवैकर्मसु
सौन्यग्रहयोर्मध्ये यदि तिष्ठेत् शुभः शशी ।

पापप्रहाद्विनिर्मुक्तः चन्द्रस्त्याद्वृद्धिद्स्तथा ।

इति ।

चन्द्रलग्रयोरष्टमषष्ठराश्यंशा वज्यीः, यदुक्तं तेनैव— नेधनं मरणं षष्ठे व्याधिश्रनद्रस्थितांशके । चन्द्रस्यैव तथा लग्नात् जन्मराशेस्तथैव च ।

इति ।

शिष्टं लग्नस्योक्तं चन्द्रस्थापि समं । यस्मात्तयोर।विशेषफ-लत्वम्, तथाच भरद्वाजः—

> चन्द्रयुक्तं शरीरं स्यात् लयं तु प्राणसंज्ञकम् । तावुभैः संपरीक्यैव कर्तव्यं श्रेय इच्छता ।

इति । तथा ¹तात्कालिकं ज्ञातं क्षुताद्यं दुर्ति।मित्तं च त्यजेत् यदुक्तं— सर्वेतः क्षुतमशोभनं विदुः

इति । आद्यशब्देन छिन्धि छिन्धि इत्यादि दुरुक्तं गृह्यते । अन्यच कल्रहाक्रोऽऽशरोदनादि त्यनेत् । यथोक्तं नारदेन यात्राध्याये—

> महिषास्त्रभुनां युद्धे कळत्रकछहागमे । वस्त्रादेः स्वछने क्रोधे दुरुके न वनत् क्षुते ।

इति । परस्तादेतत्त्रपञ्चायिष्यामः।

वेलादीनामशुमलं वर्ज्यमित्युक्तं कास्ता वेलाद्या इत्यत्राह—

इन्द्रोर्छिप्ताः खाऽऽकाशेभै-हृत्वा शिष्टास्तिथ्यमचङ्कैः ।

¹ तत्काले. ² वेला इ.

हत्वा खाभ्रश्रोत्रैर्लब्धाः कर्मावस्थावेला ज्ञेयाः ॥ ७३ ॥

तात्कालिकस्य राश्यादिभिस्सह कलीकृतस्येन्दोः लिप्ताः अष्टा-भिश्वातैविभाज्य लब्बानि गतभानि स्युः, अविशिष्टकलापिण्डं राशी-कृत्य प्रथमं पञ्चद्वाभिः द्वितीयं त्रिभिः तृतीयं नवभिः हत्वा विश्वात्या प्रथक्ष्यक् विभज्यासा सैका कर्मावस्थावेला भवन्ति॥

काऽत्रोपपत्तिः—एकस्मित्तसत्ते षष्टिकर्माणि द्वादशावस्थाः षट्त्रिश्रोहेलाः एते (ते गु) गुणकाराः एकनसत्रलिक्षाः, अष्टशतानि भाग हारः । तेषामपवर्तनात् तिथ्यप्रचङ्काः गुणकाराः विश्वतिर्भागहाः राश्च भवन्ति । तत्रेदं पुनस्त्रेराशिकं—पूर्णनसत्रतिथिलिक्षाःभिः कि-यत्यश्चन्द्वित्रयदयः भुक्तिलिक्षःभिः कि-यत्य इत्यत्र तिथ्यप्रचङ्काः फलराशयः विश्वतिः प्रमाणराशिः भुक्तिलिक्षाः इच्छाराशिः लब्धाः श्चन्द्वित्रयदयः । अत्राऽऽर्थभटः—

त्रैराशिकफलराशि तमथेच्छाराशिना हतं कत्वा । लब्धे प्रमाणभाजितं तस्मादिच्छाफलमिदं स्यात् ।

इति । चन्द्रिकयास्तावदाह-

स्थानभ्रष्टस्तपस्वी परयुवतिरतस्तस्करो ह-स्तिमुख्यारूढिस्तिहासनस्थो नरपितरिहा दण्ड-नेता गुणी च । निष्प्राणदिछन्नमूर्धा क्षतकरचर-णो बन्धनस्थो विनष्टो राजा वेदानधीते स्विति सुचरितं संस्मरन् धर्मकर्ता ॥ ७४ ॥ सदंदयो निधिसंगतः श्रितनुलो व्याख्यापर-दशत्रुहा रोगी शत्रुजितः स्वदेशचलितो भृत्यो विनष्टार्थकः । आस्थानी च समन्त्रकः परमहीह-र्ता सभायों गजत्रस्तः संयुगभीतिमानातिभयो लीनोऽन्नदाताऽग्निगः ॥ ७५ ॥

क्षुद्धाधासहितोऽन्नमाने विचरन् मांसाहानोऽ-स्वक्षतः सोद्दाहो धृतकन्दुको विहरति धूतैर्नृषो दुखितः। हाय्यास्थो रिपुसेवितश्च ससुहृत् ध्यानी च भार्यान्वितो मृष्टाशी च पयः पिबन् सुकृतकृत् स्वस्थस्तथाऽऽस्ते सुखम् ॥ ७६ ॥

एताश्चन्द्रियाः पञ्चगञ्चाजादिषु राशिषु । प्रकल्प्य तत्समं ब्रूयात् सर्वकार्येषु तत्कलम् ॥७७॥

स्थानाद्रष्टः । तपस्वी — तपश्चरति । नृपती — राजादिसेनितः । अरिहा — राजूणां हन्ता । गुणी — षड्गुणयुक्तः । छिन्नपाणिपादः । स्वदेशश्रष्टः । राजा — प्रजारञ्जनकृत् । स्विपति — निद्रां करोति । सुचरितं — स्वधं स्मरति । भूदानादिधर्मस्य कर्ता । सद्धंश्यः — सदंशे संभवति । निधिसंगतः — निधानं छभते । श्चिततुष्ठः — सुवर्णतुष्ठामारोहिति । शि-ध्येभ्यो व्याख्यापरः । राजून् कामादिषाद्वेषून् हन्ति । रोगी - जवर-रोगार्तः । राजुभिः पराजितः स्वदेशात् राजुभिः निर्वासितः । अन्य-माश्चित्य दासवृत्त्या जीवति । विनष्टार्थः — राजुह्तव्यनः । आस्थानगतः

मन्त्रिभिस्सेवितः । रात्र्राज्यमपकपंति । भार्यया सहैकासनगतः । गज्ञ हस्ता त्र्सः । रात्रुतोऽतिभयवान् भीत्या कापि छीनः । विषेप्रयोऽलदाता । अग्निगः—अग्नौ पति । परमान्नं भुक्के । विचरन् भुक्त्वा रानैः पर्यटिते । नरमांसारानः । सोद्वाहो वधूकरं गृह्णाते । कोडार्थं धृतकन्दुकः । नृपः—महाराजपदाश्रितः । दारिद्रचादु खवान् । आधिभिः राध्यां भजते । सुहृत्परिवृतः । योगध्यानयुक्तः । भार्याऽन्वितः पत्नचा सह् गृहस्थवर्भं करोति । पयः पिवन् पायसभुक् । सुकृतकृत् अति थिपूनां करोति । स्वस्थः आरोग्यवान् आसने सुखमास्ते । एता-प्रिश्चन्द्रितियाः द्वादराधा विभज्य मेषादिराशिषु पञ्चपञ्च प्रकृत् कर्ण्य तासां तत्तिकयागुनुणं ब्रूयात्, राभिक्रयायां राभफलं पाप-कियायां पापफलमित्यर्थः । तथाच गुरुः—

नक्षत्र पश्चिक्तमीणि कुर्यादिन्दुश्शुभाशुभान् ।
नक्षत्रपश्चिमागेषु प्रथमं पश्चकं किये ।
द्वितीयं पश्चकं चोक्षिण तृतीयं मिथुन उच्यते ।
एवं च राशयोऽन्येषु पश्चकैनंबिभः क्रमात् ।
स्थाननाशस्तपश्चेन्दोः परनारीरितः क्रमात् ।
चौर्यं नागाधिरोहश्च मेषे कर्माणि वृत्रहन् ।
सिहःसनस्थितो राजा राजामिस्सेवितश्शक्षी ।
रिपुहन्ता च सेनानीः वृषमे पश्चके गुणी ।
प्रणहानिः शिरश्चित्रः पाणिपादिवनाशनः ।
विश्वतो देशनाशश्च मिथुने शीतगोः कियाः ।
राजा सुवेदाध्यायी च स्वापी धर्मं स्मरन् शशी ।
धर्मकर्ता च पश्चेताः कुळीरे कुरुते कियाः ।
सद्वंशे संभवश्चन्द्रो निधि(क)धर्मतुल्लामिष ।

आरोहेन व्याख्यया युक्तः सिंहे शत्रुविमर्देनः । जनरानिः स्थानविश्रकः (ध्नस्त) श्रात्रुभिर्देशतो गतः । अन्यमाश्रित्य कन्यायां वसेद्रिपृहृतार्थकः । आस्थानस्थो भनेचन्द्रो मन्त्रिमिश्र ततः परम् । रिपुराष्ट्रहतो वाऽपि सनानिर्गनहस्ततः । संत्रस्तो युद्धभीरुश्च भयातैः कापि चाऽऽवसन् । विप्राणामन्नदाता च वृश्चिके इसी पपात च । श्वातिश्वात्रभोक्ता च विचरत्ररमांसभुक्। कुटारनिहतश्चन्द्रश्चापे पञ्चगुणा अमी । मुस्त्रीणां तु कर्याही तासां कन्दुकभृत् राशी । द्यून रतो महारानः दुःखी च मकरे भवेत् । शेते रिपुनु रस्तेव्यो मित्रराजभिरेव च। मुनिभियोंगध्यानी च सनानिश्च वटे शशी। मृष्टात्राद्यारानो मीने पायसाशी च पायसम्। दवात्रं नृयति स्मेन्दुः स्वस्थ आस्ते सुखासनः । एवं चन्द्रगुणाढचेषु शुभेषु शुभमाचरेत् । सर्वेदोषा विनश्यन्ति विशेषात् स्थापनाविधौ । प्रश्नकाले गुणश्चेन्दोश्ज्ञमो यदि ज्ञुमप्रदः। प्रश्नश्राशुभकर्मस्थे चन्द्रे प्रश्नोऽशुभप्रदः।

इति । चन्द्रावस्था आह—

आत्मस्थानात्प्रवासो महितनृपपदासक्तता प्रा-णहानिर्भूपाळत्वं स्ववंशोचितगुणनिरती रोग आ-स्थानगत्वम् । भीतिः क्षुद्वाधितत्वं युवतिपरिणयो

रम्यशय्यानुषिकः मृष्टाशित्वं च गीता इति भव-नवशात् सिद्धारिन्दोरवस्थाः ॥ ७८ ॥

नृपपदं-सिहासनं तद्पाश्रयणं । भूपालः त्रं प्रजारअनका-रित्वं, स्ववंशोचितगुणा-औदार्यशौषपाण्डित्याद्यः तेषु निरतत्वं । रोगो-ज्वरातिः । शत्रोभीतिः । एता द्वादश चन्द्रस्यावस्थाः, राशिवशाद्भवन्ति । मेषादावेकैकास्मिन् राशौ एकैकाऽवस्थेत्यर्थः । उक्तं च—

> चन्द्रस्य द्वादशावस्था राशौराशौ यथाऋमम् यात्रादिपश्चसमये संज्ञातुल्यफलप्रदाः॥

इति । केचिन्—राशौराशौ द्वादशावस्था आहुः, उक्तं च— षष्टिश्नं चन्द्रनक्षत्रं तत्कालघटिकाऽन्वितम् । वेदन्नमिषुवेदाप्तमवस्था मानुभाजिताः ॥

इति । श्रापतिः--

प्रवासनष्टाल्यमृताजयाल्या हास्यारतिक्रीडितसुप्तभुकाः । ज्वराऽऽह्वयाकाम्पितसुस्थिते च द्विषट्कसङ्ख्या हिमगोरवस्थाः ॥

इति । केचिद्वर्णसङ्ख्यया शुभाङ्गतमसासंपञ्चरुतेनस्सङ्ख्यनक्षत्रविधु प्रवासाद्यवस्थाः करुपयन्ति ।

प्रवासस्वस्थनष्टाख्याहसितो विजयी ज्वरी । रातिर्मृतोपवासश्च ऋडितस्सुप्तभुक्तिदा । Vidyamadaviam. इति केचिदाहुः। अन्ये-

त्रोत्थस्त्वस्थो मृतो जातो हिसतो रामितइराशी। स्नाता मुक्तश्च सुप्तश्च कम्पितो ज्वरितस्सुखी॥

इति । वेला आह—

मूर्घाऽऽमयो मुदितता यजनं सुखाऽऽस्था ने-त्राऽऽमयः सुखितता वनिताविहारः। उग्रज्वरः कनकभूषणमश्रुमोक्षः क्ष्वेळाशनं निधुवनं जठ-रस्य रोगः॥ ७९॥

क्रीडा जले हसनचित्रविलेखने च क्रोधश्च नृत्तकरणं घृतभाक्तिनिद्रे। गानिक्रिया दशनरुक्कलहः प्रयाणमुन्मत्तताऽथ सालिलाऽऽधवनं विरोधः॥८०॥

स्वेच्छास्थानं क्षुद्रयं शास्त्रलाभः स्वैरं गोष्ठी-योधनं पुण्यकर्म । पापाचारः क्रूरकर्म प्रहर्षः प्राह्मैरेताश्चन्द्रवेलाः प्रदिष्टाः ॥ ८१ ॥

यजनं—देवपूजाकरणं । आस्था—आसनं । निधुवनं—सुरतं । आष्ठवनं मज्जनं । क्षुद्रयं–क्षुघातिः । शास्त्रस्य लामः—श्रवणं प्रहर्षः—मनःप्रीतिः । एताः षट्त्रिंशत् चन्द्रवेलाः । उक्तं च—

> शिरारोगो महाप्रीतिः देवकार्यं मुखासनम् । नेत्ररोगस्मुखं कमे नारीक्रीडा महाज्वरः । मुवर्णभूषणं साश्चीवषमुक्तिश्च मैथुनम् ।

कुतिरोगो जलकीडा हमनं चित्रलेखनम् । कोषनं नृत्तकरणं घृतभुक्तिस्मुनिद्रता । गान्यर्वं दन्तराूलं च कलहं चैव गच्छिति । उन्मादस्स्नानकार्यं च विरोधश्चेव तिष्ठति । क्षुषा च शास्त्रश्चवणं स्वैरं गोष्ठी च युध्यते । सत्कर्मा पापकर्मा च कूरकर्मा प्रहर्षितः ।

इति । एताः मेषादिषु तिस्रस्तिस्तः प्रकल्प्य संज्ञासमं फलं वदेत् । दोषाध्यायमुपसंहरति—-

इत्थं विद्यामाधवीयेऽनवद्यै-हृद्यैः पद्यैर्गुम्भितोऽस्मिन्नशीत्या । निर्दोषोऽपि द्योतिताहोषदोषो दोषाध्यायः पूर्ण आसीद्वितीयः ॥

इति विद्यामाधवीये दोषाध्यायो द्वितीयः

अनवद्यैः—पदवाक्यवाक्यार्थदोषरिहतैः तद्गुणसंपन्नतया रम णीयैः। अशीत्या पद्यैः राचितः पुनरुक्तातिविस्तरादिदोषराहेतः प्रक-टितसर्वमुहूर्तदोषः दोषाध्यायः संपूर्णोऽभूत्।

> इत्थं विद्यामाधवीय मुहूर्ताऽऽदर्शे विद्यामाधवस्यात्मजेन । व्याख्यातेशऽभूत विष्णुतैव द्वितीया दोषाध्यायस्मर्वदोषाभिषायी ॥

इति विद्यामाधवीयन्याख्यायां मुह्नतेदीपिकायां दोषा-ध्यायो द्वितीयः

अथापवादाध्यायस्तृतीयः.

तत्र तावत् शुमकर्मचिकीर्षुभिरिष पुरुषरलपमाग्यैरशेषदोषरिहतमुहूर्नस्य दुर्लभवात् उत्सर्गाणामपवादैन्यीवृत्तिदर्शनाच उत्सर्गाः
णामपवादगुणान् वक्ष्ये इति प्रतिज्ञानीते—

दोषैरमीभिरखिळै रहितं मुहूर्तं लोकः कलौ न लभते खलु मन्दभाग्यः। ते यान्ति नाशमपवादगुणैर्यतोऽस्मात् तेषां क्रमादभिद्धेऽहमिहापवादान्॥

इह—अध्याये दोषाणां क्रमेणापनादान् नदामि । यस्मा-दुक्तेरशेषदोषेः रहितं मुहूर्तं कलावल्पदेनैः पुरुषेने लम्यते । कथं तर्हि शुभक्तियाः कार्यो इत्यन्नाऽऽह—यतो दोषास्मन्तोऽपि अपनाद-गुणैनीशं यान्ति, तथाचोक्तं—

ये दोषास्स्वापनाँदेस्ते सत्सु चाभावतां ययुः । यथा पापा ययुस्सर्वे प्रायश्चित्तेरभावताम् ।

इति । न केवलं स्वापवादैः, र्भुगैश्च द्रोषा नश्यन्तीत्यन्ये, तथाच गुरुः—

दोषाश्च गणितास्तर्वे गुणेम्यो बहवः कलौ तथाऽपि दोषा नश्यन्ति स्वापवादैर्गुणैरपि ।

इति । अपवादेर्गुणैश्चेति हन्द्रः । ननु अपवादगुणानामेव दोवबाध-कत्वं नान्येषां यद्रह्यः — गुणशतमि दोषः कश्चिद्देकोऽपि विद्धं सपयति यदि नान्यस्तिहरोधी गुणोऽस्ति । घटमिव परिपूर्णं पञ्चगव्यस्य शक्तचा मलिनयति सुराया बिन्दुरेकोऽपि सर्वम् ॥

इति । नैतत् बलवतां तद्दन्येषामप्यस्येव । यस्मात् गुरुः — दोषलक्षणसद्भावे सत्यप्यतिबले गुणे । अभावतैव दोषाणां व्यत्यये व्यत्ययो भवेत् ॥

इति । मैवं वादीः, महादीषास्तु गुणप्राबल्येन गुणबाहुल्येन वा न बाध्यन्ते । यस्मात् भरद्वाजः—

> यथा चाऽऽशीविषं छोके तथा दोषान् गुरून् विदुः। इतरेषु तु विज्ञेयं बहुचं च बलाबलम्।।

इति । एतं ताई ब्रूमः, महादेषाणामेव स्वापवादगुणैबीध्यत्वमस्तु, तद-न्येषां गुणान्तरैबीध्यत्वमिति । तेष्विप बलाबलमन्वेष्टव्यम् । यथा गुरुः—

> न सङ्ख्याभिर्वेष्ठं चिन्त्यं गुणदोषेषु मूरिभिः । स्वमावकथितैरेव बलैयोज्यं हि कालजेः ॥ यस्य प्रबलमावस्स्यात् तयोस्तस्यैव भावना । नास्तिता दुर्बलस्यात् कालोत्थगुणदोषयोः ॥

इति । छिद्रापवादमाह ---

शुभकर्मणि बल्जिनीन्दौ छिद्रास्तिथयः क्रमाच-

तुथ्याद्याः । नवनवमनुतत्विदशाशरघटिकाभ्यः परं शुभा ज्ञेयाः॥

चन्द्रे बलवित सित चतुर्थिदाः षट् तिथयः क्रमेण नगदि-घटीरतीत्य परतः शिष्टाः शुभकर्मणि शुभाः । यथा चतुर्थीषष्ठचौ नव, अष्टमी चतुर्देश, नवमी पञ्चिवशतीः, द्वादशी दश, चतु-देशी पञ्च घटीरतित्य परतश्शुभाः । तथाच गुरुः—

> पक्षिद्धाऽऽह्वायेप्वेषु तिथिष्वेताश्च नाडिकाः क्रमात्तिथ्यादितो दोषाः शुभकार्येषु वर्जिताः । भूनः क्कमनुतत्वाक्करशशेषाससुशोभनाः पक्षिद्धोक्तनाडीषु शत्रुमारादि कारयेत् ॥

इति । एतच तिथेश्रन्द्राधीनत्वादुक्तं, तथान भरद्वानः— तिथिमूलिमदं सर्वं कालनक्षत्रसङ्गृहम् तिथिनक्षत्रयोस्सिद्धौ यो हेतुश्रन्द्र उच्यते । चन्द्रस्य क्षयवृद्धिभ्यां विज्ञेगाऽत्र तिथिस्सदा यदा पञ्चद्रशो भागो वर्धते क्षीयतेऽपि वा ॥ कालेन यावता चन्द्रः स कालस्तिथिरुच्यते ।

इति । अतश्चनद्वस्य सर्वबलसंपत्ती कात्स्नर्चेन तिथयश्शुमाः, मध्य-बल्ले प्रोक्तवाटिकाम्यः परं शिष्टाः । अल्बल्ले कात्स्नर्चेन निन्दा। इति सिद्धम् । जीवकेन्द्रे चन्द्रशिक्तद्देश्वद्देश्वात्रेः । तथा च-

केन्द्रे जीवस्य पूर्णेन्दुश्शुभेऽहि छिद्रदोषहा । इति । पापवारापवादमाह—

देवाऽऽराधनमन्त्रभेषजविधौ वाजिह्निपाऽऽरोहणे

भूपानामभिषेचने व्रतिवधौ विद्याकृषिप्रक्रमे । गाग्योऽर्कस्य शुभं जगाद दिवसं दृष्टस्य सौम्यैः परे सर्वेष्वम्बरधारणाञ्च भवनारम्भादते केचन ॥

देवाऽऽराधनं—देवार्चनारम्मः। मन्त्रविधिः मन्त्रदीक्षास्वीकारः।
भेषजविधिः औषधप्रयोगः । वाजिद्धिपग्रहणं अन्येषां यानानामुपलक्षणं । व्रतानि काम्यानि प्रक्रमः—आरम्भः । एतेष्वष्टकर्मगु
अर्कस्य दिनं गार्थः शुभं जगाद । परे भरद्वाजादयः सोम्यग्रहदृष्टस्यार्कस्य दिनं सर्वकर्मसु शुभमाहुः। केचित् वस्त्रधारणं
गृहारम्भं वर्जयित्वा अन्येषु कर्मस्वर्कदिनं शुभमाहुः। गार्थः—

आरोहणं वाजिगजेश्वराणां मन्त्रोषयं देवगृहार्चनं च । नृपाभिषेकं च हिरण्यदानं विद्याकृषिश्चार्कदिने प्रशस्ता ॥

इति । भरद्वाजः— अङ्गारकस्य सौरस्य दिवसौ द्वौ विवर्जयेत् । भास्करोऽपि शुभैर्दृष्टः कार्यदोपं न यच्छति ।

अन्ये —

सूर्यवारो उम्बरादानं गृहकार्य विना शुभः । इति । स्वाचसहृहस्ये प्रहे तिह्नं शुभम् । नीचारिगृहस्ये नेष्टम् । तथाच भारद्वाजः—

> स्वक्षेत्रोचर्कामित्रेषु दिनेशो वृद्धिमावहेत् । शेषा दोषकरा ज्ञेया विफलाय तथैव च ।

यस्य प्रभुश्रहः क्रूरः शस्तं तत्तस्य योजयेत् । शुभकममु नेष्ठव्यः स्थानयोगेषु दारुणः । नारदः—

> बलप्रदस्य खेऽटस्य वारे सिद्ध्यति यत्कृतम् । तत्कर्म बलहीनस्य दुःखेनापि न सिध्यति ।

श्रीपतिस्तु —

वारे प्रहस्योपचयाऽऽवहस्य कार्यं यथोहिष्टमुपैति सिद्धम् । भवेत्तदेवापचगाऽऽवहस्य प्रयवतो निर्मितमप्यसाध्यम् ।

गुरु:--

पापग्रहोऽपि वारेशो लग्नात्त्र्यायारिवित्तगः । स्ववारकथितं दोषं न शुभेषु प्रयच्छति । भरद्वाजः—

भौमभास्करवर्गाभ्यां सृदुकार्याणि वर्जयेत् । अत्युष्णं दारुणं रूक्षं रिक्तं चैव समाचरेत् ! सिप्रसाध्यं महायतं दुस्साध्यं क्रूरमेव च । आरम्भे भास्करस्योक्तं वर्गे सौम्यनिरीक्षिते । चन्द्रशुक्रस्ववर्गाभ्यां क्रूरकर्माणि वर्जयेत् । मृदुशीतळसौम्यानि शुभकर्माणि साधयेत् ।

इति । किश्व--

स्वामिहितकर्ममु सर्वे वाराइशुभा एव । यस्मातेषु तानि नियतानि, तानि चोक्तानि रछेन—

कुर्यात् मङ्गलगीष्टिकानि नृपतेर्यात्राभिषेकौ तदा सेवाभेषनचर्मवर्मकनकप्राह्यअकमीणि च । विद्याज्ञान(व)परव्रतानि भवनं शिल्पं रणं साहसं क्षिपालङ्करणे दिने दिनकृतो लग्नस्थिते वा रवौ ॥ दिवाकार्यं तु—

> सेवापण्यविभूषणाभ्बुगमनं गीतं तथा भेषजं वृक्षाऽ**ऽरे**।पणसेतुधान्यसाक्षेत्रक्षित्रणि देवाऽलयम् । यज्ञं शान्तिकपौष्टिकानि भवनं रत्निक्रया कर्पणं वाणिज्यं सरसायनं पितृमखं मङ्गल्यमप्यैन्द्वे ॥ रक्तस्वावविषास्त्रकर्महुतभुग्दाहानि वादं रणं शत्रोर्बन्धविधि च दुष्टद्मनं सेतुप्रभेदं तथा । वृक्षोच्छेदनभेदनानि मृगयां चौर्यं तथा साहसं सेनान्यं कृषिकर्म धातुकरणं भौमस्य लग्नेऽिद्व वा ॥ मङ्गरुयध्रुवपौष्टिकानि सलिलाचर्यां तथा भेषजं सेवा पण्यविभूषणानि च तथा बीजोसियुक्तिकिये। राजामप्यभिषेचनं परमथ क्षेत्रं च मैत्रं छिपि विद्याशिल्पवित्राहवाहनविधि सान्धि च बौधेऽहिन ॥ देवाची गुरुसेवनं व्रताविधि यज्ञिकयां पौष्टिकं यात्रां च ध्रवकर्म शिल्पमि च मिक्षप्रं प्रतिष्ठामि । विद्यारम्भमधाप्रकार्यमसङ्जाताकियां वैदिकं मङ्गल्यानि बुबोदितानि च गुरोर्लग्रेअदि वा कारयेत्॥ उद्घाहं गमनं तुरङ्गगजयोः पूर्वं तथा वाहनं मङ्गल्यध्रवपौष्टिकानि भिषजां कर्माणि शिल्पान्यपि । नानारत्नविभूषणानि सुरतं ²हृष्योपयोगांस्तथा यत् त्रोक्तं बुधनीवयोश्च दिवसे कुर्याद्दिने तदूगोः॥

¹ क्षिप्रप्रतिष्ठामांपं ² बृष्योपयोगां

दासीदाससरे। ष्ट्रपासिमाहिषी । ले। हास्यनार्थाश्मकां निली कङ्कटचर्मसङ्ब्रहमथ क्षामास्त्रयोगानिष दीक्षां मिक्षजनस्य वेश्मविश्वानं कर्मे ध्रुवं बन्धनं भैं। मोक्तं च शनेर्विवाहसहितं कृषांत् न सल्पौष्टिकम् ॥

- इति । तेषां कालहोरास्विप कार्यव । उक्तं च— प्रहिद्देशे यत्त्रोक्तं वेषे मासे च कालहोरायाम् । विद्यात् कर्मगुणमेतत्(?) सोम्ये केषां च समन्राय ॥
- इति । तिथयोऽप्येवं, उक्तं च नारदेन —
 चित्रहेष्योत्सवक्षेत्रयानद्यस्यास्तादिक्यः ।
 वृक्षच्छेदनहोहाश्मकमे प्रतिपदोरितम् ॥
 पुरत्रामप्रवेदां च

अन्ये--

मङ्गल्यमोक्षियात्राश्च मुरस्थापनमोषयम् ॥
प्रहणं पोष्टिकं कर्म द्वितीयायां विश्वीयते ।
प्रातिष्ठाशिल्पवीचोप्तिविद्या निम्बलमङ्गल्पः
अश्वादिदमनं यानं तृतीयायां विभूषणम् ।
अथवणिवषाप्रचारत्रवन्यनोच्चाटनादिकम्
वौर्ययात्राऽऽदिकं कर्म रिक्तास्वेव विश्वीयते
यानोपनयनोद्वाहगृहशान्तिकपौष्टिकम् ।
चरस्थिराखिलं कर्म पञ्चम्यां मङ्गलोत्मवम्
मारणोच्चाटनं चैव बन्धनं विषदापनम् ॥
तथाऽन्यत्कूरकर्मापि षष्ठचां चैव तु कारयत् ।
कर्षणं भूषणं चैव गमनागमने तथा

¹ छोहास्यनार्थातमनां ² नीसाक्यव्यक्तमम

शोभनं धुनकर्गाणि सप्तम्यां कारयेत्ररः ।
सेनावाणिज्ययन्त्राश्मलोहसंत्रामभूषणम्
शिवस्थापनशान्त्यादि कर्माष्ट्रम्यां विधीयते ।
प्रवेशं स्थापनं यानमृद्वाहत्रतमङ्गलम् ॥
रणोपदानवैवाहकृषिवाणिज्यभूषणम् ॥
शिल्पं नृत्तगृहं यानमेकादश्यां विचित्रकम् ।
चरस्थिराखिलं कर्म दानं शान्तिकपौष्टिकम् ।
यात्राऽलग्रहणं त्यक्ता द्वादश्यां निखिलं हितम् ।
अग्रचाधानं प्रतिष्ठा तु विवाहत्रतवन्त्रनम् ।
विखिलं मङ्गलं यानं त्रयोदश्यां धुवं तथा ।
अन्यत्र—
मन्त्रयन्त्रप्रवेशं न क्षुद्रोपद्ववसाधनम् ।
देवताप्त्रनं चैत्र चतुर्देश्यां तु कारयेत् ।

नारदः-

तैलस्त्रीमांसगमनदन्तकाष्टोपनायनम् । सक्तीरं पौर्णमास्यां च विनाडन्यद्खिलं हितम् । पितृकर्मामावास्यायां मुक्तुः स्नानं जपाडऽहुतिम् । न विद्ध्यात्प्रयक्षेन यत्किञ्चिनमङ्गलादिकम् ॥

इति ।

आग्नेयादिभान्यपि विहितकर्मस्वत्याज्यानि । उक्तं च नारदेन -वस्त्रोपनयनक्षौरसीमन्ताभरणिकया । स्थापना शिल्पयानास्त्रकृषिविद्यादयोऽश्विमे ।

¹ शॉन्तिपृष्टवादिकं कर्म

78:---

धनधारण्याह्काशुरपरिझहं दुष्टद्मनसूत्रं च विषमादिसाहसानां कुर्यात्क्रमाणि भरणीषु ।

नार्दः--

अम्रचाधानास्त्रशस्त्रोग्रसान्धावेग्रहदारुगाः । सङ्गामौषधवादित्रिक्रियारशस्ताश्च विद्वमे । सीमन्तेषनयोद्धाहवस्त्रभूषास्थिरिक्रयाः । क्षेत्रवास्त्वभिषकाश्च प्रतिष्ठा ब्रह्ममे शुभाः ।

₹8:--

शान्तिकपें। ष्टिकवास्तुक्षुरकर्मिववाह्यानिशाल्पाऽड्याः मृगशिरिस च कार्यं स्यात् विद्योपनयं सबीजोितिः।

नारदः--

ध्वनतोरणसङ्गामप्राकारास्त्र कियाश्शुमाः । बन्धविग्रहचौर्योऽऽद्याः साहसं कर्म शाङ्करे । प्रतिष्ठा यानसीमन्तवस्त्रवास्त्यनायनम् सौराश्वकमीदितिमे विद्यामूषणमेषजम् । यात्राप्रतिष्ठासीमन्तवतवन्धप्रवेशनम् । करग्रहं विना सर्वं कर्म देवेड्यमे शुमम् । साहसं दुष्टदमनं धातुवादौषध ऽऽहवाः । विवाहवधवाणिज्यकर्म कद्भुजमे शुमम् । कृषिवाणिज्यगोधान्यरणोपकरणादिकम् । विवाहनृत्तगीताऽऽद्यं साहसं कर्म पैतृमे । विवाहिविषरास्त्राप्तिदारुणोत्राऽऽहवादिकम् ।
पूर्वात्रयेऽिखलं कर्म कर्तव्यं मांसिकियम् ।
क्स्नाभिषेकसीमन्तिविवाहव्रतवन्धनम् ।
प्रवेशस्थापनाश्चेह वास्तुकमौत्तरात्रये ।
प्रतिष्ठोद्दाहसीमन्तयानवस्त्रोपनायनम् ।
सोरवास्त्वभिषेकाश्च भूषणं कर्म मानुमे ।
प्रवेशवस्त्रसीमन्तप्रतिष्ठा व्रतवन्धनम् ।
व्रष्ट्रमे वास्तुविद्याश्च सौरमूषणकमे यत् ।
प्रतिष्ठोपनयोद्दाहप्रवेशाम्बरभूषणम् ।
विज्ञोसच्येभरुष्यादि सौरकमे समीरमे ।
वस्त्रभूषणवाणिज्यवसुधान्यादिसङ्गहम् ।
इद्दाप्तिभे नृत्तगीतिशिष्टपल्ठेखनकमे व ।

लड्डश्र-

ऐन्द्राग्नेऽग्निग्रहणं सुराऽऽलयाची प्रतिष्ठा च । क्षेत्रोद्यानादीनामारम्भाश्च प्रशस्यन्ते । प्रवेशस्थापनोद्वाह्वतवन्थाष्टमङ्गलम् । यात्राबीजोतिवास्त्वश्वा मैत्रमे सान्धिविग्रहम् । क्षौरास्ववस्ववाणिज्यगामहिष्यम्बुकमे च । इन्द्रमे नृत्तवादित्रशिल्पलेहाश्मलेखनम् । विवाहक्विवाणिज्यदारुणाऽऽह्वऽभेषजम् । वैर्ऋते शिल्पनृत्तास्त्रसान्धिविग्रहलेखनम् ।

₹8:--

आप्ये कूपाऽऽरम्भेः नलसेतुविधिक्रियाऽऽम्बुमोक्षश्च । वापीतटाकपरिखात्रारम्भेश्चेव कर्तव्यः । वैश्वेऽलङ्कारविधिः कन्यादानं तथा विवाहश्च । स्थैर्यार्थाश्राऽऽरम्भा गृहप्रवेशश्र कर्तव्यः । प्रतिष्ठा क्षीरसीमन्तयानोपनयनौपधम् । पुराराऽडमगृहाऽऽरम्भं विष्णुमे पष्टबन्धनम् । वस्त्रोपनयनक्षौरप्रतिष्ठा यानमेषनम् । वसुभे वास्तुसीमन्तप्रवेशाश्वेमभूषणम् । त्रवेशस्थापनक्षीरमौजीबन्धनभषनम् । अश्ववास्तु च भैषज्यं जलकर्म जलेशमे । ¹आजैकपेद कुर्यात् साहसं कर्म वाहनाऽऽद्यं च । परवधवन्धच्छेदाः परविभवो वा परग्रहश्चेव । आहिर्बुधचे सर्व स्थैर्यार्थ पौष्टिकं च कर्तव्यम् । नौयानं यात्रा च क्षेत्राऽऽरम्भो गृहाणां च ॥ विवाहबतवन्याश्च प्रतिष्ठायानम्षणम् । प्रवेदावास्तुनीयानक्षीरभेषनमन्त्यमे ।

रहः ।

इति कर्मीकं भानामनुषहतानां तु तह्रहैः कृरैः ।
कूरैस्तूषहतानां कार्यं स्थात्कर्कमैव ।
इति ।नित्ययोगेष्वपि कैश्चिद्कानि—

चौळं गजाधाऽऽरोहं च स्त्रीसङ्गं दन्तकर्षणम् । काष्ठकर्म विषोचाटं विष्कम्भे चैव कारगेत् । नृत्तगीतविल्लेपांश्च मृपणाञ्चपरिम्रहम् । राजाभिषेकं वश्यं च प्रीतियोगे तु कारयेत् । बीजाऽऽवापं धनं विद्यामायुरारोग्यसिद्धये ।

[।] ¹ अजैकपादे कुर्या.

विवाहं वस्त्रबन्धं च आयुष्ये चैव कारयेत् । वस्त्रबन्यमलङ्कारं सौभाग्यालेपकर्म च । सोमपानं सुरापानं सौभाग्येन तु कारयेत्। विवाहं दानकमाणि भूषणं भृषरिश्रह्य। राजाभिषेकमायुष्यं शोभने तु प्रकारयेत् । वियहं नियहं चैव रोधनं वधवन्यनम् । भेदनं वश्चनं क्षुद्रमतिगण्डे तु कारयेत् । विप्रकर्म गृहस्थानं कल्याणं भूपरिब्रहम् । राजाभिषेककार्याणि मुकर्मणि तु कारयेत्। नगरं पत्तनं खेटं स्थिरकर्म मुशाभनम् । क्षेत्रोद्योगं तटाकं च वृतियोगे तु कारयेत् । क्रूरकर्म रिप्चाटं मरणं दहनं तथा । बन्धनं चावमानं च शूलयोगे तु कारयेत् । शत्रुचाटं विषोत्सारं तटाकं सेतुबन्धनम् । क्षेत्राऽऽरम्भं गनाऽऽरोहं गण्डयोगे तु कारयेत । बीजाऽऽवापं घनं मन्त्रं विवाहं वस्त्रभूषणम् । शान्तिकं पौष्टिकं चैव वृद्धियोगे तु कारयेत् । वस्त्रबन्धमलङ्कारं तटाकं सेतृबन्धनम् । . भूषणं बहुरतानि ध्रुवयोगे तु कारयेत्। भन्धनं रोधनं चैत्र विद्यातं छेदनं तथा । सहूनि क्रूरकर्माणि व्याघाते कारयेद्रुधः। वस्त्रबन्धं गनाऽऽरोहं विवाहं भूषणं तथा । राजाभिषेकमायुष्यं हर्षणे चैव कारयेत् । शस्त्रकर्म विषोचाटं शस्त्राणां च परियहम् ।

सेनाऽऽधिपत्यकार्यं च वज्जयोगे तु कारयेत्। हननं भेदनं चैव श्राद्धं देवादिपूजनम् । रिपूचाटं विषं कर्म व्यतीपाते तु कारयेत् । हारकाञ्चनमुक्तानि हस्ताऽऽभरणमेव च । अङ्गलीभूषणं चैव 'वरीयासि तु कारयेत् । बन्धनं दहनं चैव भेदनं च वधं तथा। तथा ऽन्यक्रूरकमीणि परिचे चैव कारयेत् । मौक्तिकं कटिसूत्रं च वजाऽऽभरणमेव च । कर्णयोर्भूषणं चैव शिवयोगे तु कारयेत्।। प्रतिष्ठां देवताऽऽदीनां गृहाणि नगराणि च। प्राकारतोरणाऽऽदीनि सिद्धयोगे तु कारयेत् ॥ देवतागुरुपूजा च विद्याऽऽरम्भं मुखाऽऽवहम् । वस्त्रभूषानु छेपादि साध्ययोगे तु कारयेत् ॥ बीजाऽऽवापं महोत्साहं धनधान्याऽऽदिसंग्रहम्। सर्वरतमिति प्राह्मं शुभयोगे तु कारयेत् ॥ लेपनं भूषणं चैव तर्पणं राजदर्शनम् । कन्यादानं महोत्साहं ²शुक्कयोगे तु कारयेत् ॥ शान्तिकं पौष्टिकं चैव तटाकं सेतुबन्धनम् । चौळोपनयनं चैव ब्रह्मयोगे तु कारयेत्॥ कन्यादानं गजाऽऽरोहं स्त्रीसङ्गं वस्त्रभूवणम् । काव्यगीतं च नाट्यादि चैन्द्रयोगे तु कारयेत् ॥ घातनं परराष्ट्राणां छेदनं दहनं तथा । लेपनं क्रूरकर्माणि वैधृते तु प्रकारयेत् ॥

¹ वर्ययोगे तु. ² शुभ्रयोगे तु.

करणेष्वपि-

शान्तिकं पौष्टिकं चैव स्थावरं मौज्जिबन्धनम् । मङ्गलं गृहकर्माणि प्रशस्तं कारयेद्वेवे ॥ वीजाऽऽवापं महोत्साहं विवाहं वस्त्रवन्धनम् । यात्रामज्जनसौभाग्यं कारयेत बाछवाऽऽह्रये ॥ विवाहं मौक्षिबन्धं च वस्त्रं विद्यां तथेव च । शान्तिकं पौष्टिकं चैव कारयेत् कौलवाऽऽह्रये ॥ बीजाऽऽवापं महोत्साहं विवाहं वस्त्रभूषणम् । यात्रामज्जनसौभाग्यं तैतिले तु प्रकारयेत् ॥ बीजावापं कृषिं चैव विवाहं मुपारिप्रहम्। स्थिरकर्मादि माङ्गल्यं गरने तु प्रकारयेत् ॥ सौभाग्यं लेपनं चैव वाणिज्यं नृपदर्शनम् । यानवाहनवस्त्राणि वणिजे तु प्रकारयेत् ॥ शस्त्रघातं विषं कर्म भेदनं दहनं तथा । शुभवज्यानि विष्टचां तु कारयेदशुभानि वै ॥ शान्तिकं पौष्टिकं चैव मूलमन्त्रीषधानि च । देवतापूजनं चैव शकुने तु प्रकारयेत्॥ स्नानं च जपहोमं च श्राद्धसङ्करूपनं तथा। देवतापितृपूजां च कारयेत चतुष्पदे ॥ गृहकर्म विषोचाटं मारणं दहनं तथा। मेदनं वश्चनं चैव नागे चैव तु कारयेत् ॥ वाहनं भोजनं चैव भूषणं भूपारिप्रहम् । शोभनं शुभकार्थाणि किंग्नचे त प्रकारयेत् ॥

इति गार्थः । चन्द्रवर्गापवादमाह— समस्तकार्येषु वळक्षपक्षे निशाकरस्योदयवारवर्गाः । शुभाः प्रदिष्टाः बहुळे त्वनिष्टा-स्सदाऽप्यनिष्टोऽभ्युद्यो विवाहे ॥

शुक्रपक्षे चन्द्रस्योदयादयस्मर्वकार्येषु शुभाः । बहुले पक्षे ते सर्वेऽनिष्टा भवन्ति । चन्द्रोदयस्तु सदा शुक्ते कृष्णे वा विवाहेऽ निष्टः । तथा च नारदः—

जुभम्रहयुते चन्द्रे स्वीचस्ये मित्रराशिगे । यदि लम्मगतस्तोऽपि दम्पत्योमरणप्रदः ॥

इति । अयं चार्थां द्योत्यते — शुक्कप्रतिपदि चन्द्रः शुभश्चेत् स पक्षः शुभा भवति । ऋण्णप्रतिपद्यशुभश्चेत् स चाशुभः । तथा च नारदः—

> शुक्रपक्षाऽऽद्यदिवसे चन्द्रो यस्य शुभनदः । स पक्षस्तस्य शुभदः कृष्णपक्षेऽन्यथाऽशुभे ॥

इति । पापवारे स्वोक्तादन्यकर्मगोऽवश्यकार्यत्वेऽपि विशेषमाह—

पापस्य वारेऽपि जनस्य कार्य-मवदयकार्यं यदि तत्र तस्मात्। शुभांशयुक्ता शुभकालहोरा प्राह्येव नीचान्महितेव विद्या॥

जनस्य यत्किञ्चिदावश्यकं कार्यं चेत्, तत् पापवारेऽपि तद्दिने कार्यमेव। आवश्यकत्वात्। कथमित्यत्राऽऽह्–तस्मात्–पापवारात् शुभवारांशसहिता शुभकालहोरा तत्राऽऽवश्यके याह्या भवति । न तु कृत्सं दिनं । अत्र लोकप्रसिद्धचनुगतं निद्शेनमाह—नीचात् पुरुषाद-प्युत्तमा—पुरुषार्थसाधनी धातुवादादिविद्या यथा याह्या इति । उक्तंच 'नीचादप्युत्तमा विद्या' इति ॥ पापवारेऽपि रात्रौ न देष इत्याह—

आत्मोपलब्धाविव यामवत्यामुपाऽऽगतायां प्रहवासरेषु । सर्वेषु भूतेष्विव बुद्धिमन्तो हीनोत्त-मत्वं न खलु स्मरान्ति ॥

आत्मन उपलिबः—ज्ञानं आत्मीपलिबेः, अत्मज्ञान इव रात्री प्राप्तायां संत्रेषु भूतेषु प्राणिजातेष्विव प्रह्यारेषु हीनोत्त-मत्वं बुद्धिमन्तो न स्मरान्ति, यथा—आत्मा एकः व्यापी सर्व-भूतस्थः, स च मायारचितेषु सर्वीपाधिश्वारीरेषु जीवात्मना संस-रति; यथा व्योममध्यवर्ती भास्वानेकः स्वर्णाद्युदकुम्भेषु प्रातिबि-म्बाऽऽत्मनाऽवभासते, तत्र तद्रताः कम्पमलिनिमाऽऽद्यो विकाराः प्रति-विम्बस्यैव न व्योममध्यवर्तिनस्पूर्यस्य; तथा शरीरगता धर्मा जी-वात्मन एव न परमात्मनः । तस्य निर्वकारत्वात् । तेऽपि धर्मा-धर्मवर्णाऽऽश्रमहीनोत्तमत्वाद्यो जीवात्माने आन्तिनिबन्धना एवा-रोप्यन्ते, यथा रज्ज्वां सर्पाश्चिताः । ते तु तत्वतो न सन्त्येव । इत्यादिविचारसंपन्नो योगी प्राणिजातेषु वर्णाश्चमादिभिः हीनो-त्तमत्वं न मन्यते तथा रात्री ग्रहवारकृतं पापत्वदोषं न स्मरम्ति ॥ उक्तं च—'न रात्री वारदोषोऽस्ति' इति । पापराश्चयवादमाह—

पापाऽऽस्पदानि शुभवीक्षणसंप्रयोगात् क्रौर्यं विहाय हि भजन्ति शुभस्वभावम् ।

ज्ञेयानि मध्यमफलानि ततदशुभेषु याद्याण्यृते धरणिनन्दनमन्दिराभ्याम् ॥

पापराञ्चयो मेषसिंहाद्याः शुभानां दृष्टियोगाभ्यां निमि-त्ताभ्यां स्वाभाविकं क्रोर्यं पापत्वं विहाय शुभस्वभावं भजनित । नारदः—

> सौम्यात्रतेषां राशीनां प्रक्रत्या न भवत्यसी योगेन सौम्यपापश्च खेचरैंनीक्षितेन च ॥ सौम्याऽऽश्चितत्वात् क्रूरोऽपि स राशिश्शोभनस्स्मृतः सौम्योऽपि राशिः क्रूरस्स्यात् क्रूरप्रह्युतो यदि ॥ प्रह्योगावलोकाभ्यां राशिदंते प्रहोद्भवस् । फलं ताम्यां विहीनोऽसौ स्वभावमुपस्पति ॥

इति । यहदृष्टियोगाभ्यां राशीनां स्वभावानिवर्तनात् यहभावसंश्रयाच्च मध्यमफलास्ते स्युः । ततश्शुभिक्रयासु याह्याश्च भवन्ति । मेषकीटयो-स्त्वितक्रौर्यात् शुभाऽऽलोकाऽऽसनाभ्यामपि स्वभावो न निवर्तते इत्याह— ऋते घरणिनन्दनमन्दिराभ्यामिति । मेषकीटौ शुभदृष्टियुतावपि न याह्यौ । यतस्तात्कालिकात् प्रकृतिरेव गरीयसी ।

शुद्धेषु राशिषु कत्यं रछेनोक्तं—

मेषोद्ये प्रकुर्यात् नृपाभिषेकाऽऽहवं विरोधं च ।
ध्यात्वा करसंबन्धं साहसयुक्तं च यत्कर्म ।
वृषभोद्ये विवाहं ध्रुवकर्मे तथा गृहप्रवेशं च ।
कन्यावरणं दानं क्षेत्राऽऽरम्भादिकं कुर्यात् ।
मिथुनोद्ये तु कुर्यात् विज्ञानकलाऽऽश्रयं व्रताऽऽदेशम् ।
वृषभोद्ये यदुक्तं तच्चापि विभूषणाऽऽद्यं च ।

नारदः--

वापीक्षपतटाकादिवारबन्धनमीचने । पौष्टिकं लिपिलेख्यादि कर्तव्यं कर्कटोद्ये । इक्षुधान्यवाणिक्षण्यं कृषिदेवादि यत् स्थिरम् । साहसाऽऽहवभूषाऽऽद्यं सिंहलग्ने प्रसिध्यति । मेषोद्यवत्सर्वे कर्तव्यं सिंहराश्युद्ये ॥

इति । रछः--

विद्या शिल्पोषधं कर्म भूषणं च चरस्थिरम् । कन्यालमे विषेयं तत् पोष्टिकाखिलमङ्गळम् । कृषिवाणिज्ययानाश्वपशूद्धाह्वतादिकम् । तुलायां निखिलं कार्यं तुलाभाण्डाऽऽश्रितं च यत् ।

कन्यावत् तुलायामिति रङः—

स्थिरकमीखिलं कार्यं राजसेवाभिषेचनम् । कृषिवाणिज्यचौर्यादि कर्तव्यं वृश्चिकोदये । व्रतोद्वाहप्रयाणाश्वगजशिल्पकलाऽऽदिकम् । चरस्थिरास्त्रशस्त्रादि कर्तव्यं कार्मुकोदये ।

रछ:--

मकरोद्ये तु कुर्यात् कर्मे क्षेत्राऽऽश्रयं स्थले यात्राम् । उदकस्य बन्धमोक्षो दास्युष्ट्रचतुष्पदाम्बुचरणं च ।

नारदः-

कृषिवाणिज्यवश्यादि शिल्पकर्म कलाऽऽदिकम् । जलयात्रास्त्रशस्त्रादि कर्तव्यं कलशोदये । वतोद्वाहाभिषेकाम्बुस्थापनं सन्निवशनम् । भूषणं जलयात्राश्वकर्मे मानोदये हितम् । मेषादिषु विलग्नेषु शुद्धेव्वतत् प्रसिद्धचिति । क्रूरग्रहेक्षितेव्वेषु संयुतेषूत्रमेव हि ।

इति । शुद्धे सौम्यराशाविष पापांश उद्यति ऋरकर्म कार्यं । पापराशौ शुभांशे सौन्यकर्मेव राशेरंशस्थैव प्रावल्यात् । यस्मात् भरद्वाजः—

राशेर्निरिष्ठो देकाणो देकाणादंशको बली । तस्माञ्जयबलं सर्वमंशकेष्वेव तिष्ठति । इति । तिथीनामुत्तममध्यमविभागमाह—

त्रिंशत्प्रारम्य शुक्रप्रतिषद्मिह याः सन्ति तास तिथीनां क्षोणीवह्नयङ्गबाणस्मरविशिखशस्त्रह्मस-ङ्ग्याः क्रमेण । विज्ञेयाः कष्टमध्योत्तममाहिततम-श्रेष्ठमध्यातिकष्टाः कृष्णे पक्षे त्रयोदश्यपि बालि-नि विधावुत्तमा कैश्चिदुक्ता ॥

स्मरिवशिखाः पञ्च, ब्रह्माणि पञ्च, इह मासे मासे शुक्क-प्रतिपद्मारम्यामावास्यान्ताः त्रिंशत्तिथयः । तासु क्षोणीवह्नचादि-सञ्ज्वचास्तिथयः कष्टमध्यादिका भवन्ति । उक्तं च सर्वसिद्धौ—

> विश्वतिस्थिथयो मुख्याः शुक्कप्रतिपदादयः । मध्यमाः परतः पञ्च पञ्चातः परतोऽचमाः ॥

इति । इह शुक्कप्रतिपदमुख्याऽभिहिताऽपि---

" दर्शस्त्वपार्श्वसहितो वर्ज्यः "

इति वचनात् कष्टेत्युक्ता, द्वितीयाऽऽद्यास्तिस्तस्तु चन्द्रस्थारपबल-त्वात् मन्या उक्ताः, एकादश्याद्याः पञ्च चन्द्रस्थातिबलताच्छ्रे- ष्ठतमाः, कृष्णे त्रयोदश्यपि चन्द्रस्य स्थानादिबलतंपत्यां सत्या-मुत्तेमिति कैश्चिदुक्ता, तथा चाडऽहुः—

चन्द्रेऽपि बलसंयुक्ते प्नितास्सर्वकर्मसु । कृष्णपक्षे तु ते त्रिशे त्रयोदश्यि कैश्रन ॥ इति । अपराह्मी वर्ज्य इयुक्तं अत्राऽऽह-

षद्भिस्सूर्यस्योदयात्राडिकाभिः प्रातःकालस्स-**द्गवश्चाथ प**र्द्धिः । मध्याह्नाऽऽख्यास्तद्ददन्योऽपराह्न-स्सायंकालश्वात्र निन्द्यी परी हो।।

सूर्यस्यार्घोदयादृध्वं षड्वाटिकाः प्रातःकालः । तदनन्तरं षड्-वाटिकाः सङ्गवः । ततः परं षण्मध्याह्वाल्यः । तहत् मध्याह्वात्परं षडपराहः । तस्मात्परं षड्घटिकाः सायंकालः । अत्रेषु पञ्चसु द्वी परी-सायाद्वापराह्वी निन्छी, यद्यपीह षड्घटिका इति काल-प्रमाणं नियमितं, तथाऽपि दिनपञ्चमांश एव ॥

> यथोक्तं विष्णुपुराणे । लेखात्रमृत्यथाऽऽदित्ये त्रिमुहूर्तगते तु वै ॥ प्रातःकालस्तत्र भागः सोऽह्रस्तु पञ्चमस्स्मृतः । तस्मात्प्रातस्ततःकालात् त्रिमुहूर्तस्तु सङ्गवः ॥ मध्याहस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात्कालातु सङ्गवात् । तस्मान्माध्याह्मिकात्काछादपराह्म इति स्मृतः ॥ अपराह्माद्वचतीतात्तु कालस्सायाह्म उच्यते ।

इति । केचित् पूर्वोक्रमध्याह्वापराह्यांस्त्रीन्यामानाहुः, तथाचाऽऽग्नेयस्मृतौ-उद्यप्राह्ममध्याह्वापराह्वान्त्याह संज्ञिताः।

यामाः पञ्चेवमह्रस्तु प्राड्मध्यान्त्यास्त्रयोऽपरे ॥

नारदश्य--

त्रिघा विभज्य दिवसं तत्राऽऽदौ कर्म दैविकम् । हितीये मानुषं कार्यं तृतीयेंऽशे च पैतृकम् ॥

इति । भरद्वाजः ---

मानुषे चैव देवे च कर्तव्यं शुभिमच्छता । पितृकाले ह्यनुप्राप्तं नैवं(व)कुर्यात् शुभं बुधः ॥

इति । अत्राऽऽहुः---पूर्वोद्धश्जुमः अपराद्धो वर्ज्यः मध्याद्धो मध्यमः। तस्य पूर्वेमर्थं पूर्वोद्धः अपरमपराद्धः इत्यन्ये, तथाचोक्तं---

> दिने प्रभातो गव्यश्च पूर्वाह्मश्चापराह्मकः । रोहिणश्चाऽऽसुरश्चेति षड्यामास्स्युर्दिनस्य वै ।

इति । एतदुक्तं भवति — उदयादूर्ध्वं दशघटिकान्तः श्रेष्ठतमः, दि-नार्धान्तरश्रेष्ठः । 'पूर्वो ह्ने सर्वकर्माणि ' इति वचनात् । दिनार्घात्परं घटीत्रयमवश्यकार्थे गुणातिशययोगे वा ग्राह्मम् । घटिकापञ्चकमप्य-त्यापदि ग्राह्मम् । अन्त्यस्त्रिभागो वज्यैः ।

घूमादीनामपवादमाह--

दिनकरवारसमेतं नक्षत्रं सज्जुभवारयोगं वा । उपचयसंस्थो वाऽकों दोषानपहरति पश्च धूमाऽऽदीन्

सूर्यवारेण युक्तं सन्नक्षत्रं, अथ वा शुभवारयोगैर्वारसिद्धामृताद्यैः युक्तं नक्षत्रं वा, लग्नोपचयस्थोऽकों वा, एतद्योगत्रयमप्यविशेषेण धूमाऽऽदि-पश्चदोषान् हरति । अत्र गुरुः——

> जुमयोगेऽर्कवारेण नक्षत्रे सिहतेऽथ वा । योगा धूमाऽऽद्यः पञ्च भङ्गमृच्छन्ति दोषजाः ॥

इति । सौराणामपवादमाह—

भरहाजः प्रोचे वपुषि हाहिह्युकेसम्बुते
कमात् सौरेष्वाद्यौ प्रशममयतोऽन्यौ गुरुयुते ।
क्रमेणाद्रयंकोवींवस्तुतिथिषु सर्वेऽप्यथ पुनस्स्ववर्गस्वोच्चस्थे सङ्गुभवृद्धि भानाविति गुरुः ॥

भूकम्पादिषु सौरदोषेषु सत्सु ठके शशिक्षक्षियेते सित क्रमादाद्ये-भूकम्पोलकापाती प्रशामपक । अन्यो-अह्मर्पड-ध्वनो तु गुरूद्ये प्रणश्यतः । शशिदृष्ट्या भूकम्पः, शुक्तद्द-ष्ट्या उलकापातः, गुरूद्येन ब्रह्मर्पडध्वनी इति भरद्रान आह । तथा च तद्वावयं—

> दण्डव्वजो गुरोर्छ्ये कम्पश्चन्द्रनिरीक्षणे । उल्का शुक्रेण संदृष्टे छये वा स्युश्शुभावहाः ॥

इति । अथवैते चत्वारः ऋषण सप्तम्यादितिथिषु चतुर्षु नश्यन्ति, सप्तम्यां सितायामसितायां वा भूकम्यः, नवस्यामुल्कापातः, प्रति-पदि ब्रह्मदण्डः, अष्ठम्यां ध्वज इति । उक्तं च—

> अप्टम्यां च नवम्यां च सप्तम्यां प्रतिपद्मपि । ध्वनोल्काकम्पदण्डास्स्युः शुभास्तज्ज्ञैरुदाहताः ॥

इति । गुरुस्त्वाह—स्ववर्गस्थे स्वीचस्थे वा शुभटछे वा भानौ तचा-रभवाः सर्वे सौरा नश्यन्तीति । तद्वाक्यं—

अर्के स्ववर्गे तुङ्गस्थे शुभग्रहनिरीक्षिते । भूमिकम्पादयस्तीरा दोषा भङ्गं ययुसादा ॥ Vidyamadaviam. अयमेव विद्युदादीनामप्यपवादः, प्रागतिनिन्द्यनयोक्ता नाड्योऽ पि शुभारस्युः । अर्थप्रहारादीनामपवादमाह—

अर्घप्रहारकस्य प्रथमे यमकण्टकस्य मध्यगते । अन्त्ये गुळिकस्य हे नाड्यो नियमात्परित्याज्ये ॥

अर्धनहारादीनामादिमध्यान्तेषु हे एत घटिके नियमेन वर्जयेत् न सर्वं, केचित् तदंशं त्रिभिविभज्यार्धप्रहारे आद्यमंशं यमकण्टके मध्यं गुळिके अन्त्यं त्यनन्ति । एतदाचार्यस्य नाभि-मतं, यस्मात् गुळिकः क्षणिकः तत्काळश्च सूक्ष्मः बहुसिद्धान्तः मेदाहुरवगमः । तस्मात् तत्स्थूळकाळमभिन एकैका घटिका निन्द्या। अन्याऽपि तहदिति । तत्काळोऽप्यपवादैभीज्यत इत्याह—

वारशो गुळिकं निहन्ति वलवान् मूर्तौ स्थिन तस्सद्ग्हो विक्षेत्रा यमकण्टकस्य च शुभः केन्द्र-त्रिकोणस्थितः । पीयूषित्विष सात्क्रियाजुषि शुभै-हिष्टे शुभांशस्थिते लग्नेशे च बलान्विते सित सतां नार्धप्रहाराद्मयम् ॥

तहाराधिपीतेर्प्रहश्शुभः तत्काले बलयुक्तश्च स यदि लग्नगती गुळिकं निहन्ति ।तथा च गुरुः—

> सीम्यब्रहेऽथ वारेशे वलाको लग्नगेऽपि वा । गुळिकोदयदोषोऽत्र नास्तीति श्रुतिचोदितम् ॥

एतद्योगत्रयमित्यन्ये। इयं गुळिकं निहन्तीत्यिविशेषोक्तिः 'अन्त्ये गुळिन

कस्य' इति विरोषोक्तरबाधिका । अतस्तदंशरोषस्यैवायमपवादः। तथाचात्रिः—

गुळिकांशः शुभश्शेषो वारेशश्रेच्छुमो वली ।

इति। न तस्कालस्यापवादापवाददर्शनात्, लग्नाचन्द्राद्वा केन्द्रस्थितो वा बलाढचः शुभो यमकण्टकस्य विक्षेप्ता नाशकः। तथा च गुरुः—

> त्रिकोणे कण्टके वाऽपि शुभास्थिष्ठेत् बलान्वितः । यमकण्टकदोषोऽपि नात्र स्याचन्द्रलग्रयोः ॥

इति । चन्द्रे शुभांशस्ये सत्कर्मयुक्ते यथासंभनं शुभैर्दछे एको योगः, लग्नाधिपे सति शुभे बलाढचे स.यन्यः, एतद्योगद्वये सनां बलाबलिनि श्चितिधियामधीनहाराद्वयं नास्ति । एतद्योगद्वयमधीनहारं नाशयति ।

> शुभकर्माण चन्द्रे वा शुभांशे शुभवीक्षिते ॥ नार्धप्रहारदेशोऽस्ति लग्नेऽर्के च बलान्विने ।

इति सर्विसिद्धो । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । अयं योगोऽपि यमकण्ट-कस्य नाशक इति । तथा च गुरुः—

> शुभकर्मरेते चन्द्रे शुभांशे शुभवीसिते। यमकप्टकसंभूतो दोषो नैवात्र विद्यते॥

गुरुण। अपवादान्तरमुक्तं—

शुभांशे शुभकार्यस्थः शुभकेन्द्रे शुभेक्षितः । लग्नादुवचये चन्द्रो यमकण्टकनाशनः ॥

'इति । दिनमृत्युरोगभङ्गमाह--

निशायां क्षीणसामध्ये दिनमृत्युदिनामयौ।

न तौ दोषाय कल्पेते दिवाऽपीन्दौ बलान्विते ॥

दिनमृत्युदिनरोगो रात्रौ दुर्बेळो । दिवैत्र निन्दितौ न रात्रावि । त्यर्थः । चन्द्रे बलान्विते दिवाऽपि दोषाय न कल्पेते । शुभकर्म दूष । यितुं न प्रभवतः । गुरुः—

> एपु नक्षत्रपादेषु दिवैवाह पितामहः । िशि नेदंशकेनैव सृत्युरोगाः प्रकीर्तिताः ॥ दिनसृत्युसमाख्याश्च दिनरोगसमाहयाः । चन्द्रो बलसम्प्रश्चेत् दिवसऽपि न दोपदाः ॥

इति । निशामृत्युश्च दिवा न दोषः । रात्राविष चन्द्रबले न दुप्यति । यथाऽऽहात्रिः---

शुभक्रच्छुभस्येनदुरंशेंऽशे दुर्बेलेऽशुभः । इति । विधिमङ्गमाह—

विष्टिर्यदाऽहानि तिथरपरार्धजाता पूर्वार्धजा निशि तदा शुभदा च पुच्छे। तत्कालभूरपि निजो-दययामवाह्या याह्या शुभे बलिनि लयपतौ नि-जांशे॥

तिथिनिशासागजा विष्टिदिवा चेत्, दिवामागजा निशि चेत्, तदा सा शुभदैव । तथा च गुरुः—

> दिवा परार्थना विष्टिः पूर्वार्थीत्था यदा निश्चि । तदा विष्टिश्शुभायेव कमलासनमाषिता ।

एवं प्रतीपगत्यैव यामे (sति) पि शुभरा भवेत् । विष्ठिन्नेमधिपस्सीम्यो निजांशे बलवान्यदि ॥

इति । अन्ये त्वाहुः--

¹स्वपक्षे विहिता विष्टिः परपक्षे तु भद्रिका । कार्यनाशकरी विष्टिभेद्रा सर्वत्र मङ्गळा ॥ परीता विपरीता वा विष्टिः पुच्छे शुभैव सा ।

तथा-

प्रिथिच्या यानि कार्याणि सुशुभान्यशुभानि वा । तानि सर्वाणि सिद्धचन्ति विष्टिपुच्छे न संशयः ॥

इति । अथ तत्कालमूः दिवामागजा दिवानिशाभागजा निशि प्राप्ताऽपि स्वोदययामं परिहृत्य कदाचित् शुभा स्थात् । यदा लग्नाधिपश्शुभो बलवान् स्वांशे वतिते तदा स यामोऽपि प्राह्म इत्यन्ये । तथा च कालदीपे—यामोऽपि तत्स्थो बली सौम्यरा-शाविति । स्यादेतत्—विष्टिर्न प्राह्मा अपवादापवादात्

परीता विपरीता वा विष्टिर्नेष्टा तु मङ्गले ॥

इति नारदवचनाच । नैतत् । अपवादापवादस्य विष्टचुदययामाः
पवादबाधनेन चरितार्थत्वात् । ततश्चायमर्थस्सिद्धः—विपरीता सदा
प्राह्मा, परीताऽपि स्वापवादे सति, स्वोदययामस्तु न कदाचिदिति ॥
दुष्टयोगभङ्गमाह—

प्रातःकाले वारयोगो बलीया-नाचे वारेशांश एवेति केचित् ।

¹स्वपक्षोऽभिहिता.

मध्याह्नान्तं योगमाहुस्त्रयाणाः मन्ये योगास्तद्वियोगावसनाः ॥

तिथिभिर्नक्षत्रैवीराणां योगो वारगेगः । स प्रातःकाले बल-वान् । सङ्गवेऽल्पबलः । ततः परं दिवा रात्रौ च दुर्बल इत्य-र्थिसिद्धं । केचित् आद्ये वाराधिपांशे यामार्धवारये।गो बलवान् ततः परं दुर्बल इत्याहुः—

> काळकूटान्वया योगाः सर्वे ते गुणनाशनाः । यामार्थात्परतस्तेवे पृष्टिदाश्शुभकर्मसु ॥

इति । त्रयाणां योगं—वारक्षितिथियोगं मध्याह्वान्तं बलाळ्यमाहुः । अन्ये तिथ्यृक्षादिवियोगान्ताः—तेषामन्यतमविरामे योगफलं नास्ति । वारयोगानामपवादान्तरं गुरुराह—

> एषू क्तयोगदोषेषु वारेशे बलवर्जिते न दोषायेव योगास्स्युः शुभकर्मात्र शोभनम् । वारेशे बलसंयुक्ते स्वोच्चे रश्मिसमन्विते नक्षत्रेशदशा युक्ते दुष्फलं घोक्तवद्भवेत् ॥ यद्यप्युक्ताः शुभा योगाः न दद्युः स्वं फलं निशि ।

प्रथमयामार्चे वारक्षयागानामपवादोऽत्रिणोकः-

शुभेषु वज्यी बहवरशुभदृष्टचा विवर्णिताः । बलिना चेत्तदंशेशचन्द्रा दोषान् हतश्शुभा ।

तिथिवारयोगापवादश्च ---

पसयोरप्रिदास्बेता वारेशो बलवान् न चेन् । बलवद्भिश्युभैर्देष्टाः(१) दग्धदोषदाः ।

गुरुश्र-

दग्धयोगश्च बारेशे बलैरिखे न दीव्यते यथा महार्णवे वहेः कणा नश्यन्ति पातिनाः ।

नारदश्र--

ये दोषास्तिथिवारोत्था योगा नक्षत्रवारजाः । भ्रूणपङ्गवरो देशे वर्ज्या नान्यत्र दोषदाः ॥

इति । दग्धराश्यपवादमाह-

गोकन्याकर्किमीनस्यः शुभदृष्टदशुभांशगः। उद्धर्ता दग्वदोषाणां बली कुमुबान्ववः॥

वृषादिराशिषु स्थितः तेषु शुभनवांशगतो यथासंभवं शुभ**दष्टो** बलवांश्चन्द्रो राशीनां दग्धदोषस्य नाशकृत् । उक्तं च—

> कन्यावृषकुळीरस्यः शुभांशे शुभकर्मकृत् । चन्द्रो बलसमप्रश्चेत् दग्धदोषान् व्यपोहति ॥

इति । कूपभङ्गमाह-

आपूर्यमाणो बलवान् हिमांशु-जीवेन दृष्टो यदि वा सितेन । वर्गीत्तमे वा तिथिवारकाणा-मापूरयत्येव हि निम्ननाडीः ॥

शुक्रपक्ष वर्षमानः स्थानादिबलसंपन्नः जीवशुक्रयोरन्यतरेण दृष्टो, यद्वा यत्र तत्र राशौ वर्गोत्तमांशगतो वा चन्द्रास्तिथि- नक्षत्राणां निम्ननाडीरापूरयति—निम्नदोपं हरतीत्यर्थः । उक्तं च—

तिथिनक्षत्रानिम्नानि पूर्येद्वलवान् विघुः । शुभन्रहेक्षितश्चन्द्रदशुभकर्माणे संस्थितः ॥

इति । कालगण्डभङ्गमाह—

विनिहन्ति कालहोरा शुभस्य काळाह्वयं दो-षम् । कालेंऽशकस्तृनीयो विनिन्दिता गण्डसंज्ञिते प्रथमः ॥

तत्काले शुभकालहोरा यदि स्यात् सूर्यादिवारेषु कालांशा-ल्यं दोषं नाशयति । कालनक्षत्रे तृतीयोंऽशः मन्दास्द्रदनक्षत्रादा-रभ्य सप्तविशोंऽशो निन्दितः । गण्डनक्षत्रे प्रथमः मन्दाकान्त नक्षत्रणदात् सप्तसप्ततितमोंऽशः ॥

अत्र कण्टकादिभङ्गमाह---

स्वोच्चे स्ववर्गे च यदा प्रविष्ठौ हष्टौ यदा भास्करभूमिपुत्रौ। तौ कण्टकस्थूणसमाह्वयाना-मेकोत्थमेको हरति द्विजं द्यौ॥

स्वोचे स्ववंगे वा स्थितः शुभैर्दष्टस्सूर्यः शुभश्र कण्टकस्थू-णसज्ञकदोषाणामेककतमेको हरित । द्वाभ्यां कृतं ताहशो हो हरतः । सूर्यः कण्टकं, कुनः स्थूणं रक्तस्थूणं च, तो कण्टकस्थू-णमित्यर्थः । अत्र गुरु:--

भास्कराङ्गारकी स्वीचस्ववर्गस्यी जुमोक्षती । कण्टकस्थूणनामाऽपि दावी गच्छति भङ्गताम् ॥

इति । सूर्यकुनयोरेकोऽपि कण्टकस्यूणं हरतीत्यन्ये—एतस्मादामूल-संख्याया मत्रत्वात्, दोषस्तु द्वाभ्यामामूलमङ्खचाद्वययोगनात इति । पाताख्यो हरास्त्रदोषश्च सौराष्ट्राविदेशेष्वेव दुष्टः । तथा च नारदः—

> सौराष्ट्रसाल्वदेशेषु पातितं मं विवर्जयेत् । कलिङ्गवद्गदेशेषु पातितं ममुपम्रहम् ॥ बाह्यककुरुदेशेषु चान्यदेशे न दृषितम् ।

इति । दग्धराश्यादिमङ्गमाह—

ये दग्वाख्या राशयो मृत्युसंज्ञाः ये च प्रोक्तास्स्वामिद्दछादशुभास्ते । वागीशेन स्फीतवीर्येण द्रष्टा-स्तंयुक्ता वा सर्वकार्येष्विनिन्धाः ॥

तत्काले लग्नगताश्चन्द्रयुता वा दग्धमृत्युसंज्ञा राशयः स्वस्वा-मिना शुभेनान्येन वा दृष्टाः शुभास्त्युः । बल्छिन गुरुणा दृष्टा युक्ता वा सर्वेकर्मेसु शुभाः ॥ तथा च गुरुः —

> दग्धमृत्युसमाख्याश्च होरास्वामिटशा युताः । बलवहुरुटष्टा वा युता नैते स्वदोषदाः ॥

यद्वा मृत्युयोगकृत्सु फलाळोषु च तदभावः । तथा च गुरुः— प्रहयोगेन योगास्ते मृत्युदा ३ति कीर्तिताः । ते सर्वे बलसंयोगे प्रहेरेवान्यथाऽन्यथा ॥ इति। अन्धमङ्गाह— हन्ति शुभो बळवा शाक्षिकेन्द्रे द्वीक्षणभान्युदितोऽन्यज्ञद्देश्वद् सौम्यनवांशकगर्स्नुकृद्दिन्दु-स्तत्र सळोचनभा(न्यु)म्युद्देश या ॥

द्विनेत्रक्षेगतो बलवान् गुनश्चनद्रकेन्द्र स्थितः अन्धनक्षत्रदोपं हन्ति, शुभांशकगतः सत्कर्षकृत् चन्द्रः तथा तत्काले प्राग्लग्ने द्विनेत्रनक्षत्रोदयश्चान्धदोपं हरति । तथा च गुरुः—

> चन्द्रकेन्द्रे शुभिस्तिष्टेत् हिनेत्रक्षे बन्धन्दितः । चन्द्रेऽन्धर्भगते वाऽपि न दोपरशुमकर्मणि ॥ शुभांशकगतश्चन्द्रश्शुमकर्मरतो यदि । इन्द्रसकस्य नान्यस्यं हिनेत्रक्षेद्येऽपि च ॥

अत्रिश्च-

शुमकत् शुमहत्रस्वोचे साम्नुस्थोऽप्यन्यदीपहा ।

गुरु:--

चन्द्रे स्व शुभतारास्ये शुभद्धे शुंभे रते । यात्रादावन्धकाणक्षेदोषा नाशं प्रयुक्तयम् ॥

सर्विसिन्धौ च—

उपनेत्रा(न्थ्यं)म्बुभांगेशो लक्षार्थत्रिव्ययायगः । शुभकर्मा वली वेन्दुः शुभी वा केन्द्र उचगः ॥

बिधरादिभङ्गश्चात्रिणोक्तः--

स्वीत्तमांशे विथोः केन्द्रे गुरुरन्थादिदीपहा ।

इति । दग्धादिदोषाः सङ्गिष्टिक निन्दा इति नारदः— तिथयो मासदग्धा ये दग्धलमानि बान्यपि । भध्यदेशे विवङ्गीनि न दूष्याणीतरेषु तु ॥ पङ्ग्वन्यकाणलभानि साम्प्रत्यातः राद्ययः । गौदमागध्योस्त्याक्यास्यव्यदेशे न गहिताः ॥

इति । जन्मक्षेक्त्यमाह-

आदो जन्मिन नव्यभुक्तिवसनाळङ्कारपुण्यैर्वि-ना सर्व कर्म शुभागुशं परिहरेद्धुक्तिं नवां चार्भकः। हित्वाऽभ्यङ्गविधिं निषेकसहितं क्षीरं च शिष्टं गुभं कार्यं कार्यमुशन्ति के चिह्ययो जन्मर्क्षयोरन्ययोः॥

नव्यानामन्नानां भुक्तिः, नव्येषु स्वर्णपात्रेषु भुक्तिर्वा न-व्यमुक्तिः । नव्यवस्त्राणां वसनं, नव्यहम्यादिषु निवासश्च नव्य-वसनं । नवाभरणानां धारणं, नवपुष्पाद्युषभोगश्च नव्यालङ्कारः । पुण्यानि दानहोमादीनि च एतानि प्रथमजन्मर्सेऽपि कार्याणि । तदन्यानि सर्वाणि शुभकर्माण्यशुभकर्माणि च वर्जयेत् । अत्रात्रिः—

गान्धर्वं भूषणं वस्त्रं नवकांस्यादिभोजनम् ।
आरोहं नवयानादेश्शान्तिकं पौष्टिकं गृहम् ॥
दानं च मन्त्रप्रहणं विद्याष्ट्रणविमोचनम् ।
यच्चान्यदीदृशं कर्भ जन्मारुवर्केष्वपीष्यते ॥
सीमन्तस्रीरयात्रायुग्भेषनोद्धाहपैतृकान् ।
त्येनेज्ञान्ममु चान्यर्के कर्मर्लेषु गतिश्शुमा ।
गर्भिणीगर्भसंस्कारं जन्मनाममु वर्जयेत् ॥

बालप्रथमान्नभुक्तिं च त्येनेत् । यत् गुरुः —

जन्मर्क्ष परिहर्तव्यं विशेषाङ्गोनने शिशोः।

इति । कर्नाघानर्सयार्विवाहादि सर्वं शुभं कुर्यात्, संस्कारजन्मनामसु वर्जयेत् । उक्तं च—

मुक्तेकं जन्मकें हे तारे जन्मनामनी शुभेद । उपनीतानुद्वाहे प्रयाणभुक्तचोः प्रवेशे च । इति । के चित् तयोः तैलाम्यङ्गस्त्रीसङ्गस्त्रीराणि न कार्याणीत्याहुः। तथा च गुरुः—

> पश्चदश्यां चतुर्देश्यामष्टम्यां च त्रिजन्मिन । व्यवायं क्षोरतेलं च वर्जयेद्दन्तपावनम् ॥

इति । क्षोरादिव्यतिरिक्तं सर्वं शुभकार्यं कार्यामिति सिद्धम् । विपदादिभङ्गमाह—

सर्वानेव वियत्तिपश्चमवधेष्याचेषु भेष्वंशकान् मध्येष्वाचतुरीयपावकामितानन्त्येषु वा वर्जयेत्। सत्कर्मा बळवान् ज्ञुभांशकगतो दृष्टश्च सौन्यर्प्रहैः जन्मप्रत्यरजान् विपद्दधभवान् दोषान् विधुर्वाघते॥

आदोषु विपदादिमेषु सर्वानंशकान् वर्जयेत्, मध्येषु विपदि मथमं प्रत्येर चतुर्थं वधे तृतीयमंशं त्यजेत् । अन्त्येषु तदंशांस्त्य-जेद्दा न वा । अत्रायं विभागः—शुभांशात् न त्येतेत् । पापांशांस्त्य जेदिति । तथा च सर्वसिद्धौ—

विपत्प्रत्यरनेधर्सेष्वाद्येषु सकलांस्त्यजेत् । मध्येष्वाद्यन्त्यवहृचंशानन्त्येषुग्रांशकांस्त्यजेत् ॥ केचिदाहुः—आद्येषु जन्मादिषु पूर्णफलं मध्येषु अर्धफलं अन्त्येषु पादफलमिति । तथाचाऽऽहुः—

जन्मक्षेमाद्यं सकलं तद्र्षं द्वितीयमर्थं च ततस्तृतीयम् । संपत्तिभादिष्वपि तद्वदेव फलं स्वनामानुगुणं गृणान्ति ॥

इति । अन्ये त्रीन् कल्पानाहुः—विषदादिषु सर्वानंशकान् त्यजेदि त्याद्यः । आद्यन्तमध्यांशानिति मध्यः । वर्जयेत्र वेति चरमः । तेषु प्रथमो मुख्यः प्रागुक्तो प्राह्यः । मध्योऽपि सापवादः, तथा च नारदः—

> अभिनित्कथिते गागे लग्नस्ये कण्टके गुरौ । विपत्प्रत्यसमंज्ञक्षे वधर्के च क्रमाहिना । चन्द्राञ्ख्यमचंशकेश्शेषाः ऋशांक्षा दोषनाशनाः ॥

इति । मध्यस्त्वापदि निरपवादोऽपि ब्राह्म इति गुरुः— आद्योंऽश्रो विपदि त्याज्यःत्रत्यरे चरमोऽशुमः । वधे त्याज्यस्तृतीयोंऽशः शेषास्तेष्वपि शोमनाः ॥

इति । चरमोऽप्यापदि सापवादे आहाः, यस्मात् सुकर्मा पक्षादिः बलाद्यः शुभनवांशगतः शुभदृष्टः जन्मविपदादिकतदे।पान्नाशयति । तथा च गुरुः—

> बलकमेरतश्चनद्रो बलवान् शुभनीक्षितः । विपत्प्रत्यरनेषक्षेत्रिजनमर्कोत्यदे।पहा ॥

विधिरतेऽपि--

विरादि प्रत्यरे चैव यदि मित्रांशको भवेत् । जन्मलप्रपयोश्चापि चन्द्रशस्तश्शुमेक्षितः ॥

कालदीपे--

सित्क्रयो बलयुत्तस्युविधितः रशोभनांशशुभभावगश्यक्ति । जन्मधिष्णयविषदादिषापयुक्त ताः प्रकाशयमकण्टकादिमे ॥

इति । जन्मदिनेऽपि मङ्ग्रुखादि कार्थं । यत् भरद्वाजः— सर्वारम्भो न कर्तव्या वासा जन्मदिने सदा । मङ्गरुयानि प्रकुर्वति भूषणाच्छाद्वाति च ॥

इति । अष्टमराशिविनाशर्भभङ्गमाह—

स्वकीयजनमाष्टमराशिषत्यो-मैत्यां न जनमाष्टमराशिदोपः । जनमेशकभेश्वरमित्रभावः क्षिणोति वैनाशिकदोषमुद्यस् ॥

कर्तुर्जन्मराशिस्वामिनः तदष्टमराशिस्वाभिन्द्रः तात्क'लिकमैत्रचां मत्यां अष्टमराशिदोषा नास्ति । अत्र गुरुः—

> जन्मेशाष्टमराशीका मिथी वित्रे यहा तदा । अष्टमक्षीदयोत्यं यत् होपं नश्यति भागतः ॥

अयमेव जननलमाष्ट्रमराहोरपि मङ्गः अप्टमचन्द्रस्यापि । यत् गुरुः -जन्मेशमृत्युराशीशा मियो मित्रे यदा तदा । जन्माष्ट्रमक्षेचन्द्रस्थदोषी मङ्गत्वमावजेतु ॥

तयोरेकाधिपत्येऽपि दोषाभावः । यद्त्रिः——
जन्माष्टेशैक्यमैत्रे वा स्वोचे वाऽष्टेन्दुदोषहा ।

द्वादशराशेरपि तद्वद्रङ्गः । पष्टस्तद्मांवऽाप शुभः यदित्रः---

षडष्टान्त्यांस्त्यजेद्राशीन् यात्रोद्धाहक्षुरेषु च । तथा-जन्मराशीशस्य कर्मराशीशस्य च गत्कालिकमेत्रचां वैनाशिः क्षेयोगो नास्ति । तथा च गुरुः—

जन्मकर्मर्कनाथी हो निथो नित्रे यदा तदा । वैनाशिकांशकर्सीत्यदोषा मङ्गं ययुक्तदा ॥ इति । केचित्रेसर्गिकमेत्रीमुपादायाहुः, नैतत्, सर्वेषां मिया नैसर्गि-कमैत्रचमानात् । एकार्गळमङ्गमाह हास्याय्—

यि शाहीरथी तारायुग्मे हितीयतृतीयकौ प्रथमचरमौ वांऽशौ प्राप्तौ कमात् बलवांस्तदा। प्रशिथिलवलः प्राङ्गैरेकार्गळः कथितोऽन्यथा। कतिचिद्य तं दोषं शंसन्त्यवन्तिषु केवलम्। बलिनौ शुभवर्गगतौ स्ववर्गगौ या शुभैप्रहेर्दृष्टौ। एकार्गळदोपहरौ रविशाहीनाविति वदन्यन्ते।

चन्द्राको स्वाकान्तनसत्रयोः एको द्वितीयमन्यस्तृतीयम्, अथै-कः प्रथममन्यश्चरममंशकं यदि प्राप्तौ तदेवेकार्गळस्य प्रावल्यं। अन्यथान् तयोरंशकस्थितिव्यत्यये तस्य दौर्वल्यम् । अत्र प्रागुक्तं चक्तं विछिख्य चन्द्राक्तिश्चान्ततारारेखे पादसङ्ख्यया चतुर्था विभज्य चन्द्राको स्वाका-नतारांशकयोन्यंस्य गणिते यद्युभावेकतारापादरेखागतौ स्तः तदै-कार्गळः प्रवलः। यदा तु भिचतारापादरेखागतौ तदा तयोरन्योन्य दृष्टिपाताभिश्चाताभावाद्वेलः। अथ केचिदेप दोषोऽवन्त्यादिदेशेष्वेव दुष्ट इत्याहुः । अन्ये पुनरेषं बदन्ति—बलिनी शुभपडुर्गमती वाऽर्क-चन्द्री शुभग्रहेर्टेष्टी यदि स्तः तदेकार्गळं नारायतः इति । अत नारदः—

> ¹एकार्गळं समाङ्गिश्चेत् तत्र लग्नं विवर्जे**ये**त् । अपि शुक्रे**ड्यसंयुक्तं** विषसंयुक्तदुःगवत् ॥

अन्यज्ञ---

छत्तां माछवके देशे जातः कीनछके तथा । एकार्गळमवनत्यादौ वेधं सर्वत्र वर्जयेत् । सौराष्ट्रसार्वेषु चछन्ति ? भङ्गं कळिङ्गवङ्गादिए पातितं च । उपमाहाख्यं कुरुवाहिकेषु त्यनेच सर्वं तु सवेषमृक्षम् ॥

इति । शून्यादिभङ्गमाह-

स्वस्वामिजीवशशिजैस्सहितं विलयं हष्टं तु वा हरति शून्यविषादिदेशेषान् । केन्द्रत्रिकोणगृहगो बलवान शुभश्र मासर्क्षराशितिथिशून्यभयापहारी ॥

शुभेनान्येन वा स्वस्वामिना जीवेन बुधेन वा सहितं तेषामन्य-तमेन दृष्टं लग्नं शून्यादिविषादिदोषान्—शून्यतिथिनक्षत्रराशिदोषान् विषलग्नांशयोगदोषांश्च नाशयति । तथा च गुरुः—

> मासजून्याह्यास्तारा राज्ञयो वा विषाह्याः । स्वामिजीवनुषेर्देष्टा युक्ता वा नैव दोपदाः ॥

आदिशब्देन विरोधादियोगांश्च नाशयति । तथा सर्वसिन्धौ — छंग्र जीवबुधाधीशैर्द्धेष्टे युक्ते न चापरैः ।

¹ एकार्गळसमां

योगदोषा विनश्यन्ति सप्तदोषास्तथैव च ॥
अथ लग्नस्य केन्द्रे त्रिकोणे वा स्थितो बलवान् शुमग्रहश्च शून्यमासनसत्रराशितिथिदोषात्राशयित । तथा च गुरुः —

केन्द्रिकोणयोस्सौम्यो बलतांश्च स्ववर्गगः ।

मासर्गून्यकृतं दोषं राशिशून्यं च नाशयेत् ॥

चशब्दोऽनुक्तसमुख्यार्थः । तेन दग्धदोषांश्च हरति । तथा च नारदः—

ये दोषा मासदग्धाख्यास्तिथिलग्नसमुद्रवाः

ते सर्वे नाशमायान्ति केन्द्रस्थाने बृहस्पतौ ॥

इति । दृग्धराशिभङ्गमाह-

भास्वन्मन्दाचार्यभौमैर्गृहं यत् दग्धं भूयस्तत्प्रयाति स्वभावम् । मालादच्दाद्वत्तरार्धात्तदर्धा-द्राहूत्पातादाहवाद्येश्च दुष्टम् ॥

सूर्यीदिभिर्दग्वं क्षेत्रं तत्परित्यागदिनात् प्रभृति सूर्येण मासात् मन्देन वर्षात् गुरुणा मासषद्कात् भौमेन मासत्रयात् परं पुनस्त्व-भावमुपाति । यद्गुरुः—

दग्धमर्केण यत् क्षेत्रं त्रिशता दिवसस्तु तत् ।
पूर्वभावमथायाति यथा वृक्षस्तु नीरदैः ॥
वत्सरेण तद्धैन तस्माद्धैन यान्ति ते ।
मन्दजीवकुजैर्दग्धराशयः पूर्वजं गुणम् ॥
बुधनाक्रान्तमं सद्यः प्रकृति याति चित्तवत् ।
राहुचारादिदुष्टं च तद्वच्छुद्यति ॥
VIDYAMADAVIAM

आद्यराब्देन केतुग्रहनकादयो गृह्यन्ते । राहुकेतुभ्यामर्केन्दूपरागेण त्रिनिधेरुत्पातैः ग्रहयुद्धेन तद्वक्रगत्या च दुष्टं वर्षार्थात् स्वभावमेति । प्रहास्तमयदुष्टं मासत्रयात् तथा च गुरुः—

> उत्पातैः पीडितास्ताराष्णणासात्त्रकाति ययुः । राहुकेतुविमुक्तं यत् ग्रहवक्रनिपीडितम् । वत्सरार्धेन शुध्येत ग्रहयुद्धगतं च मम् । यस्मिन् मेऽस्तमयं यान्ति ग्रहास्तद्धं त्रिमासतः । अन्नकाराग्रहेर्मुक्तं सद्यो दोषाद्वचपोहति । मुक्तं शुभग्रहेर्यतत् ग्रकातं त्रिदिनाद्द्वेत् ।

इति । स्वाक्तकालादवाग्दग्धमङ्गमाह द्राम्यां—

दग्धं यद्दक्षं खचरेण भूय-इशुक्रांशुयोगादुपबृंहते तत् । तपावसाने वनमुष्णभासा दग्धं यथाऽऽद्यम्बुनिपातयोगात् । ऋक्षस्य दग्धस्य च दाहकस्य प्रहस्य मध्ये विचरन् हिमांशुः । व्यपोद्य पीडामभिरक्षतीदं बळीव हीनं बळिनोपरुद्धम् ॥

यन्नक्षत्रं प्रहेण दग्वं तद्रहपरित्यागात् परं शुक्रयोगादुपः नृंहते । यथा श्रीष्मान्ते सूर्येण तापाच्छुष्यतरुखतातृणादिकं वनमाद्य- वृष्टचम्बुसेकाद्वधेते तथा प्रहद्ग्यमृक्षं जलात्मकशुकांशुसंपर्काद्ध-धेते। शुक्रेन्दुयोगादिति केचित्, तथा च गुरुः—

> चन्द्रशुक्रसमायोगादुडूनि शुभतां ययुः । विशेषाच्छुकसंयोगात् प्रहमुक्तं सुवृंहते ॥

तथा प्रहदग्धर्शं भुक्ता दाहकप्रहमप्राप्य तयोर्भध्ये विचरन् चन्द्र-स्तसद्ग्रहदाहपीडां निवार्य नक्षत्रं रक्षति । यथा बलिना प्रतिभटेन निवारितं दुर्बलं नरं बलवान् कश्चिदुपमृत्य तयोर्भध्ये स्वयमवस्थाय बलवत्प्रतिभटपीडां निवार्य रक्षति तद्वदित्युपमालङ्कारः । भरद्वाजः—

> ग्रहनक्षत्रयोर्मध्ये यदा चरति चन्द्रमाः । स रक्षति च नक्षत्रं पीडादोषाद्वचपोहति ॥

स्यादेतत् — प्रतिमासं माविनेन्दुना योगेन मान[†] यदि दग्धत्वमपैति तत्कुतः कुजादिदग्धानां त्रिमासादिकालेन शुद्धिरम्यधायीति ? एवं मन्यते—या स्वकालकता शुद्धिः स मुख्यः कल्पः । या शुक्रयोगकता स मध्यः । या चन्द्रयोगकता स कनीयानिति ॥ अथ भौमादीनामित- चारवक्राम्यां राइयन्तरसंक्रमे कृतेऽपि पूर्वाक्रान्तराशिदग्धत्वं न क्येति । यस्माद्रछः —

पक्षं दशाहानि तथैव सार्धं मासं दशाहं खलु षट् च मासान्। भौमादिखेटास्वितिचारवक्षे-देद्युः फलं पूर्वगृहे यदुक्तम्॥

इति । अनुक्तभङ्गाणां केणां चिद्दोषाणां सामान्यमपवादमाह—

यः कुरुते यं दोषं प्रहस्स्वतुङ्गे स्थितस्स्वर्गे वा। सौम्यप्रहेण दृष्टस्स एव तदोषमपहरति॥ यो प्रहो यं दोषमुत्पाद्यति स तदा स्वोच्चे स्ववर्गे वा स्थितः ज्ञुभप्रहेण दृष्टश्चेत् स्वकृतमपि दोषं तं हरति । गुरुः—

> यस्य दोषस्य यः कर्ता स्ववर्गस्वोच्चगो यदि । शुभदृष्टस्स एवास्य भङ्गं दोषस्य दास्यति ॥

इति । ज्वालादिदोषाणामप्ययमेव भङ्गः । गुरुशुक्रास्ताधिमासादिषु कार्याण्याह——

हयोरस्तमेकस्य वा काव्यगुर्वो-दिवादर्शनीयत्वमन्योन्यदृष्टिम् । ससंसर्पमंहस्पतिं चाधिमासं न मासोक्तकार्येषु षडुर्जयन्ति ॥

शुक्रजीवयोर्द्वयोरेकस्य वा मूढत्वं सवाल्यवृद्धत्वं दिवा दृश्य-तामन्योन्यदृष्टि संसर्पाहस्पत्यिधमासांश्च षडेतान् महादेषान् मास-संल्यानियमवत्सु अन्नप्राशनादिकार्येषु न त्यजनित । यतः कालवि-धिर्वलीयान् । आत्रिः—

मासप्रोक्तेषु कार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्कयोः । अधिमासादिदोषाश्च न स्युः कालिविधेबेलात् ॥ दिनसङ्ख्यानियमवत्सु नामिक्रयादिष्विप न दोषः । तथाच गुरुः— यस्याः क्रियायास्संप्रोक्तः कालो मासैदिनैरिप । तस्या न देशि मूढत्वे वक्रे वा जीवशुक्रयोः॥

इति । वर्षसंख्यानियमवत्सु कार्येष्वप्यधिमासादीनामपवादाः केश्चि-दुक्ताः ।

अत्रि:--

तद्ब्देशे बलैराब्ये तन्मासेशेऽथ वा परे । आपत्कालेऽधिमासस्तु न दोषाय विदो विदुः ॥ सर्विसिद्धौ—गोंऽशस्थो गोगतो वाऽच्छो गुरुदर्शनदोषहत् । राजादीनामवश्यकार्येषु यात्राविवाहादिषु च न दोषः । तथाच गुरुः—

> अतिपातिषु कार्येषु महान् संपूज्य शास्त्रतः । दक्षिणां बहुलां दत्वा दैवज्ञं सम्यगच्ये च । कर्तव्यान्यत्र कर्माणि दोषेषुक्तेषु सत्स्वपि ।

इति । शूलमहाशूलयोर्भङ्ग उक्तो ब्रह्मयामळे— भौमाद्याः पतयस्सप्त भेषु सप्तसु सप्तसु । स्वपरिश्रहनक्षत्रे स्थिता दोषात्र कुर्वते । यात्रादिषु च कार्येषु सर्वसंपत्तिकारकम् । स्वपतित्वान्महादेवि ! हितं कुर्वन्ति देहिनाम् ॥

अत्रिश्च—

तुमकत्स्वेष्टवर्गेऽब्जो गुरुदृष्टश्च शूल्हत् । वेधमङ्ग उक्तः सर्वेसिद्धौ— वेधतारागतो दोषश्जुमयोगेन नद्दयति ।

ৰেশ—

क्रूरैविद्धं त्रिविधोत्पातदुष्टं तावद्धिष्णयं नोऽशुभं मङ्गलेषु । यावद्रुक्ता शशिना तच मुक्तं पश्चात् तत्स्यान्मङ्गलं मङ्गलाईम् ॥

अन्यत्र-

ऋरेण व्याधितं तु नेष्टमिखलं यत् क्रूरलताहतं तत्सर्वं च वियद्गुणाश्च घटिकादोषान्वितोपग्रहे । धिष्ण्ये त्वर्धमभद्रमुक्तमपरैः सत्खेटलताहतं सङ्कानतं च विमुक्तमृक्षशुभदैः प्राप्यं च सर्वं त्यनेत् ॥

इति । रात्रिदोषभङ्गमाह—

पूर्वं षड्घटिकाः प्रभातमुद्यात् भानोः प्रदो-षस्तथा पश्चादस्तमयात् घटीत्रयमिह त्याज्यं स एवाथ वा । यत्कर्माविहितं निशासु तहते क्षागत् समावर्तनात् कतव्यं निखिलं प्रभातसमये शंस-न्ति गार्ग्यादयः ॥

भानोरधीदयात्पूर्व षड्घटिकाकालः प्रभाताख्यः । अर्धा-स्तमयात्पश्चात् षड्घटिकाकालः प्रदोषाख्यः । तथा च बृहस्पतिः—

> रात्रावस्तमयः पूर्वो मध्यमश्चापरस्ततः । प्रत्यूषः पञ्च निर्दिष्टाः प्राङ्मध्यान्त्यास्त्रयोऽपरे ॥

इति । रात्रौ सूर्योधीस्तमयात्परं घटिकात्रयं पूर्वसन्ध्याख्यमेत्र सर्व-कमसु त्यजेत्, अयं कनीयान् कल्पः । अथ स प्रदोषकाल एव त्याज्यः, स मध्यमः । सूर्योस्तमयात्परं पञ्चघटिकाकालस्त्याज्य इत्यन्ये । तस्यैत रोद्रत्वात् । तथा च स्मृत्यन्तरे —

> रात्रों रौद्रो विहारश्च भौतिको ब्रह्मवैष्णवी । दैविकश्चेति पञ्चामास्तत्तत्त्रीतिकरास्त्रमृताः ॥

इति। मध्यरात्रं परिहृत्य मुख्यः। अथ प्रभातकाले क्षीरसमावर्तनाम्या-मृते सर्वे रात्रावनुक्तं कर्मे कर्त्तव्यमिति गार्ग्यादिभिरुक्तं। तथाच चन्द्रप्राबल्ये रात्रौ शुभकर्म कार्यमित्यन्ये। तथा च भरद्वाजः—

> दिव एव प्रशास्यन्ते शुभकर्माणि नित्यशः। रात्रौ चन्द्रवले प्राप्ते शुभलग्ने च साध्येत्॥

इति । रश्मिदोषभङ्गश्चोक्तस्तर्वसिद्धौ-

क्रमेण लग्नचन्द्रोपचयस्थी लग्नचन्द्रपी। बलिन्यर्केन्दुगर्केशे लग्ननाथस्य बन्धुगे। मुकर्मिण मुखेपिते चन्द्रे दोषो न रहिमजः॥

. भरहा नः--

निर्जितस्यां जुहीनस्य सूर्यस्यात्रगतस्य च । रइमयो नैव बाध्यन्ते सौम्येरं जुमिरीक्षिताः ॥

गुरु:--

केन्द्रिकोणगास्तौम्यास्स्ववर्गस्था बलान्विताः । नाशयन्ति तदा दोषान् प्रहराश्मिसमुत्थितान् । शुभदृष्टियुते लग्ने सञ्जुभे लग्नकण्टके बलाङ्गे वा शिशिन्येवं राश्मिदोषा न विद्यते ॥

परिवेषमङ्गाश्च गुरुणोक्ताः—

कण्टकेऽथ जुमस्तिष्ठेत् त्रिकोणे वा बलान्वितः । शुभवर्गविल्रग्नेन्द्रोः परिवेषात्थदोषहा ॥ स्वत्रिकोणोच्चराशिस्थः केन्द्रे वोपचये शुभः। परिवेषगतं दोषं विनाशयति नान्यथा ।
चन्द्रे शुभरते छम्रात् गते वोपचयं पतौ ।
छमस्योपचये चन्द्रात्परिवेषो न दोषदः ।
स्वर्कस्थश्चेत् शुभः पश्येत् विछमं शिरसोदयम् ॥
परिवेषात्र दोषस्स्याङ्ममेशे बलसंयुते ।
शुभांशस्थो रविश्चन्द्रश्रुभटष्टश्शुभर्शगः ।
परिविष्टे न दोषाय छमेशेन निरीक्षिते ।
सूर्येन्द्षितराशीशः स्वलमेशस्य बन्धुगः ।
यदा तदा न दोषाय परिवेषो गुणावृतः ॥

इति । अयमेव प्रत्यर्कमेघगर्जितादीनामपि भङ्गः । एते च स्वकाले न दोषाय । यन्नारदः—

> अकालमा भवन्त्येते विद्युत्तीहारवृष्टयः । प्रत्यकेपरिवेषेन्द्रचापाभ्रध्वनयो यदि । दोषाय मङ्गले नूनमदोषायैव कालमाः ।

सर्वेऽप्युत्पाताः स्वकाले न दोषाय भवन्तित्युक्तं । लग्नदोषमङ्गमाह —

बलिनौ चन्द्रलयेशौ लयं मूर्घोदयं यदि । असप्तमस्थपापानां दृष्टिर्लये न दोषदा ।

चन्द्रलभाधिपयोः प्राबल्ये लग्ने च मूर्थोद्ये सति पापाना-मपूर्णदृष्टिलेग्ने न दोषदा भवति । तथा च सर्वसिद्धौ—

> छप्ने मूर्घोद्ये चन्द्रो छप्नचन्द्रौ बलान्वितौ । परिवेषं हरन्त्येते लप्नं वा पापवीक्षितम् ॥

पूर्णपापदृष्टिभङ्गमाह—

स्वोच्चस्वक्षेत्रगतः किवर्गुरुवी यदा बळी छप्ने। न तदा दुष्यति दृष्टिर्मदनगतस्यार्कजस्य राहोर्वा।

स्वोचादिस्थो बलवान् शुक्रो गुरुवी लग्नगतश्चेत् सप्तमस्थ-योर्मन्दराह्वोरपि पूर्णेटि छिने दोषकत् । कि पुनरन्येषां पूर्णेटि । पादटप्टयश्च सर्वेषामित्यर्थसिद्धम् ॥ पापोदयटिष्टमङ्गमाह—

उपरागादुपरिगते वर्षार्घे तनुगते शुभे बलिनि। उदयोऽपि तमोग्रहयोदशुभददशुभकर्मसु ग्राह्यः।

सूर्येन्द्रोमेहणादूर्ध्वं मासषट्केऽतीते परतो बलवान् शुभो लग्नस्थक्षेत् राहुकेतूद्योऽपि माह्यः । यस्मादुपरागात् परं वर्षार्धः तयोर्बलम् । उक्तं च—

उपरागसमीपे तु राहुकेतुबलं स्मृतम् ।
तमोलगं शुभं दद्यात् यदा केन्द्रे शुभग्रहः ।
धण्णवत्यंशकातीतः पश्चात्तच्लुभकमे चेत् ।
अथ वा केतुराहुभ्यां ग्रस्तादकेन्दुमण्डलात् ।
दिनाशीतेः शतात्पश्चात् राहुकेतूद्यश्शुभः ।
राहुकेत् विना तमोग्रहाणामुद्यभङ्गा गुरुणोक्ताः—
अप्रकाशग्रहा लग्ने न द्युरशुभांस्तदा ।

यदेन्दुक्तुभकर्मस्थः शुभस्थाने शुभेक्षितः ॥

¹राहुनातकेतूदयभङ्गः—

बुधशुक्रोदये तेषां लग्नदोषो विनश्यति।

¹ इदं वाक्यं पुस्तकान्तरे नारित.

सूर्यकेन्द्रस्यराहूद्यमङ्गः--

योगे चामिनिदारूयेये सौम्यग्रहिवलग्रेग । दृष्टे (वाते) पातस्तदा राहुलग्रदोषी विनश्यति ।

राशिभेदेऽपि भावेक्येन प्राप्तस्य पापोदयभङ्गोऽपि--

यदा शुभग्रहों केन्द्रे भवेतां शुभविश्वितौ । त्रिषंडकादरो पापास्तदा पापोदयोऽपि सन् । यदा शुभः शुभोडुस्थः स्विमत्रग्रहविश्वितः । विल्रग्नांशककेन्द्रस्थः तदा पापोदयोऽपि सन् । यदाऽतिबल्लवत्सौम्यचन्द्रावन्योन्यसंयुतौ । न चेत लग्नांशके क्रूरस्तदा पापोदयोऽपि सन् ।

इति । विषलमापवादोऽत्रिणोक्तः—

विषन्नश्त्रुमक्चन्द्रो लग्नारोशौ शुभौ तु वा ।

उभयपापदेशिमङ्गमाह—

लग्नस्य पापह्यमध्यगत्वं दोषं गुरुः केन्द्रगतो बलाह्यः । केन्द्रत्रिकोणोपचयेषु मूर्तेः स्थितदशुभो वा बलवान्निहन्ति ॥

लग्नस्य कर्तरीयुक्तं दोषं केन्द्रद्वयगतो बली गुरुनीशयित । तथा लग्नकेन्द्रत्रिकोणे।पचयराशिष्वभिहितेषु स्थितो बलवानन्यः शुभो वा तं दोषं हरति । तथा सर्वसिद्धौ—

केन्द्रे गुरुर्वेछी हन्ति लग्नस्योभयपापताम् ।

लग्ने।पचयकेन्द्रस्थस्त्रिकोणस्थोऽथ वा शुभः॥

अनिष्टस्थानगतग्रहदोषभङ्गमाह—

कूराइशुभा वा वपुषो ग्रहा ये स्थानान्यनिष्ठानि यदा प्रविष्ठाः। तदा स्वतुङ्गे बल्टिनस्वभे वा यदि स्थितास्ते शुभदा भवन्ति॥

क्रूराश्गुमा वा ये ग्रहाः लग्नस्यानिष्टस्थानेषु यदा तिष्ठन्ति तदा ते स्वोच्चे स्वराशौ वा स्थिताः बल्लिनो यदि स्युः शुभदा एव न दोषप्रदाः । यहुरुः—

प्रहास्सर्वे छप्रादशुभगदितस्थानसहिताः स्वतुङ्गे स्वर्ते वा यदि समियुरुत्कृष्टविनः । तदा तेनैवास्मिन् कथितमशुभं द्युरिखलं भवेदातैः प्रोक्तं शुभमतितरां द्युरिखलम् ।

किंच-

गोचरेष्वशुभा ये स्युर्यहास्ते शुभकर्मसु । स्वर्भे शुभग्रहर्से वा शुभास्स्वशुभवर्गगाः ।

अन्ये---

अनिष्टस्थानसंस्थोऽपि यहो लयान दोषकत् । बुवभार्गवनीवैस्तु दृष्टः केन्द्रत्रिकोणगैः ॥

इति । चान्द्रदोषभङ्गमाह—

कवौ गुरौ वा बल्लिनि स्थिते तनौ शुभेन दृष्टः शुभवर्गगदशशी।

विवर्धमानद्रज्ञुभकृच नाराुमं करोति तिष्ठन्नपि षष्ठरिष्मयोः ॥

बलाल्ये शुके गुरौ वा लग्नस्थे सित शुभदष्टः शुभवर्गस्थः शुक्रपक्षगः शुभकर्मा चतुर्विधश्चनद्रः षष्ठान्त्ययोस्तिष्ठन्नपि न दोषकृत्। यस्मात् गुरुः—

अनिष्टस्थानस्थोऽप्यतिशुभद एवाशुभकरः शुभांशस्थस्मौम्योदितबल्दशा चाहिततनुः । तदानीं चन्द्रोऽतिप्रथितशुभक्तचेद्वलयुन-स्स्वतुङ्गस्वर्क्षस्थो यदि शुभकरः कि पुनरयम् ॥

किंच--

अनिष्टस्थानसंस्थोऽपि प्रशस्तफलइः शशी । सौम्यभागेऽधिमित्रेण बलिना सन्निरीक्षितः ।

इति । पापांशस्वांशदोषभङ्गमाह —

सोम्यहादशभागगदशुभपदे हष्टोऽथ वा सद्गृहै-रङ्गाङ्गांशककेन्द्रगस्सुरगुरोः केन्द्रेऽच्छपक्षे स्थितः। सत्कर्मैव चतुर्विधोऽपि बळवानिन्दुःक्षिणोत्यात्मनो दोषं पापनवांशकाश्रयभवं स्वांशाश्रयोत्थं तथा॥

लप्तस्येष्टस्थानस्थश्चनद्रः शुभद्वादशांशगश्चेदेकः, शुभद्दष्टश्चेदन्यः, लप्तराशेर्लप्राशराशेर्वा केन्द्रगश्चेदपरः, शुक्कपक्षे गुरुस्थितराशेर्गुरु-स्थितांशराशेर्वा केन्द्रस्थितश्चेदन्यः, एवं योगचतुष्ट्येऽपि सत्कर्मा बलवानिन्दुर्यदि स्यात् स्वस्य पापनवांशाश्चयफलं दोषं स्वांशाः श्रयदेषं च नाशयति । एतदुरुणवोक्तं भवति—

> इष्टस्थानगतश्चन्द्रः शुभस्य द्विरसांशगः । शुभकर्मरतः पापनवांशस्थोऽपि शोभनः ॥

गुभग्रहेसित्रश्रन्द्रश्गुभकर्मरतो यदि । पापांशके शशाङ्कस्थदोषान् सर्वान् व्यपोहति ॥ लग्नलग्नांशकेन्द्रस्थः शुभकर्मरतोऽपि वा । गुरूषितनवांशर्सकेन्द्रगदशुभकर्मकत् । सिते पक्षे शशी पापस्वांशदोषानपोहति ॥

स्वांशः कृष्ण एव दोषकृत् । यदित्रः— स्वांशस्थो दोषदः कृष्णे चन्द्रः स्वोचे सिते शुभः ।

अन्येऽपि पापस्वांशदोषभङ्गा गुरुणोक्ताः—

लम्रकेन्द्रे त्रिकोण वा गुमस्वांशे बलान्वितः ।
पापांश्चेन्द्रिथतं दोषं विजहाति न संशयः ॥
चन्द्रस्थितांशनाथो यः क्रूरोऽप्यायत्रिशत्रुगः ।
विधी पापांशेग दोषान् जहाति बलसंयुतः ॥
गुमग्रहोषितांशर्भकण्टकस्थः शुमेसितः ।
गुकर्मरतस्त्वांशस्थितदोषानपोहति ॥
चनद्रो विषघटीवर्ज शुमटप्टास्स्रकोणगः ।
लग्ने वा केन्द्रगो नश्येत स्वांशजं दोषमन्त्यतः ॥
कालहोराधिपस्थांशराशिकेन्द्रे यदा शशी ।
गुमकर्मरतस्त्वांशदोषानपनयेत् तदा ॥

इति । पापवर्गादिमङ्गमाह— असौन्यवर्गाश्रयज्ञान् सुकर्मा दृष्टो बल्छिष्टेन शुभेन चन्द्रः ।

दुष्कर्मवेळादिसमुद्रवांश्व भिनति दोषान् शुभवर्गसंस्थः॥

बलवच्लुभटष्टः सत्कर्मी चन्द्रः पापषड्वगाश्रियज्ञान् दोषान् हरति । पूर्वः पापस्यैव । अयं तद्वर्गस्य भङ्ग इति । शुभवर्गस्थः शुभटष्टश्चन्द्रः स्वस्य कर्मावस्थावेलादिदोषान् हरति । तथा पापयोगः दृष्टिभङ्गमाह—

यदा स्ववर्गे तनुकेन्द्रसंस्थं । गुरुद्रशशी वाऽथ शुभांशकस्थः । शुभेन दृष्टस्तुकृती तदानीं न पापयोगेक्षणदोष इन्दोः ॥

स्वर्गस्था गुरुः लग्नकेन्द्रस्थं चन्द्रं पश्यतीति रोषः । चन्द्रः स्वयं वा शुभांशस्थः शुभदृष्टः सुकर्मा स्यात् तदा चन्द्रस्य पाप-योगजो दोषस्तदृष्टिजो वा नास्ति ।

> गुरुः स्वकीयवर्गस्थो बलवान् लग्नकेन्द्रगः । पश्यन् स क्रूरशीतांशुं तं दोषं विलयं नयेत् । क्रूरग्रहयुतश्चन्द्रः शुभांशे शुभकर्मकत् । शुभदृष्टो यदा दोषं स पापोत्थं लयं नयेत् ॥

सर्वभिन्धी च-

केन्द्रस्थो गुरुणा दष्टः चन्द्रः स्वोत्रत्वदोषह्न् । सहर्गस्थो प्रहो लग्नात् केन्द्रगः स्वर्क्षगो यदा ।

¹ तनुकेन्द्रसंस्थः.

तदा हिन्त दाशी दोषं पापयोगेक्षणोद्भवम् ।

इति । दुर्बलसौम्ययोगभङ्गश्च कैश्चिदुक्तः—तथा च गुरुः—

लग्नेशे बलसंयुक्ते शुभांशे शुभवीक्षिते ।

समागमः शुभस्सौम्यैः दोषो नश्येत् स्वभावतः ।

विधी शुभनरे सौमैयर्डछे वर्गे निजे सताम् ।

स शुक्रेन्दूत्थितं दोषं व्यपाहित विधुस्तदा ।

सर्वेदोषाणां सामान्यभङ्गानाह पञ्चाभिः--

गुरुस्सुदीप्तस्तनुकेन्द्रसंस्थितो बलाधिको लग्नगतो विशेषतः । निहन्ति दोषानखिलांस्तथाविधः स्ववर्गसंस्थो भृगुजो बुधोऽपि वा ॥

विशालरिमर्बलीयान् लमकेन्द्रस्यो गुरुः सर्वदोषान् नाश-यति । तत्रापि लमगतो विशेषतः सर्वदोषदृ । किं च तथाविधो दीप्तिमान् बली केन्द्रगः स्ववर्गस्थः शुक्रः बुधो वा सर्वदोषान् नाशयति । अत्र गुरुः—

> गुरुस्सर्वबर्छोपेता स्त्रमकेन्द्रस्थितो यदि । तेजस्वी सर्वदोषाणां हन्ता स्त्रमे विशेषतः ॥ तथैव शुक्रचान्द्री च बस्तवन्तौ प्रकाशितौ । रिममन्तौ स्ववर्गस्थौ विशेषात् दोषनाशनौ ॥

इति । शुक्रस्तु द्यूनादन्यकेन्द्रस्थितः । तथा च नारदः— दोषाणां तु शतं हान्ति बलवान् केन्द्रगो बुधः । अपहाय द्यूनं शुक्रो द्विगुणं लक्षमाङ्गराः ॥

त्रिकोणगेष्वपीति नारदः-

केन्द्रिकोणगे जीवे शुक्ते वा यदि वा बुधे ।
दोषा विनाशमायान्ति पापा इव हरिस्मृतेः ॥
ननु विशेषा अपवादा एव दोषानिषूद्रनाः नैते, समान्यत्वात्,
नैतद्रित, सविशेषत्वात् तथा च गुरुः—

तिथ्युक्षशुभवारादे। ये दोषाश्चोदिताः पुरा । ते सर्वे नाशमायान्ति जीवशुक्रेक्षणोदयैः ॥ लग्नं गतो गुरुरशुक्तो गुणी दीतो बलान्वितः। नक्षत्राद्यशुभे कालेऽप्यतिदोषान् व्ययोहिति ॥

नारदः-

अन्दायनर्तुमासोत्था ये दोषाः पक्षसंभवाः ।
ते सर्वे विछयं यान्ति केन्द्रस्थाने बृहस्पतौ ॥
दुस्त्थानस्थमहरूताः पापखेटसमुद्रवाः ।
ते दोषा विछयं यान्ति केन्द्रस्थाने बृहस्पतौ ॥
दुर्ह्ममृदुर्मेत्थदुर्निमत्तांशानाश्च ये ।
दोषासमेव छयं यान्ति केन्द्रस्थाने बृहस्पतौ ॥
उच्चस्थो गुरुरेकोऽपि छमदोषोपसंचयम् ।
हन्ति पापान् हरिदिने चोपवासव्रतं यथा ॥
छमल्मांशसंभूतान् बलवान् केन्द्रगो गुरुः ।
भस्मीकरोति तान् दोषान् इन्धनानीव पावकः ॥
छमदोषाश्चांशदोषा दोषाप्षद्वर्गनाश्च ये ।
हन्ति तान् लम्नगो जीवो मेधसङ्घामवाानिलः ॥
विविधत्पातनं दोषं हन्ति केन्द्रगतो गुरुः ।

स्थनादिवलसंपन्नस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरं यथा ॥ चापोपसूर्यनीहारमेघगर्जनसंभवाः । दोषा नारां ययुरसर्वे केन्द्रस्थाने बृहस्पतौ ॥

विद्युन्नीहारवृष्टचादयस्त्वल्पदोषाः, तेषां भङ्गश्च ----

बृहस्पतिः केन्द्रगतः शुक्रो वा यदि वा बुधः । एतेषां दोषनिचयं नयत्येव विनाशनम् ॥

अपि च-

उक्तानुक्ताश्च ये दोषास्तानिहन्ति वली गुरुः । केन्द्रसंस्थः सितो वाऽपि मुनङ्गान् गरुडो यथा ॥

इति ॥

मूर्तेश्विकोणागमकण्टकेषु रवीन्दुजीवर्क्षनवांश्रांसंस्थः । सुकर्मकन्नित्यमशेषदोषान् मुष्णाति वर्धिष्णुरनुष्णरश्मिः॥

लग्नस्य केन्द्रिकोणलाभराशिषु रवीन्दुजीवराशिनवांशगतः तिस्थितराष्ट्रयंशगतो वा तदाक्रान्तांशकराशिगतो वा पक्षबलवान् चन्द्रः सर्वदोषान् हरित । अत्र गुरुः—

> गुरुरवीन्दुनवांशकराशिगः शुभाविलमचतुष्टयमो यदि । नवमपश्चमराशिगतोऽथ वा सकलदोषहरश्शुमवर्धनः ॥

[ो] कस्थ:.

ताहराः शुभांशगा वा। तथा गुरुः—
यदा शशाङ्कोऽतिबली शुभांशगः
करोति कमीतिशुभं त्रिकोणगः।
तथोदयक्षीशक एव नाश्येत्
बलेखदोषानिव कोपनो धनम्॥

इति । नारदः —
मुहूर्यपापषड्वर्गकुनवांशग्रहोत्थिताः ।

ये दोषास्तान्निहन्त्येव यत्रैकादशगश्राशी ।।
अन्ये—

यदापि गुरुबुभशुका रवीन्दुसुतराहुकेतुसूर्यसुताः । तेऽप्यपकर्तुमशक्ता लग्नस्यैकादशे चन्द्रे ।

इति ॥

लग्नांशाहिषमांशके यदि शुभास्तत्कण्टकांशेऽ-पि वा जीवज्ञौ गुरुभार्गवौ बुधिततौ (चा)वाऽन्यो-न्यकेन्द्रिस्थतौ । लग्नेशस्य शुभस्य वाऽतिबहवो युक्ताष्टवर्गाक्षकाः स्वेष्वेकैकसमाश्रितांशकगृहात् लाभांशकस्थाः शुभाः ॥

लयांशक्षीत्त्रिकोणांशकसदनगताः सह्रहाः केन्द्र-गा वा जीवांशक्षेत्रकेन्द्रे सितबुधशशिनः चन्द्रके-न्द्रे सुरेज्यः ॥ चन्द्रप्राप्तांशराशेस्सुतनवमगताः के-न्द्रसंस्थाश्च सौम्याः सौम्येन्द्रात्मेशलयोपचयगृह-गता वीर्यवन्तदशुभाश्च ॥ राजेन्द्रस्सहमन्त्रिको गजवरं सिंहासनं वा श्रितः शीतांशुर्बळवान शुभांशकगतो छ्रेप्रशेहस्थितः ॥ होरावत्सरमासवासरपतिर्छेग्ने बळी सहृहो छ्रया-हैरिसहोदरागमगताः पापाश्च वीर्योत्कटाः॥

लग्ननवांशाद्विषमनवांशगाः शुमा यदि स्युः एकः सर्वे-दोषहरो योगः । लग्नांशस्य केन्द्रांशमाः शुमाश्चेदन्यः, शुमौ द्वी द्वावन्योन्यस्थितांशराशेः केन्द्रराश्यंशगौ स्तः त्रयो योगाः, वाशब्दो मतान्तरद्योतनार्थः । तेन शुभास्त्रयोऽप्यन्योनयांशकन्द्रगाः स्युरेकं, लग्नाधिपस्य शुमस्य अन्यस्य वा स्वाष्टवर्गीकविधिना प्राप्ताक्षकाः स्वयुक्तराशौ यथा बहवश्रतुरुत्तराश्चेदन्यः । अथ वा शुमस्येति जातावेकवचनं, शुमानां त्रयाणां स्वाकान्तराशिषु अ-ष्टवर्गाक्षकाः बह्वस्स्युरपरः, यदा शुभेष्वेकाकान्तनवांशराशेरेकादः शराइयंशगतो अन्यः स्यात्, एवं षड्योगाः। तथा तेष्नेका, न्वितांशादायांशे अन्यः । तदायांशेऽपरः । एते पट् । तथा लग्ना देकादशांशे सर्ने प्रहाश्रेदेकोऽर्थसिद्धः। लग्नांशराशेस्त्रिकोणराद्यंशगा-इशुमाः त्रपश्चेदकः, तत्केन्द्रराश्येशगाश्चेदन्यः, जीवयुक्तांशराशेः केन्द्रराश्यंशकेषु शुक्रनुधवन्द्राश्चेदपरः, चन्द्रयुक्तराशेः केन्द्रे गुरुश्चे-देकः, चन्द्रयुकांशराशेः त्रिकोणगाः केन्द्रगावा शुभाश्चेत् हौ, शुभेष्वन्यतमस्य उपचयराशिगताः अन्ये शुभा यदि स्युः एकः, लग्नराहोवी 1 उपचयराशिगताः शुभा यदि स्युः त्रयो योगाः, राज्या-दिकमैवान् शुभांशगः शुभदृष्टश्चेदेकः, तथा चन्द्रस्य लग्नाधिप-तेर्वा लग्नादिष्टराशौ स्थितश्चेदन्यः, कालहेरिशः शुमो बली लग्नग-श्चेदिकः, तथा तद्रषाधिपः तन्मासाधिपः वाराधिपो वा बली शुमो

I उचराशि.

लग्नगश्चेत् त्रयो योगाः । प्रबलाः पापाः । लग्नात् पट्त्रचा यगाश्चेदेकः एवमेते अष्टत्रिंशद्योगा उक्ताः तथा च गुरुः—

> लग्नांशकाद्यदा जीवशुऋज्ञा बलदीपिताः । ओजांशके स्थितास्तर्वे तदा दोषाः शमं ययुः॥ लग्नांशकक्षेकेन्द्रक्षेगतांशे ज्ञगुरूशनाः। ²यदि दोषा ययुनीशं राजद्रोहाद्यथाऽन्त्रयः ॥ जीवशुक्रौ यदा केन्द्रे परस्परमुपागतौ । नवांशमण्डले चक्रे सर्वदोषविनाशनौ ॥ एवं गुरुज्ञी शुक्रज्ञी यदाडन्यान्यचतुष्ट्ये । नवांशचके बागी हो सर्वदोषविनाशनी ॥ लमेशस्याष्टवर्गे तु स्वयुक्तशक्षिसंहातिः । बहुत्वे यदि तद्दोषा नश्यन्त्यनवद्दोषतः ॥ शुभमहाष्टवर्गेषु शुभसंयुक्तराशिषु । बहुक्षेषु तदा दोषाः सर्वे नाशमवानुषुः ॥ यदा जीवस्थितांदार्कमवरादयंदागः सितः। तदा दोषा ययुर्नाशं यथा रामेण राससाः ॥ गुरुस्थितांशराशेर्वा शुभराश्यंशगो बुनः ! यदा तदा ययुदोंषा नारां ³वाते तु तूलवत् ॥ शुक्रस्थितांशकक्षीतु भवराश्यंशगी गुरुः । तदा दोषा लयं यान्ति दुर्मार्गानितवित्तवत् ॥ सितस्थितांशराशेर्वी भवराश्यंशगो बुधः। यदा तदाडिंक्स दोषा नश्यन्ति हिमवद्रवी ॥ यदा बुधोषितां रार्क्षछ। भराश्यं रागः सितः । तदा दोषाः शमं यान्ति यथा रोगा भिषम्वरैः ॥

¹ त्रिषडायगा. ² तदा. ³ व

ब्धस्थितांशराशेस्तु भवराश्यंशगो गुरुः । तदा दोषा ययुनीशं पापवद्भववन्दनात्॥ यदा सर्वे प्रहा लयादागमश्रीशगास्तदा । दोषा नारां ययुस्तेषे यथाऽऽदित्योदये तमः ॥ लग्नां शराशेर्नवपश्चमर्क्ष-नवांशगाः जीवसितेन्दुपुत्राः। यदा तदा दोषगणाः प्रयान्ति नाशं यथा देवगणेन दैत्याः ॥ गुरुर्भुगुश्चन्द्रज एव वा बली यदा विल्यांशकराशिकेन्द्रगः। शुभांशगस्योपचये यदा बली तदाऽपि दोषा बलिनो लयं ययुः॥ जीवांशकक्षांचादि केन्द्रभांशे निशाकरो वाऽस्य सुतः सितो वा । तदाऽधिगच्छन्ति विनाशमुत्रा दोषा यथा हालहला हरेण ॥ सितज्ञजीवा बलिनस्त्रिकोणे शशाङ्कलमांशगृहास्मुदीप्ताः। व्रजन्ति दोषा लयमग्रजन्मा यथैकदा वा श्रुतिविक्रयेण ॥ शशाङ्कयुक्तांशकराशिकेन्द्रे शुनम्रहाः स्युर्वेळराश्मयुक्ताः । तदा छयं यास्यति दोषसङ्घः प्रतिम्रहेणेव यथा द्विनन्तम् ॥

शुमग्रहाः स्वीपचये परस्परं बलान्विता वा यदि वा स्ववर्गगाः। तदाऽप्रचरोषा ययुरञ्जसा लयं कतन्नभावस्य शुभा गतिर्थेथा ॥ यदा राशाङ्कोपचयत्रिकोणगः शुभग्रहः सौम्यनिरीक्षिते। बली । तदा गुणदींषगणो विनश्यति यथा ¹महादानगुणस्य बह्ववम् ॥ यदोद्येशोपचये बली शुभो विधुस्सुपूर्णः शुभकमेकतत्।। प्रयानित दोषा विलयं यदा तदा प्रतिप्रशान्तस्य पुनर्भवादयः ॥ शुमोऽशुमो वाऽथ वली ग्रहेष्वसी विलयसद्योपचये स्ववर्गगः। यदा तदा दोषगणो विनश्यति प्रवृद्धरागस्य यथा त्रिविष्टपम् ॥ यदा गजं वाऽधिगतश्राशाङ्को वली च भद्रासनमेव वा तदा। विनाशयेद्दोषगणं शुमांशगो यथा इङ्गना वा पुरुषस्य पौरुषम्।। शशिनि नृपतिपूज्ये मन्त्रिभिः सार्धमय्रचैः न्धगुरुसितदष्टे स्वांशंगे वा शुभांशे ॥ बलवित बहुदे। यो वाति नाशं गुणाळ्यो द्विज इव कपटोक्तैः कृत्तिमाचारवर्गैः।

महादानगुणेन इति पाठःस्यात्.

चन्द्रस्तत्कर्मकर्ता चेत् शुमाशेऽतिबलान्वितः इष्टस्थानगतो लगात् सर्वदोषविनाशनः ॥ समामासदिनाधीशो होराराश्यंशगोऽपि वा गुणवान् बलवोनकः सर्वदोषविनाशनः ॥ विलग्नराश्यंशकराशितोऽर्को यमे।ऽथ वा मूमिसुतोऽपि वा बली । त्रिषड्भपक्षांशगतास्तदा ययु दोषा विनाशं शुमवर्धनेन ॥

इति । यत् भांशके प्रोक्तं तदंशराशौ च भवति । यद्वाशौ तत्तदं-शेऽपि समं । यद्गुरुः---

प्रहस्थितांशके शोक्तं तदंशर्केंऽपि तद्भवेत् । अंशचकेंऽशराशेर्वा कथितद्वययोः समस् ॥

अन्येऽपि दोषापवादयोगा गुरुणोक्ताः । तेऽपि पूर्वोक्तयोगैकदेशसूः चिताः । यथा—

राशांङ्गयुक्तांशकतोऽपि वा यदा
गुरुज्ञशुक्तास्स्युरयुग्मभांशगाः ।
तदा महादोषगणाः प्रयान्ति ते
नाशं यथा ब्रह्मविद्धेसङ्गमे¹ ॥
अशुमरुद्पि खेचरो विल्यात्
अहितमगोऽपि निजाष्टवर्गकर्से ।
बहुतरगणनायुतेऽत्र दसे
सकलगुणद्विकरोऽत्र दोष ह च ॥
लग्नेशस्याष्ट्रवर्गे वा बलवद्गहचोदिते
प्रह्युक्ताष्ट्रवर्गे तु बह्वसेऽनिष्टकं न तत् ।

¹ संगमात्.

उद्यपञ्चमधमगतश्युमः ग्रुभटगष्टकवर्गमहाक्षकः । राशिनि सौम्यनवांशकगे सदा सकलदोषहरश्ज्युमवर्धनः ॥ **उद्यक**ण्टकग**रशु**भवर्गगो यदि निजाष्टकवर्गमहाक्षकः। शुभरतो ऽपि शुभेक्षणसंयुतः सकलदोषाहरश्शुमवर्धनः ॥ आनिष्टस्थानगा ये स्युः प्रहास्ते लग्नतो यदि । मवराइयंशगास्तत्र दोषाश्शोभनतां ययुः॥ शशाङ्कजीवी यदि शोभनांशे नवांशचके तु परस्परं स्थिती । यदा तदा दोषगणाः शमं ययु-र्यथा व्यळीकैरिह कीर्तिरन्यथा ॥ देवे**ड्य**युक्तांशकभाद्विलग्रं यावद्भवेत्तावति साशिगेऽकैं। दोषास्तदा स्युर्विलयं सभायां र्यथाऽनधीतः पुरुषस्तयेव ॥ लग्नलगांशनायौ ह्यौ परस्परमुदीाक्षितौ । मित्रे वाडिप तदा उन्यान्यं दोषत्रिपुरशङ्करी ।। लग्नेशन्द्र यदाऽन्योन्यमधिमित्रे तदा गुरुः । पश्येत्तौ दोषनाशाय भवनत्या यथा ह्यचम् ॥ उदयति सुरपूज्ये स्वांशगे शीतरक्मा-वुपचयगृह्याते शोभने कर्मणीड्ये ।

अतिबलवति क्रुके दोषनाशस्य कालः समभवद्दितेऽर्के रावरीवाशुभानाम् ॥ स्वगृहविधुरसाध्यः सोम्यभागस्थितइचेत गुरुरुपचयातः स्वांशके वा बलाह्यः। यदि गुरुतरदोषा यान्ति नाशं तथैव श्रुतिरिप समधीता पापनाञ्चाय दृष्टा ॥ लग्नाधिषो यदा केन्द्रे लग्नादुपचयेऽपि वा शुमो वाडथाशुमो वाडपि तदा दोषाः शमं ययुः ॥ चन्द्रोषितांशनायो वा चन्द्राद्यचयेऽपि वा। केन्द्रं गतो यदा दोषा तदा नाशे ययुस्स्वयम् ॥ स्वजनमक्षील्लमादुपचयगता यदाशुभदाः तदा पापैरुक्तं निाखिलमशुमं नैव समयात् ॥ अनिष्टस्थानस्थैदिवसपतिना सद्धिरथ वा विनश्यन्त्यत्रोक्ता विषतुलितदोषाः शुभवलाः । शुमकर्मसु तत्कर्मकृत् चन्द्रः सर्वदोषहत् यथा देवप्रतिष्टायां तदा देवाचेनादिकत् ॥

उक्तं च--

देवार्चास्थापने चन्द्रो यदि द्वाम्मुमथार्चयेत् । म्वृत्यन्यीद तदा दोषाः सर्वे शममवाष्नुयुः ॥

इति ॥ एतदुपलक्षणम्— शुभनवांशकसंयुतशीतगुः

विषघटीरहितः शुभनेत्रगः।

शुभकृदंशकराशिचतुष्टये

सकलदोषहरः शुभवर्धनः ॥

¹ नृत्यगोतैस्तदा. VIDYAMADAVIAM.

ये वारदोषा यदि वाऽस्तदोषा
ये ऋशदोषा यदि योगदोषाः ।
ये लग्नदोषास्त्वथ सर्वदोषान्
निहन्ति तांस्तानि चायगोऽर्कः ।।
पापग्रहेम्यो बलिनश्जुभग्रहाः
यदा तदा शीतकरस्तदंशगः ।
शुभश्र दोषीधमभावतां व्रजे-दर्धनेता दृष्ट्यना यथा स्वयम् ॥
इति । अपवादानुपसंहरित—
प्राधान्येन व्याहृताःकेचिदेते
योगास्तर्वे व्रान्ति दोषानशेषान् ।
अत्रानुक्ताः सन्ति चान्ये सहस्रं
नैवोक्तास्ते ग्रन्थबाहुल्यभीत्या ॥

पूर्वीचार्योक्तापवादयोगसहस्तेषु प्रधानयोगान् संगृह्याभिहिता एते योगाः सामान्येन सर्वदेशान् नाद्यायन्ति । अत्र अपवादाध्यायेऽनुक्ता अन्ये सहस्त्रसङ्ख्याः अपवादयोगास्तिन्त । तेऽपि सर्वदेशियान् नाद्यायन्ति । तथाऽपि इह ग्रन्थविस्तरभयात् नोक्ताः । सारसं- ग्रहे विस्तरोऽनुचित इति । एममुक्तापवादे सत्यपि दोषाणां देशा- चारादेव दौर्बल्यपाबल्ये स्त इत्याह—

अत्रोक्ता ये वीर्यवन्तोऽपि दोषा देशाचाराहुर्बछास्ते भवन्ति ।

¹ दर्घर्मतो दुष्टधनं.

येऽन्ये देशाचारितदाश्च दोषाः तेषां देशे तत्र नैवापवादः॥

अत्र दोषाध्याये त्रोक्ताः प्रवला दोषा अपि स्वापवादमन्तरेण देशाचारादेव क्रचित्र सन्ति । तथा अल्पदोषा अपि देशाचारा - त्रावल्यप्रसिद्धिमन्तस्सन्तः स्वशास्त्रोक्तेरपवादैरपि न बाध्यन्ते यस्मा-देशाचार एव दौर्बल्यप्रावल्यहेतुः यदुक्तं—

देशाचारस्तावदादौ विचिन्त्यो देशे देशे या स्थितिः सैव कार्यो । लोकद्विष्टं पण्डिता वर्जयन्ते दैवज्ञोडतो लोकमार्गेण यायात् ॥

इति । यथा—एकार्गळः कर्णाटकेषु, दग्वलमं मध्यदेशे । देशा चारश्च लोकप्रसिद्ध्याऽवगन्तव्यः ।

दोषापवादानां विषयमाह —

अनापयुत्तमः कालो मध्यमापदि मध्यमः। सत्यामत्यापदि य्राह्यो दुष्टोऽपि स्वापवादतः॥

देशकालादिसंपत्तौ सत्यां निर्दोषः कालो आहाः । देशकाला-दीना एकतमसंपत्त्यभावे दुर्वलालपदोषः कालः । देशकालादिसंप -त्र्यभावे सदोषोऽपि स्वोक्तदोषापवाददर्शनात् आहाः स्यात् । वर्ष-मासाद्यनियमे सप्ताङ्गसंपन्नः कालः, तिन्यमे षडङ्गसंपन्नः । मासा-र्घनियमे पञ्चाङ्गगुद्धियुक्तोऽपि आहाः । अर्थादेव दिनादिनियमे पञ्चाङ्गसंपद्धीनोऽपि तद्पवाददर्शनादुपादेयः । अथ वा अनात्ययिके कर्मणि बहुगुणः । आत्यविकेऽल्पगुणः । अत्यात्ययिके निर्गुणोऽप्य- पवादगुणैर्याह्यः । निरपवादस्तु न कदाचनेति सिद्धष् । अथ वा मुख्ये कर्मण्युत्तमः कालः । मध्यमे मध्यमः । क्षुद्रकर्मणि कनीयान्, अत्र गुरुः—

सर्वकार्येषु सौन्येषु यथोक्ततिथिवारयोः ।
नक्षत्रांश्वकयोगेषु करणोदयराशिषु॥
संयुतेषु समेथेषु सर्वदोषाविनाशनः ।
अत्यात्यिककार्येषु कालदोषाविमिश्रिते ॥
दोषापवादवाक्यानामवकाशश्रुतीरितः ॥

इति । परस्तादेतत्त्रपञ्चः । अध्यायमुपसंहरति—

इत्थं श्लोकैरेकपश्चाशताऽस्मिन् हृद्यो विद्यामाध्वेन प्रणीतः। अध्यायोऽयं सर्वदोषापवादः पूर्णो विद्यामाध्वीये तृतीयः॥

इति विद्यामाधवीये अपवादाध्यायस्तृतीयः

अत्र मुहूर्तदर्शने सर्वदोषापवादामिधायी तृतीयोऽयमध्याय इत्येकपञ्चाराता पर्चेराचार्येण प्रपञ्चितः—

> इत्थं विद्यामाधवीये मुहूर्ता-दर्शे विद्यामाधवस्यात्मजेन । व्याख्यातोऽभूत्सर्वदोषापवादा-ध्यायस्सोऽयं विष्णुनाम्ना तृतीयः ॥ इति मुहूर्तदीपिकायां विद्यामाधवीयव्याख्यायां अपवादाध्यायस्तृतीयः

अथ गुणाध्यायस्तुरीयः

तत्र तावत् कालस्य गुणदोषसंस्रष्टत्वात् अरोषदोषाभावो भूय-साऽनेहसाऽपि दुरवाप इति सतामपि तेषां दौर्बल्याल्पत्वे गुणानां प्रावल्यबाहुल्ये (वाऽ) चालाच्य 'कृतकार्याणि कार्याणि ' इत्यागमात् दोषान् तदपवादांश्चाभिषाय गुणान् वक्ष्य इति प्रतिजानीते—

निइशेषदोषविरहस्य सुदुर्लभत्वात् काले गुणौघबहुले विबलालपदोषे । कर्मारभेत शुभमित्यृषिभियेदुक्तं तत्कांश्चिदत्र सुमुहूर्तगुणान् प्रवक्ष्ये ॥

मुहूर्तेषु चिरेणाप्यशेषदोषाभावस्य दुर्लभत्वात् शुभाकियाणां काले काले अवश्यकार्यत्वात् (१) बहुगुणप्रचुरे, यद्वा गुणोघबहुल इति पाठः, गुणोघाः—प्रधानगुणाः । बलवद्गुणोघप्रचुरे काले दो-षेषु दुर्वलेष्यक्षेषु च सत्सु शुभकर्मारभेतेति पूर्वाचार्यरुक्तम् । तथा च भरद्वाजः—

दोषान् सर्वान् परित्यज्य न शक्यं बहुवत्सरैः। तस्मात् परीक्ष्य कर्तव्यमल्पदोषं गुणाधिकम्॥

आत्रिः---

विष्णोः कालशरीरेऽस्मिन् निर्देशो दुर्लभो नृणाम् । कालेऽल्पदोषे कार्यं स्यात् त्याज्यं दोषाधिके शुमम् ॥

नारद:-

दोषदृष्टः सदा कालः तिन्नार्धुं न शक्यते । अपि धातुरतो यायादोषाल्पत्वं गुणोत्कटम् ॥ महादोषान् परित्यज्य शेषयोर्गुणदोषयोः । गुणाधिकस्स्वल्पदोषः स कालो मङ्गलप्रदः ॥ लग्नं सर्वगुणोपेतं लम्येतऽल्पेदिनैन तत् । दोषाल्पत्वं गुणाधिकयं बहुसंमतिमध्यते ॥

गुरु:--

गुणी वा यदि वा दोषो दुर्बेलो नारातां व्रजेत् । बिलैनेकत्र संयोगे खद्योतो वाऽकेसिन्निषी ॥ एवं बलाबले मत्वा गुणदोषसमुद्भवे । गुणेऽतिबलसंयुक्ते दोषे च बलवर्जिते ॥ सदोषेऽपि च कालेऽस्मिन् शुभानां समयः शुभः ॥

इति। अथ चेन्निर्दोषमेनेष्टं, न मुहूर्तं लम्यते, तदलामे कियाश्रीत्सन्नाः स्युः, कियोत्सादे पुमर्थो दुरापः। कि च देनताः प्रजानामीतीः प्रनर्तयेरन्, तत्प्रवृत्तानोषधयो न संपत्स्यन्ते, ततश्च क्षुधा
नाधिष्यते, लोकानामकाण्ड एव प्रचण्ड उपप्रनः संस्यात् इति
महदनिष्टमापद्येत । तन्निवृत्तचर्थं पुमर्थाप्तचर्थं च कियाः कार्या
एव । तत्करणं गुणदोषाणामिनरोधेन स्यादिति ॥

तथा च गुरुः--

अनादिनिधनस्तर्वौ न निर्देशि न निर्गुणः । तस्मिन् निर्देशिकालार्थी मुहूर्तं नाधिगच्छति ॥ मुहूर्ताभावतो देवीः क्रियाः षोडारीकादिकाः । नोपलम्याः शुभास्सर्वास्त्रिप्वयेकोऽपि वा परैः ॥ यस्मात् काले शुभे कृत्याः कर्तव्याः देवमानुषैः । तदुपायोऽविरोधेन सत्सु दोषेष्वपीष्यते ॥ कालश्शुभगुणिर्युक्तो बलवाद्विश्शुभप्रदः । दोषैर्युतोऽपि विप्राणिरन्यथा व्यत्ययं द्वयोः ॥

इति । एवमादि प्राचीनाचाँचेहकत्वात्, शुभकर्मारम्भप्रसिद्धचर्थम-त्राध्याये कांश्चित् प्रसिद्धान् मुहूर्तगुणान् वक्तुमारमे । गुणानामानन्त्यात् कात्स्न्येन तत्कथनं दुष्करमिति प्रसिद्धगुणानेव वक्ष्येऽहामिति शेषः ॥ कनिष्ठमध्यममुख्यगुणानाह—

अल्पदुर्बलदोषत्वं कालस्य प्रथमो गुणः। अभावः सर्वदोषाणां द्वितीयः सुमहान् गुणः॥२॥

तारादीनां तावदानुगुण्येन शुममदत्वं गुणः । स च त्रिविधः । किनिष्ठो मध्यमे मुख्यश्रेति । तेष्वाद्ययोर्ज्ञलणं — अल्पाः कतिपये क्षुद्रा वा दुर्बलाः — स्वापवादमध्वस्तवीर्याः दोषा यत्र स तथा तस्य मावः अल्पहुर्बल्वे। वत्वं आद्यः किनिष्ठो गुणः । सर्वेषां श्रुद्राणां गुक्तणां च दीषाणामभावः सुमहान् मुख्यतमो गुणः स द्वितीयः । अर्थादेवापवादमध्वस्ताखिल्यदोषत्वं मध्य इति सिद्धम् । अथ वा, अल्पदुर्बल्यदोषत्वमेवान्यो मुख्यो गुणः, यतस्तदन्यः सर्वदोषाभावः सुमहान्—दुर्लभ इति यावत् । यद्वा अल्पे कितपये दुर्बलाः क्षुद्रा अल्पे च दुर्बल्यश्र दोषाः अल्पदुर्बल्योषा इति द्वन्द्वः । अल्पद्रोषत्वं दुर्बल्योषत्वं च कालस्य मुख्यो गुणः । तदन्यः सर्वदो षाणामभावः -स्वापवादैः प्रध्वंसः सुमहान् गुणः । एतदुक्तं भवति—

कतिपयक्षुद्रदोषत्वं अपवादनध्यस्तकतिपयमहादोषत्वं सर्वदोषाभा-वो वा मुख्यो गुणः, अपवादभग्नसर्वदोषत्वं मध्य इति ॥ नन्वरुपदुर्वछदोषत्वं गुण इति कथं—

दोषचिह्नं न यत्रास्ति तदाऽपि गुणलक्षणम् ।

इति गुरुवचनात् दोषाभाव एव गुणः, नत्वल्पदुर्बलदोषत्वम् । यतः क्षुद्रा दुर्बला वाऽपि ते दोषा एव । यद्येवं गुणस्ति त्रिक्ताः निर्दोषस्य दुरिषगमत्वात्, अपि च (तु) कमेदूषणतया अनिष्टकत्त्वं दोषचिह्नम् । तच्च क्षुद्राणां दुर्बलानां च तेषां न संभव-तिति न दोषः । नैतदुपपत्रम् । सत्सु दोषेष्वानिष्टं न स्यादिति, दोषास्तु सन्तः क्षोदिष्टाः दुर्बला अपि यथास्वमानिष्टकत एव, यथा बिन्दुमात्री शुष्का वा सुरा पात्रदूषणायालं । यथा च सूक्ष्मः शीणीं वा कण्टकाङ्कुरः चरणस्थो रुजं करोतीति । नैतत्, क्षोदीयसां विरोधिगुणहतवीर्याणां च तेषां स्वदोषोत्पादने न सामर्थ्यमास्त, यथा महानले विकीर्यमा-णानां तोयबिन्दूनां, यथा च दहनदग्धानां महाकण्टकानामिति युक्त-मेवोक्तं । बहुगुणानिष्टगमेऽपि कर्मणां प्रवृत्त्यर्थं कांश्चिन्महागुणानाह—

विशिष्टविप्रभाषितं शुमग्रहस्य चोदयः। तनोश्च सौम्यवर्गता त्रयो महागुणाः स्मृताः॥

विशिष्टानां — वेदाध्ययनादिगुणयुक्तानां ज्योतिर्विदां। विप्राणां वाक्यं " अस्मिन् कर्मेणि इदं मुहूर्तं गृह्यताम् " इत्यादि, तथा शुभग्रहस्य कस्यिचिदुद्यः—उद्गमराशिः तत्काललग्रादेः शुभवर्गत्वं च त्रय एते महागुणा इति मुनिभिरुक्ताः, तथा च गुरुः—

शुभग्रहेादयर्कं वा शुभषड्वर्ग एव वा । े वेदविज्ज्ञानिवाक्यं च महान्तः शुभदा गुणाः ॥ 'विशिष्टविष्ठवाक्यं महागुण' इति स्वरणात् तद्प्रत्ययेनान्यं प्रत्य-नुयोगो निषिद्धः । तथा च गुरुः—

> देवज्ञैर्नेद्तत्वज्ञैर्मुहूर्तोऽन्विष्यते यदि । सुमुहूर्तस्समन्वेष्यो नान्येर्नक्षत्रसूचकैः ॥

इति ।

न दैवज्ञा यतस्ते तैरशास्त्रज्ञैन लम्यते ।

अथान्यस्तिद्विशिष्टो दैवज्ञः प्राप्तः तं प्रत्वनुयोगोऽनुमत एव, तदर्थं गुरुणा 'नान्येनेक्षत्रमूचकैः' इत्युक्ता अज्ञास्त्रज्ञैने लम्यत इति तद्वेतुरुक्तः । तत्रातिक्रमदोषो नास्ति । यत् स्मृतिः-—

बाह्मणातिकमो नास्ति मूर्खे मन्त्रविवर्जिते।

इति । प्राक्तना अपि यथाई पूज्याः, विश्विष्ट तु विश्विष्टपूजा कार्या। लग्ने सौम्यवर्गत्वमभिजिङ्कप्रत्वमित्यन्ये । तथा च नारदः—

षड्वर्गः पञ्चवर्गी वा शुभानां यत्र संभवेत् । लग्ने स एव कालस्त्यात् शुभटष्टचाभिनित्स्वयम् ॥ लग्नराशो शुभाक्येन ग्रहेण रहिते तदा । लग्नभागेऽभिनित्संझे दोषाः सर्वे शमं ययुः ॥

अभिजिल्लग्रभागश्च रह्नेनोक्तः—

लमे चतुर्दशे मागे वृषस्य मकरस्य च कन्याककेटमीनानामष्टमे द्वादशेऽिळनः। कुम्भस्यांशे तु षड्विंशे चतुर्विंशे तु तैलिनः नृयुकार्मुकयोः कार्यसिद्धिः सप्तद्यांशके॥ इति । पश्चाङ्गादिगुणानाह—

अबाध्यमानी विहितः क्रियासु पञ्जाङ्गयोगो गुणनायकाख्यः । षडङ्गयोगो गुणराज उक्तः सप्ताङ्गयोगो गुणराजराजः ॥

अबाध्यमानः क्रियामु विहितः—अत्याज्यत्वेनाानिषिद्धचमान्तो दोषैरनुपहन्यमानो वा । पञ्चाङ्गस्य-नक्षत्रादेः । योगः—सङ्गतिः। गुणनायकाख्यः—गुणाभाम इत्यर्थः । तथाविधः षडङ्गयोगो गुण-रानो—गुणश्रेष्ठः । ताद्यशः सप्ताङ्गयोगा गुणरानरानः— गुणाधिरान इत्यर्थः । एतदुक्तं भवति—निदोषादीनि नक्षत्रादीनि कर्ममु विहिन्तानि चेत् अयं मध्यगुणः । सहस्रशेन चेदुत्तमः । स्राप्त्रम्यां सह चेत् उत्तमोत्तमः । तथाच गुरुः—

कियाणां षोडशादीनां चोदितानि पृथक् परैः । यानि तान्युडुवारांशतिथिलमादयो गुणाः ॥ कर्मणो यस्य लमादिभानि म्रहयुताः शुभाः । कथिता ब्रह्मणा होते गुण मुख्या विशेषतः ॥

इति । एष्वाद्यो गुजः सर्वेर्छम्यते । द्वितीयः कैश्चिदेव । तृतीयः मुक्तिभिरेव लम्य इत्याह—

प्रसन्नदैवज्ञविधिप्रदिष्टं सुखप्रदं दुर्लभमन्पपुण्यैः । सप्ताङ्गसंपत्तिसमेतमेतत् मुहूर्तराज्यं सुकृतो लभन्ते॥ पुण्यवन्तस्सन्तः पुरुष एवैतदुक्तगुणयुक्तं मुहूर्गाण्यं राज्यं लभनते । राज्यं तावत् प्रसन्नेनाभिमुखेन दैवज्ञेन स्वकृतप्राक्कर्मः विदा विधिना देवेन प्रातेपादितं सुखप्रदं—स्त्रीभोगादिबहुसुखप्रदं । स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गवलाण्यसप्ताङ्कसमृद्धिमदक्ततबहुपुण्येः दु-ष्प्रापं, ईटशं राज्यं सुकृतिन एव लभनते । मुण्यतमं मुहूर्ते च प्रसन्तेन-मणिकनकफलकुसुमाद्युपायनोपनयनस्तकारैः परितृष्टेन मौहूर्ति केन विधिना—शास्त्रोक्तविधानेन दत्तं शुभोदकत्या सुखप्रदं स्व-लपपुण्यः दुर्लभं, नक्षत्रवारादिसप्ताङ्गानुकूल्यगुणयुक्तं ईटशं सुकृत एव लभनते । अत्र मुहूर्तं राज्येन रूपितमिति रूपकं नामालङ्कारः ॥ सामान्यं प्रहाणां गोचरगुणमाह—

सौम्याः केन्द्रत्रिकोणेषु पापाः क्षतसहोत्थयोः। एकादशे स्थितास्सर्वे शुभास्स्युःसर्व(शुभ)कर्मसु॥

सामान्येन सर्वकर्मसु शुगाः । पापग्रहाः षष्ठतृतीयैकदशस्थाः शुगदाः सर्वे शुगाः पापाश्च एकादशे शुगदाः । अयं ग्रहाणां सामा-न्यगोचरगुणः । तथा चोक्तं—

यदि सबल्झामारस्युर्लमकेन्द्रतिकोणे मवरिपुसहनस्थाः क्रूरसंज्ञा म्रहाश्च । हिमरुचि च शुमारो पुण्यकर्मण्युदारे बल्रवित समयेऽस्मिन् सर्वकर्माणि कुर्यात् ॥

इति । पूर्णपञ्चकयोगमाह—

शशाङ्कनक्षत्रजलाभिवृद्धि-र्घटोऽप्यारिक्तस्तिथयश्च पूर्णाः ।

स्यात्पश्चपूर्णाह्नय एव योगो गुणाधिराजदशुभकर्मणीष्टः ॥

शशाङ्कवृद्धिः—शुक्कपक्ष इति यावत्, नक्षत्रवृद्धिः—स्वेश्वसं-योगस्थानात् प्राक् परं च त्रित्रिराशिस्थे चन्द्रे नक्षत्रं वर्धते । जलवृद्धिः—चन्द्रोदयास्तमयाम्यामारम्य राशित्रयं जलं वर्धते । तथा अरिकः—पूर्णस्ताराकलशः तं च वक्ष्यति । पूर्णाः—तिद्दे-नन्यापिन्यः पश्चम्याद्या वा तिथयः एतत्पञ्चकं यदि सङ्कतं अयं पश्चपूर्णाल्यो योगो गुणश्रेष्ठः । अयं सर्वश्चमकर्मणि हितः । व्यस्ता

अप्येते गुणाः । तथा च भरद्वाजः--

यथा चन्द्रमसो वृद्धिः शुक्रपक्षे कतं तथा । कृष्णपक्षे कृतं तद्वत् क्षीयते न च वर्षते ।।

अत्रिः--

नसत्रवृद्धि प्रवदन्ति पूर्वं पक्षं परं चन्द्रमसोऽभिवृद्धिम् । दैवर्कमन्ये शुभकर्मकृत्य वारक्षित्रप्रेषु शुभं विद्यात् ॥

इत्यादि द्रष्टव्यम् ॥ ताराकलशमाह—

दिकाराणां मध्यमाः स्तम्भसंज्ञाः त्रिस्रस्तिस्रः पार्श्वसंस्था घटाख्याः। तिष्ठत्यकों यत्र रिकस्स कुम्भः संपूर्णोऽन्यः स्तम्भसंज्ञोऽपि तद्वत्॥ सप्तरेखाचकं छिखित्वा दिख्यध्यरेखा विहाय ति प्रियार्थिगता-स्तिस्त्रस्तिस्त्रो रेखाः कुर्यात् । तेषु कित्तिकादिभानि त्रीणित्रीणि स्तम्भेष्वेकैकं न्यसेत्, तेषु यत्र कुम्भे सूर्यचारक्षं भवति स रिक्तः । तद्रश्रस्थोऽन्यः सः पूर्णः । एवमन्येऽपि रिक्ताः पूर्णाश्च स्युः, स्तम्भोऽपि तद्वत्—कुम्भवत्, सूर्ययुक्तो रिक्तः तत्पुरस्थः पूर्णः, अन्यो च तथा स्यातां । तथाचोक्तम्—

दिग्मेषु मध्यमाः स्तम्भाः तद्भूवीघिस्त्रिकौ घटौ ।
यत्रार्कः स घटो रिक्तः पूर्णोऽन्यस्स्तम्भ एव च ॥
इति । अन्ये राशिवशादाहुः यथा —सूर्योक्रान्तो रिक्तः तद्मस्थः
पूर्णः इत्यादि । तथा च पद्धतौ—

ऋक्षे यस्मिन् रिवस्तस्मात् रिक्तः पूर्ण इति क्रमात् । कुम्मद्वित्रयचक्रं तत् सर्वो रेखा विभाजयेत् ॥ राशो वाऽपि क्रमो ह्याष भवेचक्रं द्वितीयकम् । रिक्तोदये (१) जयी स्थायी पूर्णे यायी जयी भवेत् ॥

केचिद्न्यथाऽऽहुः—तथा च संग्रामविनये—

रेखाद्वयमाछिल्य द्वाम्यां तं वेधयेत् पुनश्चापि । रेखाचतुष्कमासां कोणेषु च दापयेचापि ॥ अंशस्थाने मेषः सिंहः प्राच्यां धनुः शिखिस्थाने । तत्पार्थगतो वृपमो याम्येऽन्त्यो वाऽपि मृगकन्ये ॥ तस्य समीपे मिथुनं तुला च वरुणे घटश्च वायच्ये । कर्की तस्य समीपे सोम्ये कीटो घटश्चान्त्ये ॥ द्वादशराशिसमेतं चकं संलक्षयेत् चतुष्काङ्गम् । राशित्रितयं मुक्तं रिक्तं पूर्णं रवेश्च वशात् ॥ यस्मिन् कुम्मे मूर्यः स्थितस्स रिक्तो भवेत्तद्शुभकरम् ।
पूर्णं तद्रअकुम्मं जयप्रदं सर्वसिद्धिकरम् ॥
यन्मासे यत्र रिवः दियाशौ तिष्ठति त्रिशूलाल्ये ।
सा दिग्विन निराय शुभेषु रिवसमुखी नित्यम् ॥
न कुषि न च वाणिज्यं न स्थानं नाहवं न मङ्गल्यम् ।
न विवाहं न च यात्रां गृहप्रवेशं च कारयेत् धीमान् ॥

इति । मुहूर्तानाह--

अहः पञ्चदशो भागो मुहूर्तस्तारकामयः। दिवा पञ्चदशोक्तास्ते रात्नौ चापि तथा स्मृताः॥

दिनमानस्य पश्चदशो भागः किंचिदूनाधिकघटीद्वयात्मको मुहूर्त इत्युच्यते । स च नक्षत्रमयः । ते मुहूर्त दिवा पश्चदश, रात्रौ च तथा । रात्रिपश्चदशांशात्मकाः पश्चदश स्युः । तथा च नारदः—

अहः पश्चद्शो मागः तथा रात्रिप्रमाणतः । ¹मुहूर्तमानं ते एव क्षणक्षीणि समे स्वरे ॥

इति । मुहूर्तस्य द्विविटिकात्मकत्वं सामान्यं अयं विशेषः, यथा दिनरात्रचोः प्रागुक्तः कालमात्रामिषायी । अयं तु दिनरात्रिपश्चद-शांशपरिच्छित्रकालामिषायीति विशेषः॥

मुहूर्तानां तारकामयत्वं प्रपञ्चयति द्वाम्याम्—

आद्रोरगमित्रमघावसुजलविश्वाभिजिहिरिश्चेन्द्राः। ऐन्द्रायमूलवरुणार्थमभगतारा दिवामुहूर्ताः स्युः॥

गिनारदीयसंहितापुस्तकेतु-मुहूर्तमानं द्वे एव क्षणार्धे च समे वरे इतिदृश्यते.

क्रमशो निशामुहूर्ता रुद्रो भाद्रादयोऽष्ट तारा-श्च । अदितिगुरुविष्णुहस्तत्वाष्ट्रसमीराश्च कीर्तिता मुनिभिः ॥

सूर्यस्योदयात्परमस्तमयादर्वाक् ये पश्चदश मुहूर्तास्सन्ति ते कमेण आद्रादिपश्चदशतारात्मकाः स्यः । तथा रात्रावस्तमयात् परं उदयादर्वाक् ये सन्ति ते क्रमात् अद्रीभाद्रादिपश्चदशतारकात्मका-स्युः। भाद्रादयो मृगशिरावसाना अष्टी तारा इत्यर्थः, अत्र नारदः—

दिवा मुहूर्तो रुद्राहिमित्राः पितृवसूदकम् । विश्वे विधातृब्बह्मेन्द्रा इन्द्राप्रचसुरतोयपाः ॥ अर्यमा भगसंज्ञश्च विज्ञेया दश पश्च च । ईशाजपादहिर्नुभ्रचपूषाश्वियमबह्नयः ॥ ¹धातृचनद्रादितीन्द्राच्यीविष्णुकत्वाष्ट्रवायवः ॥

इति। अत्र के चिदैन्द्रैन्द्राग्नयोः ऋमव्यत्ययमिच्छन्ति। तथा च भरद्वाजः—
रौद्रस्तार्पस्तथा मैत्रः पैत्रो वासव एव च ।
आप्यो वैश्वस्तथा ब्राह्मप्राजेशैनद्राग्नमुच्यते ॥
ऐन्द्रोऽथ नैर्ऋतश्चेव वारुणार्यमणौ तथा ।
भाग्यश्चेव दिवा ज्ञेया मुहूर्त दश पश्च च ॥

मुहूर्तानां गुणदोषदैवतान्याह—

सर्वे स्मृता मुहूर्ताः शुभकर्मसु तत्तदक्षसदश-गुणाः । तत्सदशदैवताश्च ब्रह्माभिजितः स्मृतं दैवम् ॥

¹ भातःचन्द्रादितीज्यास्यवस्वर्भ इति नारदसं, पा.

एते सर्वे दिनरात्रिभवा मुहूर्नाः शुभकर्मभु कार्येषु प्रातिस्विक-नक्षत्रसमगुणाः तत्समानदेवताः स्युः । यो मुहूर्ते यन्नक्षत्रात्मकः तस्य तन्नक्षत्रवत् गुणाः देवता चेत्यर्थः । नक्षत्रगुणास्तावत् क्रिया-योग्यत्वं क्रियानिषिद्धत्वं स्थैर्यादिभेदा ¹अन्तरङ्गादिवारादियोगादुष्ट-त्विमष्टत्वं चेत्याद्यः । भरद्वाजः—

नक्षत्रसदृशास्तेवे मुहूर्ताः स्युः संदैवताः । तेषां कालगुणं सर्वं नक्षेत्रेप्वित विद्यते स नारदः—

> यस्मिन् ऋक्षे च यत्कर्म कथितं निखिलं हि तत् । तहैवत्ये तन्मुहूर्ते कार्यं यात्रादिकं सदा ॥

श्रीपतिः--

दिक्छूलाचं चिन्तनीयं समस्तं तद्बद्दण्डः पारिषश्च क्षणेषु ॥

इति । यदा त्वात्ययिके कर्मणि स्वोक्तनक्षत्रं गुणहीनं सदोषं वा स्यात् तदा नक्षत्रसंबन्धिनि मुहूर्ते कार्यं स्यात्, यथाऽऽह गुरुः—

यस्मिन् यस्मिस्तु नक्षत्रे कर्म यद्यदुदाहृतम् । तस्य तस्य गुणैहींने नक्षत्रे कर्मणो यादे ॥ सदोषे वाऽपि कर्तव्यं क्षणे नक्षत्रनामिन । निर्देषकाले यत्कर्म कृतं तेन समं शुभम् ॥

इति । यदा पुनरात्ययिकं कर्म निषिद्धायनर्तुमासदिनादावेव कार्य-मापतेत् तदा तदहोरात्रं वर्षं कल्पायित्वा तदर्थं दिनमुत्तरायणं रात्रि

¹ भन्तरङ्गभेदा दुष्टत्वामिष्टत्वं चेलादयः, पा.

दक्षिणायनं तत्त्रचंशानृतून् ऋत्वर्धे मासं तद्धे सार्धिद्वेषिकाः मितकालं होरात्मकं पक्षं कृत्वा स्वोक्तायनादौ सन्नक्षत्राख्यमुहूर्ते तत् कार्यम् ॥ तथा च गुरुः—

सद्यस्कालीनकार्येषु तदहोरात्रवत्सरे । ऋतुमासादिकं कत्वा क्षणैनेक्षत्रनामभिः ।। यात्राविवाहकार्याणि सर्वाण्यत्र प्रयोजयेत् ॥

इति । केचित् चन्द्रप्राग्लग्नेषु मुहूर्तेषु त्रिष्विप नक्षत्रगुणानिच्छन्ति । तथा च भरद्वाजः—

> पूर्वलिप्ने मुहूर्ते च चन्द्रे चैवेत्युडुत्रयम् । ज्ञातन्यं सततं तस्तु युगपद्विद्यते फलम् ॥

इति । अन्ये द्विषा लगानयनमाहुः । तथा च— स्थूलराशिश्च सूक्ष्मश्च द्विविषं लग्नमिष्यते । तयोस्तु युगपद्विद्यात् फलमेकेन नेष्यते ॥

स्थूलराशिः प्रसिद्धः । सूक्ष्मस्तावदुक्तस्तेनैव—

ग्रहं च नक्षत्रमथोदयं च तत्काल्ज्जुद्धिं तिथिमानयित्वा । तद्वादराग्नेऽथ हते तु राज्ञिः संयोजितः सूक्ष्ममथ स्थिरं स्यात् ॥ एकैकस्मिन् ऋक्षे पश्च च नाडीनिज्ञाकरस्तिष्ठत् । इति वदति शास्त्रमेतत् तत्तद्वाश्यादिमारम्य ॥ अंशकाः शतमष्टौ च एकैकांशिवभागतः । विज्ञेया लग्नशुद्धचर्थमन्यथाऽन्यैरुदाहतम् ॥ VIDYAMADAVIAM इति । एतदुक्तं भवति—उदयादारम्य गतघटीपिण्डं पश्चिभिर्विः भज्य छञ्घराशीन् स्वेष्टकाछिके संयोज्य हृतिश्चष्टं षड्गुणितः मंशादि च तस्मिन् योजयेत्, स तास्काछिकः सूक्ष्मः स्यात् । यहा—गतघटीपिण्डमष्टोत्तरशतेन हत्वा चतुर्भिरासघटीपिण्डे तत्काछ-गतादिनक्षत्रघटीः संयोजय षष्टचासानि दिननक्षत्रादीनि सूक्ष्म-राशिभानि स्युः । केचिदन्यथा आहुः । तथा च नरपतिः—

इष्टनाड्यो हता घिष्ण्यैः षष्टिभक्तासरोषिते । अश्विन्यादीन्दुभूक्तेन युते तत्कालचन्द्रमाः ॥

इति । के चिदेवमाहुः--

इष्टनाडीरघींकृत्व चतुर्घी निधाय तासु गततिथ्यादीनां सङ्ख्यां संयोज्य त्रिंशदादिना प्रमाणराशिनाऽऽप्ताः तिथिवारता-रायोगाः स्युः इति । उक्तं च—

> अधींकृत्येष्टत्राटिकाः तिथ्पादींस्तत्र योजयेत् । तत्तत्सङ्ख्याविभक्तं तत् पञ्चाङ्गं क्षणिकं स्मृतम् ॥

इति । अभिनिन्नक्षत्रस्य देवतानभिधानात्तामाह — ब्रह्माभिनितः स्मृः तं देवम्—

इति । अभिजिन्मुहूर्तस्यापि ब्रह्मा देवता । शुभाशुभमुहूर्तेपरिगणः नामाह—

दिनरात्रिजा मुहूर्ता ये कथितास्त्याज्यतारका-रूपाः । एकादशाज्यभास्ते शुभकर्मसु पूजिता-श्चान्ये ॥ दिवारात्रचोर्ये त्रिंशन्मुहूर्तास्तेषु ¹कुस्यादित्याज्यर्शात्मका एका-दश सन्ति ते अशुभाः । अन्ये प्राह्यताराह्मपाः शस्ताः स्युः ।

ननु त्याज्यक्षात्मका द्वादश मुहूर्तास्सन्ति, तत्कथमेकादशे-त्युक्तम्, सत्यं, ते द्वादशैव, अपि तु रुद्धतारारूपो द्वौ स्तः। तयोरेकतारारूपत्वादैक्यमेवेत्येकादशेत्युक्तमित्यदोषः । तथा रोहिणी-रूपो द्वौ, तयोरप्येक्यात् शुभा अपि षोडशैव मुहूर्ताः। एतदुक्तं भवति—दिवा अष्टौ कष्टाः, रात्रौ चत्वार इति द्वादशाशुभाः। दिवा षट् रात्रावेकादशेति सप्तदश मुहूर्ताः शस्ताः। परिशिष्टस्य अभिजितो गुणमाह—

उत्पातिविष्ठिव्यातिपातपूर्वाः त्रिहान्ति दोषानिभिजिनमुहूर्तः । करोति याम्यामपाहाय काष्ठां दिगन्तराणि व्रजतोऽर्थसिद्धिम् ॥

उत्पातादिमहादोषानप्यभिजिनमुहूर्तो नाशयति किमुत क्षुद्रान् । तथा च गार्ग्यः—

> विष्टिन्यतीपातरुतं च दोषं सर्वप्रहोत्पातसमुत्थितं च । मध्यन्दिने दीप्तसहस्त्रश्मी निहन्ति दोषानभिजित् प्रयुक्तः॥

इति । पूर्वेत्रहणात् सर्वान् दोषान् नाशयतीत्यर्थः । यन्नारदः — मध्यन्दिनगते सूर्ये मुहूर्ते। डिभिनिदाहृयः । नाशयत्याखिलान् दोषान् पिनाकी त्रिपुरं यथा ॥

¹ कृत्तिकादि.

इति । तथा याम्यां दिशमपहाय अन्यादिशं व्रजतः पुरुषस्य अभीष्टिसिद्धं कार्यसिद्धं करोति ; यत्कार्यार्थी व्रजति तत्कार्यं सिच्यः तीत्यर्थः ॥ तथा च श्रीपतिः—

अष्टमो ह्यभिनिदाह्यः क्षणो दाक्षणाभिमुखयानमन्तरा । कीर्तितोऽपरककुप्सु सूरिभिः यायिनामभिमतार्थसिद्धये ॥

इति। वारेषु वर्ज्यमुहूर्तानाह-

भानोरर्यमदैवतो हिमरुचेः ब्राह्मस्तथा नैर्-ऋतो भूपुत्रस्य च पित्रचवह्नचिषपती चन्द्रात्मज-स्याभिजित्। पित्रचब्राह्मसमाह्नयावुद्दानसो रक्षोऽ-म्बुदेवौ गुरोः सार्पश्चाह्नि द्यानेरमी तु नियमात्त्या-ज्या मुहूर्ता बुधैः॥

सूर्यादिवारेष्वार्यमणाद्या एते मुहूर्ता नियमात् वर्ज्याः, सूर्यस्य वारे अर्यमदेवतश्चतुर्देशः, चन्द्रस्य ब्राह्मनेर्ऋता—नवमद्वादशो, कुलस्य पित्रचाग्नेयो —चतुर्थेकादशो, बुधस्य अभिनिदष्टमः, शुक्रस्य पित्रचब्राह्मो—चतुर्थनवमो, गुरोः रक्षोऽम्बुदेवो—द्वादशषष्टो, शनेः सार्पः—द्वितीयः। अत्र नारदः—

> अर्यमा राक्षम् लाह्यो पित्रचाग्नेयो ततोऽभिनित् ॥ राक्षसाप्यो बाद्मापित्रचौ भौजङ्गेशाविनादिषु । वारेषु वर्जनीयास्ते मुहूर्ताः शुभकर्मसु ॥

इति । बहुगुणयोगेऽपि तेषां त्याज्यत्वाभिधानार्थे नियमादित्युक्तम् । तथा च नारदः—

भास्कर।दिषु वारेषु ये मुहूर्तास्तु निन्दिताः। विवाहादिषु ते वज्यी अपि लक्षमुणैर्युताः।

इति । अत्र ब्राह्ममुहूर्तस्य दिवैव वारयोगदोषः, न रात्रौ, यतो न रात्रौ वारदोषोऽस्तीत्युक्तम् । तस्मादेवाग्नेय इति साहचर्या-दैन्द्राग्नमुहूर्तो गृहीतः । अन्यथा रात्रौ वारदोषाभावात् तदिभधान-स्य वैयर्थ्यं स्यात् । अथैषां पुराणप्रसिद्धाः संज्ञा आह—

संज्ञाः पुराणकथिता रौद्रः श्वेतस्तथा मैत्रः। आरभटस्सावित्रो वैराजश्चाथ गान्धर्वः।

अभिजिच रौहिणवलौ विजयाख्यो नैर्ऋत-श्शाकः। वारुणभगदेवत्याविति विज्ञेया दिवा मुहूर्तानाम्॥

दिवा मुहूर्तानां पञ्चद्शानां रौद्राद्याः पञ्चद्श सङ्ख्याः संज्ञाः पुराणेषु प्रोक्ताः, पुराणेः प्रोक्ता वा एवमुक्तवद्विज्ञेयाः । तथा च नारदः—

पौराणिका रौद्रसितमैत्राश्चारभटः क्षणः । सावित्रश्चाथ वैराजो गान्धर्वश्चाष्टमोऽभिजित् ॥ रौहिणो बल्लसंज्ञश्च विज्ञेयो नैर्ऋतस्ततः । ऐन्द्रश्च वारुणः पश्चदशश्च भगसंज्ञकः ॥

इति । अत्रेतिः प्रकारवचनो वा । तेनैतत् सिध्यति । एवं रात्रि-मुहूर्तानामपि पौराणिकी संज्ञा द्रष्टव्यति । तथा च नारदः— रौद्रगान्धर्वे यक्षेशाः सारणो मारुतानली । रक्षो धाता तथा सौम्यः पद्मजो वाक्पतिस्तनः । पूषा हरिवीयुनिर्ऋतिर्मुहूर्तो रात्रिसंभवाः ॥

पौराणिकान् शुभमुहूर्तानाह-

अभिजिद्देराजश्च श्वेतः सावितमेत्रवलविजयाः। शुभकार्यसिद्धिजनकाः सप्त प्रोक्ताः पुराणज्ञैः ॥

एते अभिजिदाद्यः सप्तेव मुहूर्ताः सर्वकार्येषु सिद्धचुत्पादका इति पौराणिकैः प्रोक्ताः । तथा च नारदः —

> सितवैराजविजयाः मैत्रसावित्रसंज्ञकाः । अभिजिद्धल्रयुक्तास्ते सर्वकार्येषु सिद्धिदाः ॥

इति । अन्येऽष्टों न श्रुभा इति सिद्धम् ।

ननु कथं द्वितीयषष्ठदशमैकादशमुहूर्तास्त्याज्यक्षात्मकत्वेनाशुभा उच्यन्ते ? नैष दोषः, प्राक् ज्योतिश्शास्त्रमतेन अशुभा उक्ताः, अधुना पौराणिकमतेन शुभा उक्ता इति । उक्तं च—'प्रोक्ताः पुराणज्ञैः' इति । सन्मुहूर्ताः प्रत्यहं छम्येरन्, तत्र तारादिनामप्यान्तुकूल्यं यदि स्यात् स गुण इत्याह ॥

श्रेष्ठा तारा सित्तिथिस्तन्मुहूर्तः सित्तिथ्यर्घे सिन्निमित्तं च जातम् । योगेन्द्रोऽयं पश्चकल्याणनामा गार्ग्येणोक्तः सर्वकार्यार्थदायी ॥

¹ यक्षेशाश्वारुणो मारुतोऽनलः इति ना सं पा.

तत्कमिविहिता तारा तिथिश्च सन्मुहूर्त विष्टिस्थिरेभ्योऽन्य-त्करणं, तत्काले जातं निमित्तं—अज्ञाततद्वचापारैर्जनैरुद्धिमाणं इरितं वाक्यं शुभोदर्कहेतुमूतं उपाइतं फलपुष्पादिकं वा कता मङ्गल्यवेष्टा वा स्यात् एषां तारादीनां पञ्चानां योगो यदि स्यात् स पञ्चकल्याणाल्यो योगः श्रेष्टः सर्वकार्यफलश्रदः इति गार्ग्ये-णोक्तम् ॥ तथा च गार्ग्यः—

तिथिं मुहूर्तं नक्षत्रं करणं राकृतं च सत्। पञ्चकल्याणयोगोऽयं सर्वेकर्ममु पूजितः॥

इति । पश्चकरुपाणयोग एव वारक्षांदिशुभयोगवशादितशुभः स्यादिति ॥ शुभवारक्षयोगानाह—

उत्तरासिळ्ळपौष्णविष्णवो मातृमास्तवसुप्रतेतसः । मित्रदण्डघरपौष्णतारकाः सोममित्रभगविश्ववेधसः ॥

मैत्राश्विनीमारुतमातृतिष्या भगत्रयी नैर्ऋतषौष्णदस्ताः। धात्रिवायुत्रयवारिनाथाः सार्कादिवाराः शुभासिद्धयोगाः॥

उत्तरास्तिस्तः दण्डघरो-यमः भगत्रयी--उत्तराहस्तचित्राः, वायुत्रयं-स्वातिविशाखानूराधाः, वारिनाथो--वरुणः एते वृत्तेंकैक- पादगदितास्ताराः क्रमेण अर्कादिवारसंयुताः सिद्धयोगाल्याः, ते सर्वकर्मसु शुभाः। अत्र गुरुः—

पौष्णोत्तराणि हस्तश्च मूलश्चवणसप्तमैः । सूर्यवारयुता योगा दोषहालाहरे श्वराः॥ श्रवणादित्यवायव्यशकटैन्दवभैर्युताः । सोमवारे महायोगा दोषोरगखगाधिपाः ॥ मैत्रार्यमाश्विनीपूषा साहिबुंधचा च रोहिणी । भौमवारेण संयुक्ता योगाः स्युः दोषघस्मराः ॥ विश्वार्यमनिशानायमैत्रपूर्वात्रयाग्नयः । बुधवारयुता योगा दोषराक्षसराघवाः ॥ पुनर्वस्वाश्वनीतिष्यस्वातीमित्रा गुरोदिने । भाग्यनेर्ऋतपौष्णदित्रितया भृगुवारगाः ॥ कृत्तिका रोहिणी स्वातिश्शतताराऽऽर्किवारगाः। योगाश्जुभकला दोषतमसो भास्कराः स्वयम् ॥ एभिश्र तिथयश्शुक्के कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना । रिक्ताविष्टिपरित्यकास्तिथयस्महितारशुभाः ॥ सर्वस्थानत्रवेशादि सर्ववस्तुनिरीक्षणम् । सर्वदा तनुभृत्यादि कारयेदेषु पण्डितः ॥ राजानुग्रहिचहादि प्रासादाश्च गजादयः। हैभराजतताम्रादिकांस्यपात्राद्यमत्रके ॥ गनाश्वशालारम्भाश्र प्रवेशं तत्प्रदर्शनम् । तेषां च संग्रहं कुर्यात् अस्त्रसंस्कारसंग्रही ॥ नूतनागारवासं च नवभुक्ति च कारयेत् ।

अपि च--

कृत्तिकादिचतुर्वर्गात् बुधवारादितः ऋमात् । वृद्धि शुभं च सिद्धि च अमृतं चेति निार्देशेत् ॥ इति । अत्राभिनिता सह द्रष्टव्यम् । अमृतयोगानाह—

सार्कोदिवारा गुरुमूलहस्ताः चित्रादिमार्घश्रवणेन्दुताराः । बुध्न्याश्विनीविश्वभगप्रजेशा विश्वाग्निमित्राः शरशैलतिथ्योः ॥

त्रयोदशी मातृजलान्त्यभानि भगप्रचेतोमरुतस्तनन्दाः । भद्रासमेता वसुधातृवाताः क्रमेण योगा अमृताभिधानाः ॥

चित्रादिमार्थे—चित्रापूर्वोर्घं, शरशेलिविध्योः—पश्चमीसप्तम्योः पदमिता एतास्ताराः सूर्योदिवारैः बुधादित उक्ताभिस्तिथिभिश्च युक्ताश्चेदमृतयोगसंज्ञाः स्युः ॥ एतदुक्तं भवति गुरुणा—

> बार्हस्पत्यं च सावित्रं नैर्ऋतं सूर्यवारगम् । सर्वेषु शुभकार्येषु शुभदा स्मृताः । चित्राश्रवणसौम्यास्स्युर्यादे शीतांशुवारगाः । इमे चापि सुधायोगास्सर्वशोभनशोभनाः ॥ भाद्रपादाश्विनी चैव रोाहिणी चोत्तरास्त्रयः ।

¹ स्पुशुभा.

कुजवारेण संयुक्ताः सुघायोगा दिवा शुभाः । विश्वाग्निमित्रनक्षत्रा बुधवारसमन्विताः॥ पञ्चमासप्तमीयुक्ताः सुधायोगाः प्रकार्तिताः । पूर्वीषाढपुनवस्वी रेवती सहिता यदि ॥ गुरवारे सुधायोगास्त्रयोदश्या समन्वितः। स्वाताशातभिषम्भागैः सहितो यदि नन्दया ॥ शुक्रवारस्सुधायोगस्सर्वकर्माण दोषहा । रो।हिणीवसुवायव्यादशनिवारसमन्विताः । भद्रया साहिता योगास्सुधाख्याश्शुभवृद्धिदाः ॥ एषु सर्वेषु योगेषु विवाहे शोभना प्रजा । दीर्घमाङ्गरुयसंपाद्गिमीदते पुत्रवृद्धिभिः॥ यात्रायामिष्टासिद्धिस्यात् धनलाभैर्नयैरपि । विद्यारम्भेषु पाण्डित्यं चतुर्वर्गफलायतिः ॥ कृष्यारम्भे महाधान्यं प्राज्ञो यज्वा द्विजनमानि । नवाने दीर्घजीवी स्यात् चौले श्रीमान् निरामयः॥

इति ॥ बुधवारे चित्रायोगस्य दम्धत्वमसृतत्वं च प्रागाचार्येरम्यधा-यीति विरोधादाचार्येण तत्पूर्वार्थस्यामृतत्वमपरार्थस्य दम्धत्वामिति व्यवस्थापितम् । वरयोगानाह —-

चित्राम्नीश्वरपाशिनो दिनपतेर्वा रे सनन्दास्तथा भौन मस्याम्बुभुजङ्गपौष्णमरुतोयोगा वराख्याद्रशुभाः। नन्दाभार्गवभौमतीक्ष्णमहसां भद्रा कवीन्द्रोर्ज्या चान्द्रिक्ष्मासुतयोद्दशनेरपिपरापुणीगुरोस्सिद्धिदा॥ सूर्यवारे नन्दातिथिः चित्रादिभचतुष्टयं भौमवारे नन्दातिथिः पूर्वाषाढादिभचतुष्टयं एते वरयोगास्स्युः । तथा च गुरुः—

रै।द्राग्निचित्रावारुण्यो नन्द्याऽकंदिने युताः ।
पौष्णाप्यानिस्तापिक्षां नन्द्या भौमवासरे ।।
वरयोगा इमे सर्वे चतुर्मुखमुखोदिताः ॥
प्रामारम्भे गृहारम्भे पत्तनारम्भणादिषु ।
राष्ट्ररक्षादिके सेतुबन्धने च प्रसाधने ।
तटाकपरिखारम्भे मृत्यबन्धपरीक्षणे ॥
दास्त्रवाहनद्यादिच्छत्त्चिह्नप्रदर्शने ।
संग्रहे गृहवेदो वा वारयोगाः प्रचोदिताः ॥

इति ॥ अन्ये लाहुः— श्रोणा पुनर्वसू मूलभाग्यभात्तरभद्रकाः । स्वाती च कात्तिका सूर्योच्छुभयोगाः शुभवहाः ॥

गार्ग्यश्र-

वायव्यं रिववारेण सोमं मृगिशिरेण तु । आश्केषा भौमसंयुक्तं बुधे हस्तसमन्वितम् ॥ अनूराधा गुरावीरे वैश्वदेवं च मार्गवे । श्रतेश्वरः कृत्तिकायामानन्दो योग उच्यते ॥

इति ॥ अथ शुक्रादिवारेषु नन्दाद्यास्तिथयः सिद्धाख्याः, यथा शुक्र-भौमभास्वद्वारेषु नन्दासिद्धत्यादि । शनेवीरे परा रिक्ता सिद्धेत्यर्थः । अत्र नारदः—

> आदित्यभौमयोर्नन्दा मद्रा शुक्रशशाङ्कयोः । जया सौम्ये शनौ रिक्ता गुरौ पूर्णाऽमृताः शुभाः ॥

अन्ये--

नन्दा भृगौ सोमसुते च भद्रा भौमे जया सूर्यसुते च रिक्ता। पूर्णी गुरौ पश्चसु पश्च सिद्धाः शुभावहाः शोभनकर्मनिष्ठाः।।

इति । अन्ये सूर्यवारे रिक्ता सिद्धत्याहुः । तथा च सारसमुच्चये — नन्दा दैत्यगुरौ शशाङ्कबुधयोर्भद्रा जया भूमिन रिक्ताऽर्काकिदिने सुरेड्यदिनसे पूर्णा च सिद्धिप्रदा ॥

इति । यदिहार्कोदिवारेषु नन्दादीनां विद्धत्वमुक्तं तत्तु षष्ठचादिः व्यतिरिक्तानामिति द्रष्टव्यम् । अन्यैः सुधायोगोऽप्युक्तः—

> आदित्ये प्रतिपत्तिथिर्विधुदिने धर्मस्तृतीया बुघे षष्ठी भूमिसुते चतुर्थ्यपि तथा मन्दे भृगौ मन्मथाः । एकादश्यपि वाक्पतौ यदि भवेत् योगससुधागौरवम्

इति । गार्ग्यः— यदि विष्टिर्व्यतीपातो रिक्ता वाऽपि तिथिभवेत् । दह्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा ॥

इति । तिथिवारतारायोगाः यथा सर्वसिन्धौ—
मूलाश्विविष्णुहिर्नुभ्रचविद्वपैत्रभगाधिषाः ।
शूर्पाद्रीमूलवरुणरोहिण्याषाढकास्तथा ॥
प्रथमेन्दुदिनाद्येश्व तिथिवारैः क्रमाद्युताः ।
शुक्कप्रतिपदकीद्यैः योगाः षार्ड्वेशतिः शुभाः ॥

इति । गुरुः— रोहिण्यैन्दवपुष्याश्विमेत्रहस्तास्सतां दिने । नन्दाभद्रातिथियुता बलयोगा इति स्मृताः ॥ द्वितीया पश्चमी शुक्के सप्तमी च त्रयोदशी । शुभवारे शुभांशेन्दौ शुभयोगो महागुणः ॥

- इति । एते योगाः मलमासे न भवन्ति । तथा च गुरुः— चतुर्भिश्च मल्लैमीसैः विना कृष्णचतुर्देशीम् । कुहूं चापि विना होते महादोषविनाशनाः ॥
- इति । नित्ययोगाश्च नक्षत्रवद्गष्टव्याः । तथा च नारदः— सूर्येन्दुयोगनक्षत्रसंयुताश्चापि नित्यशः । योगास्सर्वे यथायोगं सर्ववारेषु शोभनाः ॥ करणाश्च तथा सर्वे सर्ववारेषु शोभनाः ।
- इति । वारर्क्षयोगास्तिथ्यृक्षयोगाश्च अन्यथाऽन्येहकाः । यथा-----अश्विन्यादिषु भित्रकेषु नवसु स्वांशेशवारान्वयात् मैत्रीमङ्गल्लरिकसंज्ञमुदितं योगत्रयं स्वार्थदम् । नन्दापङ्किशरेशिशशुस्तरुणकः पक्षान्तभद्रानिलैः रिक्ता विश्वभुजङ्गमेः स्थविरकः पादान्वयादुत्कटः ॥

इति । राशितिथियोगास्त्वन्यत्र द्रष्टव्याः । उक्तयोगानां गुणयोगमाह-

तिथिवारर्क्षयोगा ये प्रोक्तास्ते शुभकर्मसु । तत्तद्वारर्क्षगीतेषु विशेषात् सिद्धिदायिनः॥

एवं ये तिथिवारयोगाः तिथ्यृक्षयोगाः वारर्शयोगाः तिथि-वारर्शयोगा उक्ताः ते सर्वे तत्तद्योगसंपादकवारर्शति।थिविहितेषु शुभ-कर्मसु विशेषण सिद्धिदा भवन्ति । यद्यप्यविशेषण सर्वशुभकर्मस्वेते सिद्धिदाः, तथाऽपि स्ववारादिविहिनेषु विशेषतः सिद्धिदा इत्यर्थः। अन्यैरष्टाविशतिवारर्भयोगाः सूर्यादिवारेष्वित्यादिभादारम्य नन्दाः

द्या उक्ताः। तथा च श्रीपतिः—

मूर्योऽश्विभातुहिनरोत्तिषि च स्विधण्यात् सार्पाच भूमितनये राशिने च हस्तात् । मैत्राहुरौ भृगुसुते खलु वैश्वदेवात् छायासुते वरुणभात् क्रमशास्युरेते ॥

इति । योगसंज्ञाश्च रक्ठेनोक्ताः —
आनन्दः कालदण्डश्च धूम्राख्योऽथ प्रजापतिः ।
से।म्यो ध्वाङ्को ध्वजश्चैव श्रीवत्सो वज्जमुद्ररौ ॥
छत्रो मैत्रो मनोज्ञश्च पद्मो लम्बक एव च ।
उत्पाता मरणं काणः संसिद्धः शोभनोऽमृतः ॥
मुसलोऽगद्मातङ्गौ राक्षमश्च चरिस्थरः ।
वर्धमानश्च विज्ञेयो योगोष्टाविंशतिः क्रमात् ॥
यदि विष्टिव्यतीपाता भवन्ति गुळिकाद्यः ।
नश्येत्तदा शुभो योगो भास्करेण तमो यथा ॥

इति । नारदश्चाह— योगास्स्वसंज्ञफलदास्त्वष्टाविंशतिसङ्ख्यकाः॥

इति । अथ अमृतघटीराह-

संक्रत्याकृतिनागसायकजिनैरिन्द्रोत्कृतिभ्यां जिनैः मन्वकैस्तिथिशक्रनागवसुभिर्वदाष्टशकैः क्र-मात्। विद्येन्द्राब्धियुगार्कादेग्धृतिजिनैरकैः (शकैः)

पुराणेर्युता नाडीस्त्रिंशतमेष्वतीत्य परतो नाड्यश्च-तस्रोऽमृतम् ॥

संकृतिश्चतुर्विशतिः आकृतिद्वाविशतिः उत्कृतिष्वद्विशतिः युगानि चत्वारि एषु कृत्तिकादिभेषु क्रमेण संकृत्यादिसङ्ख्याभिर्युताः त्रिंशतं नाडीश्चतुष्पश्चाशदादिवटीरतीत्य तत्परतश्चतस्त्रो नाड्यः अमृनसंज्ञास्सयुः । कृतिकायां पश्चपश्चाशदादिवटीचतुष्टयममृतसंज्ञिमत्याद्यह्यम् । अत्रेयं वासना—षष्टिघटिकात्मकमेकं
नक्षत्रं, तत् चतुर्वटीस्त्रपम्बद्दशावयवयुक्तम्, तस्मिन् यद्वयवे
प्रागुक्तं विषं वर्तते तस्मात्सप्तमेऽमृतिमदम् । यथा नृणामङ्गे तिथिकमादारोहावरोहाम्यां वर्तमानादमृतस्थानात् सप्तमे विषस्थानं तथा स्यादिति । यद्वा कृत्तिकादिभेषु त्रिंशदादिविषनाडीरतीत्य परतः तत्समनन्तराश्चतस्त्रो घटिकाः अमृतसंज्ञाः। तथा च गुरुः—

"अमृताख्ये विषात्परे"

इति । यदा—भेषु त्रिंशतं चतस्तो नाडीः द्विषष्टिविटिका व्यतीत्य परतो विषवटीस्थानादमृतं भवति । यस्तिन् नक्षत्रे यत्र विषं तत-स्तस्मात् भद्रयमतीत्य तृतीये नक्षत्रे तास्मिन्नेव अमृतिमित्यर्थः । यथा कृत्तिकायां त्रिंशद्विटिकाम्यः परं विषं, तदेव मृगशिरस्या-मृतस्थानित्याद्यूह्यम् । यथाऽऽहात्रिः—

> वीरो नागनिशाभरं नगनिमं भूयः कपेनांगना नारी रागनलानरी हयकरा नारङ्गकं वेपनम् । भूयो नारिविपन्नलं भरनरं नेयं तयश्रेय इ-त्यश्वचादावस्ताः पराश्च घटिकाः प्रोचे विषानेत गुरुः ॥

इति । अमृतघटीकृत्यमाह-

अमृतघटिकाः समस्ते शुभकर्मण्यमृतयोगवद्गा-ह्याः । विषरोगादिचिकित्साविधौ शुभा इत्य-वाच्यमिदम् ॥

अमृतघटिकाः सर्वस्मिन् शुभकर्माण आवशेषेण प्राह्माः, अमृतयोगवत् इति । आदित्यहस्ताइयो अमृतयोगाः सर्वकर्मसु यथा शुभा भवन्ति । अनेनैव अमृतयोगाश्च सर्वकर्मसु शुभा इत्यप्युक्तम् । अपि तु विषं लूतादिविवादि, रोगाः राजयक्ष्मादयः, तेषां चिकि-त्साविधिः भैषज्यकर्म, आदिशब्देन रसायनवश्यपृष्टचादिप्रयोगा गृह्मन्ते, एतेष्वमृतघटिकाः अमृतयोगाश्च शुभाः इतीदमवाच्यम्, यतो नाम्नैव तत्सिद्धम् । अथ च अमृतयोगाश्च शुभाः विषरोगचिकि त्सादिष्वेव शुभा इति केषांचिन्मतम्, तद्सत्। यतस्ते सर्वकर्मसु अविशे-वेण शुभा इति गुर्वादिभिरुक्तम् ॥

कालगुणमाह—

शशी तदारूढगृहाघिपश्च लग्नाघिनाथश्च यदा त्रयोऽमी । बलाघिकाः सद्गृहदृष्टियुक्ताः गुणाघिकं तं कथयन्ति कालम् ॥

तात्कालिकश्चन्द्रः तदाक्रान्तराश्यिषपः तत्काललग्राविपश्च त्रय एते स्थानादिबलसंपन्नाः शुभदृष्टियुक्ताश्च यस्मिन् काले भवन्ति तं मुहूर्तकालं गुणाधिकमाहुः। अन्ये चन्द्रस्य एकस्यैव प्रावल्ये गुणाधिक्यमाहुः। तथा च भरहाजः—

प्रशस्तपक्षे शुभदे शशाङ्के भीचारिनाथांशकवर्जिते च । शुभग्रहेवीर्थयुतैश्च दृष्टे

चन्द्रे भवेत् श्रिष्ठतमं विलग्नम् ॥

इति ॥ केचित् चन्द्रतद्राश्योः चन्द्रलग्नयोः लग्नलग्नेश्वरयोश्च प्रावल्ये गुणमाहुः । अत्र गुरुः—

> चन्द्रश्च तेनोषितमं च सम्यक् प्रशस्तवीयान्वितमुख्यभावी । यदा तदा स्याद्गुणमुख्यमेतत् दोषाणि सर्वाणि विनाशयेखि ॥ भेशस्त्वतिस्निग्वविशाखरिमः शुभेक्षितो मं च तथाऽनुरूपम् । खग्नोपयुक्तं गुणनाथसंज्ञो दोषान् शतं सङ्काळितान् विभिन्दात् ॥

इति । भरद्वाजः--

चन्द्रयुक्तं शरीरं स्थात् छग्नं तु प्राणसंज्ञितम् । तावुभौ संपरीक्ष्येव कर्तव्यं श्रेय इच्छता ॥

इति ॥ अष्टवर्गगुणमाह—

कर्तुस्स्वजन्मसमयावसितग्रहाणां कृत्वाऽष्टवर्गकथिताक्षविधानमत्र । बह्वक्षयोगवद्यातः शुभराशिमास-भावग्रहस्थितिषु कर्म शुभं विदृध्यात् ॥ कर्तुः स्वजन्मकाले तात्कालिकस्फुटत्वेन ध्रुवत्वेन निश्चिन्
तानां समापितस्फुटादिपरिकर्मणां वा सूर्यादिनां स्वाष्टवर्गोक्तं श्रुमाश्रुमाख्याक्षन्यासाविधिं कृत्वा, अत्र बह्वस्योगवद्यतः यत्र बहूनि श्रुमाक्षाणि संयुतानि स्युः स राशिः श्रुमः, तस्मिन् राशो ततन्वन्धिनि मासे
तद्राशिव्यापिनि लग्नादिभावे च ग्रहे स्थिते शुमं कर्म कुर्यात् । एतदुक्तं
मवति—जन्मकाले सूर्यादिभिः सप्तिमराकान्तानि सप्तमानि प्राक् लग्नेन सह अष्टो लग्नानि ग्रहचारवद्यात् प्राणिनां शुमाशुमप्रदानि ।
तेम्यः श्रुमाशुमस्थानेषु स्वगतिवद्याच्चरन्तो ग्रहाः शुमाशुमानि
प्रयच्छन्ति । तद्यथोक्तमाचार्येण —

> पुरवासदुग्धनाकं गतनयमाद्यं गुणाक्षिधनपारम् । रे।षियं तुच्छेन्द्रं प्रथमं लघुतानकारमकेस्य ॥ ळूतासिंहनटं कुलान्तसनकं स्त्रीवाणताळानकं । काले घर्मसुनानकीपुरवसाहीनोयमित्यं विधोः॥ वार्गन्यस्यतु गर्ममासधनिकं गौणान्तकं चाष्टमं । गीतज्ञोऽयमिति ऋमेण गदितं सूर्योदि उम्रान्तकम् ॥ भौमस्य बाणतनयं गातिकंकुरवासहीनकं गुणतुष्टम् । स्तेनाकारं तेजायात्रां किपसिंहधेनुकं गणितनयम् ।: शीतळपत्रं रम्भातर्जनकं पुत्रवासदग्धनटम् । कुछशक्तिभेनुपुत्रं तदापरं पुत्रलाभमद्धन्यम् ॥ यात्रावसुनलनष्टं पुरभक्तननात्वामिन्दुपूत्रस्य । नीवस्य पत्रलावी सान्दिग्धनयं रणार्थिधैर्यं च ॥ पुरवसुजनकं परवशतालनटं पात्रलाभसौजीनकम्। श्रीमति घनिकं गोणीतारं परवशतुच्छधानुष्कम् ॥ निद्धातु शुक्रवर्गे दैलेन्द्रं पात्रलवणद्ग्धकरम् ।

लोमस्तब्धाकारं गुणेषु धन्यं महीधनाळां च ॥
पुरलवणदुग्धनष्टं लवमद्धानिकं परागिवदातिधियम् ।
मन्दस्य परावस्थाजनकं लितिकागुणस्तनाकारम् ॥
तेजोधीनाकारं मोक्षकरं तस्करं गुणस्तयम् ।
कुलवित्तनयं चेति क्रमशोऽक्षरसङ्ख्यया मयोक्तानि ॥
एतान्यष्टकवर्गे वाक्यान्यकादिलग्नपर्यन्तम् ।
तत्तत्स्थानादीनि नयस्याथ कुभाशुमं ब्रूयात् ॥
राशिचकं कत्वा सर्यादीन स्वाकान्तराक्षिष्वालिक

इति । राशिचकं कृत्वा सूर्यादीन् स्वाकान्तरा। शिष्वालिष्य, तत्तद्वाशेरुपकम्य कृतं तदुकसुखस्थानाङ्कान् सितालैः अनुकाः शुभस्थानाङ्कानसितालैः कृत्वा तत्तद्वाशिगतश्चमाशुभफलिकेषे कृते
यद्धिकं तत्र तत् फलं स्यात् । तच स्वाचादिस्यैः कृतं चेत्
इष्टं पुष्टं च, आदिस्थैः अल्पम्, व्यस्तमशुभमिति ॥ तथा च
वराहमिहिरः—

इति निगदितामिष्टं नेष्टमन्यद्विशेषात्
अधिकफल्लिपाकं जन्मिनामत्र दद्युः ॥
उपचयगृहमित्रस्वोच्चगैः पुष्टमिष्टं
त्वपचयगृहनीचारातिगैनेष्टिसम्पत् ॥
इति । शुभाक्षमसाम्ये तद्द्याभागः । एकैकाक्षाधिक्ये पादार्घमभिवृद्धं
शुभादिवाच्यम् । उक्तं च बादरायणेन—

कष्टरश्रेष्ठे तुल्यसङ्खेच फले चेत् स्यातां नादाः फलयोस्तत्र नादाः ॥ वाच्या पक्तियीऽतिरिक्तस्तयोः स्यात् स्थानस्थाने कल्पनेयं प्रदिष्टा ॥ इति । एवं क्रते यत्र राशों भूयांमि शुभाक्षाणि स्युः, तत्सम्ब-न्धिनि मासे सौरे चान्द्रे वा शुभं कुर्थात् । यत्र शुभाक्षशू-न्यत्वं तत्र वर्जयेत् । तथाचोक्तं—

सूर्याष्ट्रवर्गे यश्जूनयो मासस्संवत्सरं प्रति । विवाहव्यवहारादि तस्मिन्मासि विवर्जयेत् ॥

इति । तथा यत्र राशौ चन्द्रस्य शुभाक्षभूयस्त्वं तद्राशितारासु शुभं कुर्यात्, अन्यत्र वर्जयेत् । उक्तं च—

चन्द्राष्टवर्गे शून्याक्षगते चन्द्रे परित्यजेत् । शुभकर्माणि सर्वाणि कुर्याचेत् श्रेष्टराशिगे ॥

इति । सर्वोष्टवर्गाक्षसमुदाये यत्र राशावक्षाणि बहूनि समुदितानि तत्र शुभं कुर्यात्, अन्यत्र वर्जयेत् । तथाचोक्तं —

त्रिशाधिकाक्षसिहतानि शुभानि पश्च विशोनकान्यशुभदान्यथ मध्यगानि ॥ मध्यानि शस्तभवने शुभकर्म कार्यं कष्टेषु वर्ज्यमिखिलं शुभकर्मभेषु ॥

इति । किंच— यस्मिन् राशिफलं हीनं तेन रोगाचिकित्सितम् । कुयादणं च तत्सर्वं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥

इति । लग्नादिष्विप राशिवत् । तथाचोक्तं— सर्वाष्टवर्गनफलानि सम्हा योगान् मृत्योदिगण्यमशुमं च शुमं च मिश्रम् ॥ जन्मादितः फल¹विशेषदशा समीक्ष्य यात्राविवाहसमये बहुवर्गयुक्तः ॥

¹ विशेपदिशा.

इति । म्रहस्थितिश्च तद्भत् । अत्र गुरुः— अशुभक्रद्रिप खेचरा विलग्नादहितमगाऽपि निजाष्टवर्गकर्से । बहुतरगणनायुते तदर्से सकलगुणधिकराऽत्र दोषहा च ॥

किंच प्रागादिदिक्षु सर्वेषां प्रतिदिग्गतराशित्रयाक्षसमुदायं कृत्वा यत्राक्षबाहुळ्यं तिद्दग्गृहं श्रेष्ठम् । तथा च होरासारे—

प्रादिशण्येन राज्ञीनां फलान्येकत्र योजयेत् । प्रथक् प्रथक् चतुर्दिशु बह्नमे शोभनं गृहम् ॥ ग्रुभयुक्ते च हीनाक्षे सपापे च विवर्जयेत् । मेषगोयुग्मकर्कीणां त्रिकोणे वा शुभं गृहम् ॥ दिक्चके श्रेष्ठराशौ तु धनधान्यगृहं शुभम् । कृषिगोष्ठादिकं क्षीणराशौ नष्टं कृतं भवेत् ॥

इति । अपि च सूर्यादीनां अधिकाक्षराशिदिग्वशादेव देवार्चागृहा-दिस्थानानि । उक्तं च—

> रवेर्देवाचेनास्थानं शशाङ्काज्जलसंश्रयः । भौमान्महानसं स्थानं शुकस्य शयनालयम् ॥ मन्दस्य चोत्करस्थानं श्रेष्ठं बहुक्षराशिगम् ॥

इति । एतत् वास्तूपयुक्तमित्युक्तम् । जन्मिन स्वोच्चादिस्थोऽशुमोऽपि शुमकृत् । नीचादिस्थः शुमोऽप्यशुमकृत् । यथाऽऽह श्रुतदेव-कीर्तिः—

> ईषत्सुद्धत्स्वे। चमसान्निविष्टो मित्रर्सजनमोपचये बळीयान् ॥ यो जातकेऽभूत्स तु जन्मसंस्यो द्रद्याच्छुमं न त्वशुमोऽष्यनिष्ठम् ॥

अपचयराशौ नीचे शत्रुक्षेत्रे च जन्मकाले स्यात् । यस्तु स दद्यात् पापं फलमपि शुभदो यथाकालम् ॥ इति । अत्र शुभकर्मणां मुहूर्तादेशे दशाज्ञानिषष्टं, अन्यथा तत्फला दोशो दुष्करः, मुहूर्तेलग्नादिष जन्मलग्नस्य प्राधान्यात् । तथाच वरा-हिमिहिरः—

विदिते होराराशौ स्थानबलपित्रमहे महाणां च ।
आयुषि च पिर्ज्ञाते शुभमशुमं वा फलं वाच्यम् ॥
अन्ये वदन्त्याविदितेऽपि हि जनमकाले
योज्यस्मुकर्मसमयो मनुजेश्वराणाम् ॥
प्रश्नोदयोद्भवफलं सदसिहदन्ये
तत्वार्थविन्निगदित स्म वचो विसष्टः॥
अप्रच्छतः प्रच्छतो वा जिज्ञासीर्यस्य कस्यचित् ।
होराकेन्द्रित्रकोणेभ्यः तस्य विद्याच्छुभाशुभम् ॥

इति । एतदुत्तमं, नक्षत्रमात्रज्ञाने मध्यमं, अन्यथा अधमम् । तथा च विवाहप्रकरणे गार्ग्यः—

> उत्तमं मध्यमं चैवमधमं च त्रिधा मवेत् । द्वयोजीतकसंयुक्तमुत्तमं तु विधीयते ॥ नक्षत्रमात्रमेवात्र ज्ञात्वा कार्यं तु मध्यमम् । योगमात्रं द्वयोज्ञात्वा कार्यमत्राधमं भवेत् ॥

इति । अत्र जनमन्यज्ञाते प्रक्षे चाभिहिते मुहूर्तफळकथनं घुणवर्णन् वत् । तथाहि—समकालकतकर्मणामपि पुरुषाणां लप्नादिस्थशुभा-शुभग्रह्मोक्तसदसत्फलवैषम्यं दृश्यते । तच्च तेषां स्वजनमदशाधि-पा(दि)रिकृतम् । तथा च वराहमहिरः— होराविदो नगुरिदं सूतावबलो दशाधिपारिश्च ।
अशुभफलदोऽपि सांप्रतमुद्ये सौम्योऽपि नेष्टफलः ॥
सांप्रतफलदस्सूतौ बलान्वितो यो दशाधिमित्रं च ।
पापोऽपि स शुभदः स्यात् श्लोकश्शास्त्रोदितश्चात्र ॥
सौम्योऽप्यतीतिचरभाविकलो न योज्यः
पापोऽप्यसांप्रतफलो रिपुनिर्जितश्च ।
पाकाधिपास्सुहदनिष्टकवर्गशुद्धः
स्वल्पोऽफलश्च दिनभांशविधिस्तदा स्यात् ॥

इति । अपिच अन्यदशास्वन्यफलानुभवो विरुध्यत इति तद्रहफलं न समस्ति । तस्मात् जातकमालोक्य कर्तुः जन्मलप्रपयोः ग्रहस्य च मित्र-त्वादि निरीक्ष्य मुहूर्वं तत्फलं च आदिशेत् । अथवा प्रश्नोदयेन जात-कवत् सर्वं चिन्तयेत्, तथोस्तुल्यफलत्वात् । उक्तं च —

> यत्सारं पृच्छतः पुंसी अहहोराश्चितं फलम् । तत्सारं तस्य तज्जनम यद्यप्यन्यगृहे भवेत् ॥ बुद्धा शास्त्रं यथान्यायं बलाबलाविधानतः । यथोक्तं जातके सर्वं तथाऽप्यत्रापि चिन्तयेत् ॥

इति । भरद्वाजोऽप्याह—

यो ता प्रच्छिति यत्कमे विवाहगमनादिकम् । तत्तस्य प्रश्नकालेन वक्तव्यं हि शुभाशुभम् ॥ प्रश्नकालेन विज्ञेयः सर्वस्तस्य फलोदयः । ज्ञात्वा कमेवशात् प्राप्तियोज्या कमेमु तादृशी ॥

अयमर्थः — नातके ये सुनफानभृतयः शुनयोगाः तैः नश्वकाले हष्टैः शुभं ब्रूयात् । एवं ये दुष्टफला योगाः तैः अशुभं चिन्तयोदित्या-दिकं सर्व नातकवत् नश्चविधौ द्रष्टव्यम् । गुणानुपसंहरति — इयन्त एवात्र गुणाः प्रविष्टाः दोषापवादांश्च तथाऽऽहुरन्ये । येषां विभेदा बहवोऽतिसूक्ष्माः प्रकीर्तिता विस्तरतो मुनीन्द्रैः ॥

अत्र गुणाध्याये इयन्तः परिमिताः केनिदेव गुणा मया उक्ताः । अन्ये पूर्वाध्यायोक्तान् सामान्यान् दोषापवादयोगांश्च गुणानाहुः । तथा च गुरुः—

यद्वक्ष्याम्यत्र दोषाणामपवादानि वृत्रहन् ! । तत्सर्वं गुणभूथिष्ठं तेषां गुणबल्ले बलम् ॥

इति । किंच—एषां गुणानामितमूक्ष्मा बहवो भेदाः सन्ति, ते तु बृहस्पत्यादिभिः स्वशास्त्रेषु विस्तरत उक्ताः, इह तु प्रन्थबाहुल्यभयात् मया नोक्ताः इति शेषः । एवं सप्ताङ्गगुणानाभिषाय निमित्तगुणानाह—

व्यातो मनोऽभिरातिमाह गुणं प्रधानं वायूदयं तु कपिलः शकुनानि जीवः। गार्ग्यः प्रभातमृषिरात्रिरुपश्चतिं च विष्णुः समस्तशुभकर्मसु विप्रवाक्यम्॥

व्यासः सर्वशुभकमेसु कर्तुः स्वमनोभिरति प्रधानगुणमाह । तथाचोक्तं—

> निमित्तानुचरं सूक्ष्मं देहेन्द्रियमनुत्तमम् । तेम्यो ह्यतच्छरीरस्यं त्रिकालफलावेन्नृणाम् ॥ प्रीयते न मनोऽनर्थे नासिद्धावभिनन्दति ।

तस्मात्सर्वोत्मना यातुमनुमयं यथा मनः । शुभाशुभानि सर्वाणि निमित्तानि स्युरेकतः ॥ एकतस्तु मनो यातुस्तद्विशुद्धं जयावहम् ॥

इति । यातुरिति कर्तुरुपलक्षणम् ॥ कपिलो मुनिः वायोः स्वराख्यस्य उद्यमाह ।

यदुक्तं--

हंसः स्वयं स्वरो ह्यात्मा सर्वज्ञः सर्वभूतगः । तस्मात्सर्वाणि कार्याणि कुर्यात् स्वरमहोद्ये ॥

इति । नरपतिश्र— लामालामी मुखं दुःखं जीवितं मरणं तथा ॥ जयः पराजयश्चैव सर्वं ज्ञेयं स्वरोदये॥

इति । स्वरोऽपि द्विविधः — सूक्ष्मः स्थूलश्च । तत्र सूक्ष्मस्तावद्वामदाक्ष-णयोरिडापिङ्गलानाज्यात्मकयोः नासापुटयोः प्राणवायोः निर्गमप्रवे-शात्मकः । स च पृथिन्यादिपञ्चभूतमेदेन पञ्चविधः । अत्र नरपतिः —

> अष्टाङ्गुलं वहेद्वायुरनलश्चतुरङ्गुलम् । द्वादशाङ्गुलमाहेन्द्रो वारुणः षोडशाङ्गलम् ॥ मध्ये पृथिव्यधश्चाप उर्ध्व वहति चानलः । तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नमो वहति सङ्क्रमे ॥ पृथ्व्याद्येकैकतस्तु स्यादेकैकघटिकादयः । आदौ चन्द्रस्मिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे ॥ व्यतिपदादिदिनान्येवं त्रीणित्रीणि कृतोदयौ ।

¹ अहोरात्रस्य मध्ये स्युस्तेन द्वादश संक्रमा: इत्युत्तरार्धम्. 2 प्रतिपदादितो हानिस्त्रीणिक्रीणि क्रमोदयः

चन्द्रोदये यदा सूर्यः चन्द्रः मूर्योदयेऽथ वा ॥ अञ्जमं हानिरुद्धेगः ²शुमं सर्वं निजोद्ये । राशाङ्कं ³वरयेद्रात्रों ⁴दिवाकार्ये दिवाकरम् ॥ ⁵यात्रादानविवाहेषु वस्त्रासङ्कारभूष्गे । शुमे सन्धौ प्रवेशे च चन्द्रचारः प्रशस्यते ॥ वित्रह्यूतयुद्धेषु स्नानभोजनसङ्गमे । व्यवहारे तपोभङ्गे^{6 7}मानुचारः प्रशस्यते ॥ अन्यत्र विद्यारम्भेषु दीक्षायां वद्ययकर्षणे । शस्त्राभ्यासे विवादे च द्यूते खेटनचै।थेयोः ॥ वाहेन गजवाहादेरथ यन्त्रादिशिल्पने । लिपिलेखनगीतादौ मन्त्रयन्त्रादिसाधने ॥ रोगे भैषज्यवस्त्रे च विषभूतादिनियहे । क्रयविक्रयपण्येषु स्नानभाजनमैथुने ॥ उदारदाने युद्धे च मारणीचाटने तथा। मोहने स्तम्भने द्वेषे सूर्यः सर्वत्र पूज्यते ॥ स्थिरकर्मण्यलङ्कारे दूराध्वनि च संग्रहे । शान्तिके पौष्टिके दाने दिव्यौषधरसायने ॥ गृहप्रवेशने स्वामिद्शने बीजवापने । देवतानां प्रतिष्ठासु चन्द्रः सर्वत्र पूज्यते ॥

नरपितः-पृथ्वीजले शुभे तत्वे तेजो मिश्रफलोदयम् ।
हानिमृत्युकरौ पुंसामशुभौ व्योममारुतौ ॥

 $^{^1}$ सूँयादये यदा. 2 तींह्ने जायते ध्रुवम् । 3 चार. 4 दिवा चार्यो दिवाकरः. 5 यात्राकाले विवाहे च. 6 भये भङ्गे. 7 भानुनाडी प्र.

भट्टनाग:--

वश्यस्तम्भनयोः प्रशस्त उदयो भूमेर्जलस्योदयः शस्तश्शान्तिकपौष्टिकादिषु शुभेष्वद्धा कृशानोः पुनः । शत्रोदीरणमारणादिकरणेषूचाटनोत्सादने वायोः शान्तिकनिविषीकरणयोः व्योन्नो हितश्रोदयः ॥

इति । अन्ये स्यरोदये विश्वहोदयमाहुः । तथा च ब्रह्मयामले— मुस्थिते समधातीश्च वामदक्षिणमागगे । घटिके द्वे च सात्रिंशच्छ्वासताराः पृथक्षथक् ।। कुनाऽग्निर्मास्करः पृथ्वी शिनरापोऽनिलः फणी । इत्येवं दक्षिणे ज्ञेयं श्रहाणामुद्यं त्रिये! ॥ विधुरापो मृगुर्विह्विदेवाचार्यः त्रमञ्जनः । पृथिवी सोमसूनुश्च वामे त्रोक्तं श्रहोदयम् ॥ मन्दस्थार्थं भवेत्काले तदर्थं वसुधामुवः । तदर्थं च तद्र्थं च मानुभानुमुनोरिष । सोमस्यार्थं सितस्यार्थमधीर्थं बुधनीवयोः ॥

इति । किंच-

मेषाद्या राशयः प्रोक्ता दक्षिणेतरमध्यगाः । चरास्थरद्विस्वभावा दृश्यन्ते तु यथाक्रमम् ॥

इति । अत्र शुभराशौ शुभग्रहे। द्ये शुभं कार्यम् ।

रथू छस्त्वकारादिस्वरपश्चकिमन्नात्मा । स च मात्रावर्णग्रहराशिताराजीविषण्डयोगभेदेन अष्टधा । उक्तं च—

अकारश्च इकारश्च उकारश्च तृतीयकः । एकारश्च तथौकार एते पश्च स्वराः स्मृताः ॥

ष्टायेव्यादीनि भूतानि गुणा गन्धादयस्तथा । पञ्च स्वरा महादेवि! दीघीः पञ्च तथा स्मृताः ॥ अकाराद्याः स्वराः पञ्च भिद्यन्ते ते तथाऽष्ट्रधा । मात्रा वर्णी प्रहो जीवो राशिर्भ पिण्डयोगको ॥ मात्रादिस्वराणां लक्षणमुक्तं नरपतिना-¹प्रसुप्ता येन भाषन्ते येनागच्छन्ति राब्दिताः। तत्रैव नाम्नि वर्णाद्या मात्रा मात्रास्वरो मतः ॥ ²कादिभान्तान् लिखेद्दणीन् स्वराधो ङञणोजिझतान् । क्रोष्ठक्रमेण यो यस्य स स्वरो वर्णसंज्ञकः ॥ तत्र नामादौ संयोगाक्षरे सित तदाद्यो वर्णी ब्राह्यः ॥ ³अकारे मेषसिंहाळीकारे स्त्रीयमकर्कटाः। उकारे चापमीनौ च एस्वरे च तुलावृषौ ॥ ओस्वरे मृगकुम्भौ च राशीशास्तु प्रहस्वराः। स्वराधः स्थापयेत् खेटान् राशेर्यो यस्य नायकः ॥ अवर्गः ⁴षोढशाद्यश्च कादिकाः पञ्चपञ्चकाः । यशवर्गी चतुस्सङ्ख्यौ वर्गसङ्ख्या स्मृता बुधैः ॥ नाम्नि वर्णस्वरा प्राह्मा यथावर्गकुलक्रमैः।

प्रमुप्तो भाषते येन येनागच्छति शब्दितः । तत्र नामायवर्णे या मात्रा मात्रास्वरः स हि ॥

² कादिहान्तान्।

अस्वरो मेघसिंहाळी इ: कन्यायुग्मकर्कटा: । उस्वरे तु धनुर्मीनावेस्वरे तु तुलाश्चषौ ॥

भे षोडशाक्षरवर्गस्त्यात् कादिवर्गास्तु पश्चकाः । चतुर्वणौ वशौ वगौ सङ्ख्यावर्गेषु कीतिताः ॥

⁵ नाम्नि वर्णस्वरा ग्राह्मा वर्णानां वर्णसङ्ख्या ।

पिण्डिताः पश्चिमिमेकाः शेषं जीवस्वरं विदुः ॥
वृष्मेषावकारे ¹च यमस्याद्याः षडंशकाः ।
मिथुनांशत्रयं ²चान्यदिकारे सिंहकर्कटौ ॥
कन्यातुले उकारे च वृश्चिकाद्यास्त्रयोंशकाः ।
³एकारे वृश्चिकस्यान्त्याः षट्चापाः षण्मृगादिमाः ॥
अंशास्त्रयो मृगस्यान्त्याः कुम्भमीनौ तथौस्वरे ।
⁴एवंराश्यंशकाः प्रोक्ताः स्वरा राश्यंशकक्रमैः ॥
अकारे सप्त ऋक्षाणि रेवत्यादिक्रमेण च ।
पश्च पश्च इकारादावेत्रमृक्षस्वरोदयाः ॥
नाम्नि वर्णस्वरात् सङ्ख्या सङ्ख्यामात्रा स्वरात्तथा ।
⁵पिण्डे शरहते शेषः पिण्डस्वर इहोच्यते ॥
मात्रादिस्वरभेदेन स्वरानुत्पाद्य नामतः ।
⁵योगे स्वरोऽधिकः प्रोक्तः समे वर्णस्वरो मतः ॥

इति । ते च अकाराद्याः प्रभवशुक्कचैत्रप्रतिपत्सूर्योदयादारम्य दिन-पक्षमासर्त्वयनवर्षद्वादशाब्दभोगाः प्रत्येकमुदीयन्ते । उदिताः ते च पुनः आ च भोगान्तात् बालाः, ततः कुमाराः, ततः परं युवानः, इत्यादि पञ्चावस्था द्रष्टव्याः । उक्तं च—

> आद्यो बालः कुमारोऽथ युवा वृद्धो सृतस्तथा । निजावस्थास्वरूपेण फलदा नात्र संशायः ॥

¹ च मिथुनाद्याः

² चेवीमकारे

³ एकारे २।श्वकान्यांशाः चापष्षट् च मृगादिमाः ।

⁴ एवं राशिक्रमः प्रोक्तः नवांशकक्रमोदयः॥

⁵ पिण्डे शरहते शेषे पिण्डस्वर इहोच्यते ।

⁶ योगे शरहते शेषे योगस्वर इहांच्यते ॥

किश्चिद्धामकरो बालः कुमारश्चार्यलामदः ।

पर्नातिद्धि युवा दत्ते हानि वृद्धो सृतः क्षयम् ॥

यात्रायुद्धविवादेषु नष्टे दृष्टे रुजान्विते ।

व्वालस्वरोदयो दृष्टे। विवाहादिशुमेऽशुमः ॥

सर्वेषु शुभकार्येषु यात्राकाले तथैव च ।

कुमारः कुरुते सिार्द्धे सङ्ग्रामे भजते जयम् ॥

शुभाशुमेषु सर्वेषु मन्त्रयन्त्रादिसाधने ।

सर्वसिार्द्धे युवा दत्ते यात्रायुद्धे विशेषतः ॥

दाने देवार्चने दीक्षागृदमन्त्र पत्रज्ञान्यमे ॥

वृद्धस्वरोदयो आहो। रणे मङ्गो भयंगमे ॥

विवाहादिशुमं सर्वं सङ्ग्रामाद्यशुमं तथा ।

न कर्तव्यं शुमं किश्चित् जाते मृत्युस्वरोदये ॥

एषु बलाबलं युद्धादिषु प्राह्मम् । मृतो बालस्तथा वृद्धः कुमारस्तरुणस्त्वराः । यथोत्तरबलास्सर्वे ज्ञातव्याः स्वरवेदिभिः ॥

पञ्चमस्वरोदयोऽवश्यं वज्वैः । तथा चोक्तं— यो यस्य पञ्चमे स्थाने स स्वरो मृत्युदायकः । तृतीये तु भवेद्घाद्धिः रोषा मध्यफलप्रदाः ॥

इति । तत्कालादिषु मात्रादिस्वरवलं ग्राह्मम् । यथा— तत्काले मात्रिको ग्राह्मो दिने वर्णस्वरस्तथा । पक्षे ग्रहस्वरो ज्ञेयो मासि जीवस्वरोदयः ॥

⁴ सर्वसिद्धो युवा प्रोक्तो वृद्धे हानिर्मृते क्षय: ।

² बाळस्वरो भवेदुष्टा. ³ मे सक्षतो जय:• ⁴ प्रवल्पने, ⁵ यो भवेद्भन्यो रणे.

ऋतौ राश्यंशजो ब्राह्मः षण्मासे विष्णयसम्भवः । अब्दे पिण्डस्वरो ज्ञेयो योगो द्वादशवार्षिके ॥ इति । मात्रादिस्वरबलेषु कार्याण्युक्तानि-साधनं मन्त्रयन्त्रस्य यन्त्रयोगांश्च सर्वदा । अधोमुखानि कार्याणि मात्रास्वरबले कुरु ॥ वर्णस्वरबले सर्वं कर्तव्यं च द्याभाद्यानम् । सिद्धिदं सर्वकार्येषु युद्धकाले विशेषतः ॥ मारणं मोहनं स्तम्भं विद्वेषोच्चाटनं वशम् । विवादं विश्रहं घातं कुर्याद्राहस्वरोदये॥ स्वर्णयान।दिकं सर्वे वस्त्रालङ्कारभूषणम् । विद्यारम्भं विवाहं च कुर्यात जीवस्वरोदये ॥ प्रासादारामहम्याणि देवतास्थापनाचनम् । राजाभिषेको दीक्षा च कर्तव्यं राशिके स्वरे ॥ शान्तिकं पौष्टिकं यात्रां प्रवेशं बीजवापनम् ॥ स्त्रीविवाहस्तथा सेवा कर्तव्या भस्वराद्ये ॥ शत्रूणां देशभङ्गं च कोशयुद्धं च वेष्टनम् । सेनाध्यक्षस्तथा मन्त्री कर्तव्यं पिण्डकोद्ये ॥ योगेन साधयद्योगं देहस्थं ज्ञानसंभवम् । आर्णवं शाम्भवं चैव शाक्तयं च तृतीयकम् । इति । एषां वर्णस्वर एव बलवान् । उक्तं च-यथा पदा हस्तिपदे प्रविष्टाः यथा हि नद्यः खलु सागरेषु । यथा हरेर्देहगतास्मुरेन्द्राः तथा स्वरा वर्णबलोदयस्थाः॥

इति । एवं स्वरोदयवलमाश्रित्य सर्वाणि कार्याणि कुर्यादिति । जीवस्तु राकुनानि स्वर्णाक्षिपक्ष्यादीनां रुतचेष्टादृष्टिकीर्तना-न्याह । तथा चोक्तं—

> अन्यजन्मान्तरकृतं पुंसां कर्म शुमाशुमम् । यत् तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम् ॥

इति । तत्त्रपञ्चः परस्तात्करिष्यते ।

गाग्येः प्रभातं भास्करोद्यादवीक् षड्घटीरूपं कालमाह । तथा चोक्तम्—

> सुषुप्तचा स्वादितानन्दं सुखं चेतोऽभिवाञ्छति । प्रभाते सर्वकार्याणि कुर्यादात्मत्रसादतः ॥

इति । अत्रिरुपश्चर्ति तत्काले जनैरुदीरितं याद्यन्छिकं वाक्य-माह । यतस्तदुक्तं सत्यमेव । यत उक्तम्—

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च यद्भूयुस्सत्येमव तत् ॥ इति । यथा भुङ्क्ष्व जीव जयेत्यादिशुभवाक्ये श्रुते शुभं, पत पातय नश्य अपजयेत्यादाशुभे अशुभम् । उक्तं च—

> यदच्छया क्रियाकाले जनैर्वाक्यमुदीयेते । याद्यां सर्वेकार्थेषु ताद्यां फलमादिशेत् ॥

इति । विष्णुर्विप्राणां वेदवेदाङ्गविदुषां देवज्ञानां वाक्यं प्रधानः गुणमाह । यतस्तद्वाक्यं सत्यं भवति । उक्तं च—

> अदेवं देवतं कुर्युः कुर्युर्देवमदैवतम् । यद्वाह्मणसमं देवं न भूतो न भविष्यति ॥

इति । सर्वगुणेम्योऽयमेव श्रेयानिति विष्णुमतमाश्रित्य तत्रापि दैवज्ञवचनं प्रधानमित्याह—

देवार्चनाभिनिरतो जपसिद्धमन्त्रः सप्ताङ्गयुक्तगुणदोषवळावळज्ञः ॥ मौहुर्तिको वदति यनु फळं मुहूर्ते सत्यं तदुक्तमृषिभाषितवन्न मिथ्या ॥

देवाः—शिवाविष्णुसूर्यादेयः तेषामचैना पूजा। सा द्विविधा—बाह्या आम्यन्तरा च। तत्राम्यन्तरा तावदात्मयागः। स च कतस्त्रानात्म-मन्त्रशुद्धिमिर्नृभिविधयः। बाह्या तु सिहासनस्थपूजा। सा च कत-स्नानात्ममन्त्रद्रव्यिलङ्गशुद्धिभिः कार्यो इति। तत्र अभितो दिवा रात्रो च नितरां रतः त्रिसन्ध्यं देवाचनानिष्ठ इत्यर्थः। जपेन तत्तत्कल्पोक्तानियमवता अक्षरलक्षादिसङ्ख्यजपतर्पणाहुतिपूर्वकेण सि. द्धः अभिमुखीभूतो मन्त्रो यस्यति, स्वकल्पोक्तनियमजपतपणाहु-तिभिः सिद्धमन्त्र इति यावत्। तादशस्यव विविधन्नयोगास्मिष्यन्ति। सप्ताङ्गस्य नक्षत्रादेः तत्सम्भूतगुणदोषाणां च बलाबल्जः, तादशो देवज्ञो मुहूर्ते यत्कलं वद्ति शुभमशुमं वा तेनोक्तं तत् सत्यं भवति यथा महर्षिभाषितं तद्भत्, इतीदं देवज्ञलक्षणम्। तथा च गुरुः—

गुणानां दोषाणां प्रवलिविवल्यादिविदुषा बलानां वा तेषां समबलवतामेकसमये । परिच्छेता कालो लघुतरिदेनैदोषहरेणैः सुयोगैरादेश्यो गणकिवदुषा कर्मणि शुभः ॥

इति । यस्मादेव देवज्ञवाक्यमेव महान् गुणः तस्मात् तत्सत्कारा-सत्काराम्यां मुहूर्तसाद्गुण्यवेगुण्ये स्त इत्याह—

उपास्य राजानिमवाधिकारो भक्तचा प्रसाद्यव गुरुं सुमन्त्रः । अभ्यर्च्य दैवज्ञमतो ह्युपात्तः शुभो मुहूर्तो न शुभोऽन्यथा स्यात् ॥

राजानं स्वामिनं उपास्य तस्मादुपातः अधिकारः कर्मणि विनियोगो यथा शुभः महदैश्वर्य विधत्ते, अन्यथा स्वामिन-मनुपास्य लब्धोऽपि न शुभः महद्वचसनं करे।ति, यथा गुरुं भक्तचा प्रसाद्य तस्माङ्घव्घो गाणपत्यादिः सुमन्त्रः स्वनामानुगुणो मन्त्रः शुभा भवति । गुरुष्रसादाद्यते लब्धः स्वनुष्ठितोऽपि न शुभकृत् । उक्तं च भद्रनागः—

गुर्वनुप्रहस्ते महीतले मन्त्र एष न हि सिद्धिदायकः ॥
इति । तथा च दैवज्ञाभिगमनसत्कारसम्प्रश्नपूर्वकं यथामित कनक
फलकुसुमादिभिरम्यच्ये तस्मादुपात्तो मुहूर्तः शुभः तत्कमीम्युद्यकृत् स्यात् । अन्यथा दैवज्ञसत्कारमन्तरेण घटीयन्त्रादिभिः सम्यक्
कालं प्रसाध्य गृहीतोऽपि न शुभः स्यात् । तथा च गुरुः—

धनान्यायुः श्रियं पृथ्वीमिच्छता ब्राह्मणः स्वयम् । दैवज्ञो देववत् पूज्यः सर्वकार्येषु वृत्रहन्! ॥ बलवद्गुणसम्पन्नः निर्दोषोऽप्यशुभावहः । दैवज्ञपूज्या हीनः कालोऽयं दोषसत्तमः ॥ अखिलवलकुलाकुलैस्समस्तैः । अपि सहितः समयो गुणैः प्रवृद्धैः ॥ अविरहितगुणेतरोऽतिदेशि । विबुधमुहूर्तसुपूज्या वियुक्तः ॥ इति ॥ इह दैवज्ञमभ्यर्च्य मुहूर्तो प्राह्म इति वदता मुहूर्तसंप्रश्नादि-प्रदानान्तो विधिः सूचितः । स चान्यत्र विहितः । यथा वराहामि-हिरः—

> तस्मान्नृपः कुमुमरत्नफलाश्रहस्तः प्रातः प्रणम्य रवये हरिदिङ्मुखस्थः । होराङ्गतन्त्रकुशलान् हितकारिणश्र संपूज्य दैवगणकान् सक्देव एच्छेत् ।

भरद्वान:--

दैवज्ञं सम्यगभ्यच्ये पृच्छेत्कनकभूषणैः । वस्त्रभूगोयुतैर्भृत्येर्यथाशक्ति न वश्चयेत् ॥ एकान्ते पूर्णहस्तस्तु सुमुहूर्ते शुभे दिने । स्वस्थं सुखासनासीनं एच्छेद्दैवविदं नृषः ॥

ब्रह्मयामले—

पूर्वीहे प्राङ्गमुखी राजा शुचिः संयतमानसः। कृतदेवनमस्कारो हिरण्यफलसंयुतः दत्त्वा दैविवेदे किञ्चित् ततः प्रश्नं विचारयेत्॥

- इति । अपराह्वे रात्रों च न प्रच्छेत्, यस्मात् पराश्चरः— वेलास्तर्वाः त्रशस्यन्ते पूर्वोह्वे परिप्रच्छताम् । सन्ध्ययोरपराह्वे च क्षपायां च विगर्हितम् ॥
- इति । दैवज्ञानिभयोगे दोषमाह भरद्वानः—
 कुलनं बुद्धिसम्पन्नं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ।
 द्याचि दैवपरं एच्छेत् लोमद्वेषाविवानितम् ॥
 तथाविधं बुधश्रेष्टं एच्छेत् संपूज्य शाकितः ।
 दैवज्ञाश्च यथा ब्रूयुस्तथा कुर्वन्न दोषभाक्॥

इति । यस्मादिह सम्पूज्य शक्तितः प्रच्छेदित्युक्तं तस्मात् सित विभवे श्रेयसीं सपर्यां कुर्यात् । अन्यथा मध्यमां, यथा दैव-वित्तुष्यित तां वा, अदस्वा अवज्ञाय वा न प्रच्छेत् । यथोक्तम्—

सत्कारं तु निमित्तज्ञे जवन्यं नैव योजयत् ।
उत्तमं मध्यमं वाऽपि योजयेत् तत्फलं भवेत् ॥
रमणीयमथ द्रव्यं दात्तव्यं येन तुष्यति ।
केवलं न भवेत् प्रष्टा यथा पृच्छेत्तथा फलम् ॥
पिरमूय तु यः प्रच्छेदैवज्ञमवमत्य वा ।
न सिध्यतीति वक्तव्यं दुःखं वाऽथ पराभवम् ॥
केवलं पृच्छमानस्य न वदेदैवचिन्तकः ।
उभयोरपि दोषरस्यात् ज्ञानिनः पृच्छकस्य च ॥

इति । किंच — अन्यायात् पृच्छतो यस्य भवेद्विद्या पराङ्मुखी । पृच्छचमानं कृतं नश्येत् निमित्तस्य च गौरवात् ॥

सहदेवोऽपि— मायाकुटिलमावेन हास्यपाषण्डितस्करे । अभक्ते रिक्तपाणौ च न ज्ञानं सत्यतां बजेत् ॥

इति । गुरुश्र—
यो दैवज्ञमवज्ञाय कम कुर्यात् स नश्यति ।
तस्मात् संपूज्य देवज्ञं शृणुयाच्च क्रियाश्चरेत् ॥
इति । एवं स्वर्णफलादि प्रदाय एच्छके स्थिते सति दैवज्ञः
तत्प्रश्नवज्ञाच्छुभाशुमं वदेत् । तथाच ब्रह्मयामले—
देवज्ञाप्रे स्थितः प्रष्टा तत्परो विनयान्वितः ।
देवज्ञस्तन्मुखात् प्रश्नं सङ्गृह्य सुविचारितम् ॥

ततः स्फुटान् राशिगतान् तत्कालबलसंयुतान् । प्रहान् दृष्टिबलं चैषां ज्ञात्वा प्रश्नं विचारयेत् ॥ वराहमिहिरः—

सुमधुरफलपुष्पक्षीरवृक्षान्वितायां
चरणगतिमुखायां गोशक्रत्फेनवत्याम् ॥
साछिलकुसुमवत्यां एच्छतो भद्रमुन्यां
प्रहमगणगतिज्ञस्त्वादिशेत् एच्छकस्य ॥
स्तनचरणतलोष्ठाङ्गुष्ठहस्तोत्तमाङ्गश्रवणवद्ननासागुह्यरन्ध्राणि भूपः ।
स्पृशति यदि कराग्रैः गण्डकटचंसकान् वा
श्रुतिसुखशुभश्रब्दः श्रूयते भद्रमाहुः ॥

भट्टपादः-

टङ्गनसोः प्रीतिकरं प्रश्ने हृद्दर्शनं यदा श्रवणम् । मङ्गल्यद्रव्याणां भवति शुभं निर्दिशक्तत्र ॥

कृष्ण:--

उदयनिमितेविणैः प्रश्नोद्भूतैविहास्स्थितैः शकुनैः। वक्तव्यं शुभमशुभं प्रश्ने तत्कालनं तद्यत् ॥

मरद्वाज:--

यो वा प्रच्छिति यत्कर्म विवाहगमनादिकम् । तत्तस्य प्रश्नकालेन वक्तव्यं हि शुभाशुभम् ॥ प्रश्नकालेन विज्ञेयः सर्वस्तस्य फलोदयः । ज्ञात्वा कर्मवशात् प्राप्तियोज्या कर्ममु तादशी ॥ यहृष्टं यच्छूतं वृत्तं तत्सर्वं तस्य विद्यते । शुभाशुभनिमित्तज्ञा यथावृत्तं तथा विदुः ॥ इति । प्रक्षफलं पुरस्ताद्भिधास्यते । तथा विचारिते प्रक्षे शुभे लग्ने परीक्षणं कुर्यात् । भरद्वाजः—–

परीक्ष्य नक्षत्रगुणाधिकत्वं निमित्तमाछोक्य तदा प्रवृत्तम् । तत्त्रश्नकालस्य फलं विदित्वा नियोजयेत्कर्मसु कौशलं तत् ॥ तत्रापि—

> अज्ञानादथवा द्वेषात् लोभाद्रा न वदेद्भुघः । अत्वरस्संपरीक्षेत यशोधर्मार्थभाग्भवेत् ॥ इष्टतुष्टमना भूत्वा दैवज्ञगणसन्निधौ । नक्षत्रं संपर्क्षित दैवज्ञः प्रयतः शुचिः ॥

इति । कालिनरूपणिविधिर्गुरुणोक्तः—
अर्थप्रकरणाल्यादिलिङ्गोचित्यादिभिः सदा ।
देशकालादिभिश्चैव वाक्यान्तरिवरोधतः ॥
अपवादादिभिर्वाक्यैः सामान्येन विशेषतः ।
सर्वत्र सर्वानालोच्य ज्ञानी कालं समादिशेत् ॥
एवं चेन्नैव बाल्यं स्थात् शास्त्रार्थत्रयमञ्जसा ।
कियामुहूर्तदोषाणां विधिवद्रह्मणोदितम् ॥
कालेत्रेराशिकनैव ज्ञात्वा सम्यक् ग्रहांस्तथा ।
लग्नं छायाम्बुयन्त्रैश्च परिज्ञाय समादिशेत् ॥

इति । त्रैराशिकेन कालमानीय गुणदोषतदपवादान् तेषु प्रावल्यदौ-र्वल्ये च विचार्य अस्मिन् वर्षे अस्मिन् मासे लग्नामेदं श्रेष्ठमिति। तथा च भरद्वाजः—

> वर्षं मासं दिनं वाऽपि प्रच्छमानस्य तिकतम् । कालं कृत्वा परीक्षेत सम्यक् सवीनशेषतः ॥

गुणान् दोषांश्च सिञ्चन्त्य मत्वा तेषां बलाबलम् । योजयेच यथाकालं ज्ञात्वा तत्कर्मगौरवम् ॥ कालमुद्दिश्य वक्तव्यमेषु श्रेष्ठमिदं त्विति । अन्यथा तु न शक्यं हि निर्दोषं बहुवत्सरैः ॥

गुरु:-

दोषे च बलहीने च योगे दोषहरेऽथवा । दृष्टे दोषापवादे च गुणे बलसमन्विते ।। निर्देश्यः शुभकार्येषु कालश्शुभाविवृद्धये । एवं विधाने शास्त्रार्थत्रयं नैव हि बाध्यते ॥

इति । लग्ने विचारितेऽस्य राज्ञेरेतदंशकोदये दिवारात्रिगता नाड्य-इयत्य इति गणितेन ता आन्येत् । यथोक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते—

> रिवराश्यभुक्तिलिप्तास्तदुद्यगुणिता हृता ग्रह्कलाभिः । लब्बं प्राणाः स्थाप्याः प्रक्षिप्यार्के ग्रहामुक्तम् ॥ तावत् सूर्ये राशीन् क्षिपत्समी लग्नराशिभियावत् । क्षिप्तगृहाणां प्राणान् प्रक्षिप्य स्थापितेष्वसुषु ॥ तद्धिककलोद्यवेषं राशिकलाभिः भजेत् फलं प्राणाः । प्रक्षिप्य प्राणेषु भवन्ति सूर्योदयाद्मवः ॥

इति । आनीतं लप्नकालं शङ्कुच्छायादिना साधयेत्। अत्र श्रीपतिः—

गोछाचकं कार्मुकं कर्तरी च कालज्ञाने यन्त्रमिन्दुं कपालम् । पीठं राङ्कस्स्यात् घटीयष्टिसंज्ञं गन्त्री यन्त्राण्यत्र दिक्सन्मितानि ॥ इति । तेषु चक्रचापादीनि पश्चषाणि प्राप्तिद्धानि । तछ्रसणान्यु-च्यन्ते । यथा—

> कला सुवृत्तं फलकं हि यष्ट्या चक्राङ्कितैश्राङ्कितमत्र मध्ये । लम्बस्तद्रशात्सुषिरेण यद्वत् केन्द्रेऽकरिंशः पततीव बुद्धचा ॥ लम्बेन मुक्ता रविभागतों इशाः तत्रोदितास्ते घटिकास्तु याताः । चकाल्यमेतद्दलमस्य चापं ज्यामध्यरन्घ्रस्थितलम्बमेतत् ॥ ज्यामध्यतिर्घाविस्थतकी छमेतत् पूर्वीपरात्रास्थितकर्णरन्धात् । ¹ प्रयग्दलः कोटिमुखाश्च नाड्यः समुज्झिताः कीलमुखाद्भवन्ति ॥ इदं भवेदूर्ध्वशलाकमुठ्याँ स्थितं कपालद्यतिकूलचापम् । संसाधितांशं खलु चन्द्रयन्त्रं पीठं भवत्यूर्ध्वशलाकमेव ॥ मध्यस्थकीलप्रभयाऽविमुक्ता पीठे तु सूर्योदयिवम्बवेधात्। भुक्तांशजीवस्फुटमत्र कुर्यात् तद्यन्त्रासिद्धानुगतास्तु नाड्यः ॥

¹ प्रसम्धनुः कोटि.

ताः स्वद्यमानाभिहता विभक्ताः नभोगुणैः स्पष्टतमा भवन्ति । नाड्योऽन्यथा स्थूछतरा निरुक्ताः,

इति । एतद्यन्त्रसिद्धा नाड्यः स्थूलाः। अतः शङ्कुना घटीपात्रेण वा कालं मानयेत् । तदुक्तं सूर्यसिद्धान्ते—

> शिलातलेऽम्बुसंसिद्धे वज्नलेपेऽपि वा समे । तत्र शङ्कुङ्गुलेरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ॥ तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कं कल्पनाद्वादशाङ्गलम् ॥

इति । राङ्क्ष्यणमुक्तं श्रीपतिना—

भ्रमिवरचितवृत्तः तुरुयमूलाग्रमागः द्विरदरदनजन्मा सारदारुद्धवो वा । अयसजुरवलम्बादव्रणष्षट्कवृत्तः समतल इह शस्तः शङ्कुरकाङ्गुलः स्यात् ॥

नारदः--

न्यत्रोधखदिराश्वत्थरक्तचन्दनवृक्षनम् । श्रीखण्डागरुदन्तोत्थमृनुं शङ्कुमकलम्बम् ॥ द्वादशाङ्गुलमुत्सेषं परिणाहं षडङ्गुलम् । एवं लक्षणसंयुक्तं कारयेत् कालसाधने ॥

इति । अनेनापि व्यङ्गुलच्छाया दुर्झहेति केचित् घटीपात्रमे**व** साध-नमाहुः । तथाच नारदः—

एवं संचिन्त्य गणितशास्त्रोक्तं लग्नमानयेत्। Vidyamadayiam तळ्यं जलयन्त्रेण दद्याङ्ग्यौतिषिकोत्तमः॥ इति । तळक्षणं चोक्तं —

> षडक्कुलिमितोत्सेघं द्वादशाङ्गुलमायतम् । कुर्योत्कपालवत्ताम्रपात्रं तद्दशिमः पर्लैः ॥ पूर्वं षष्टचा जलप्लैः पष्टिं मज्जति वासरे । माषत्रयञ्यंशयुतं स्वर्णवृत्तशलक्या ॥ चतुर्भिरक्कलेरायामया विद्धमिति स्फुटम् ॥

इति । अन्ये त्वाहुः— शुल्वपलैद्वीदशभिः कुर्यादष्टाङ्गुलोच्लूयं पात्रम् । विस्तारं द्वादशभिः कराङ्गुलैस्तत्प्रमाणं स्यात् ॥ यन्त्राकृष्टशलाका हेमोद्भूता षडङ्गुलोपेता । सद्वित्रिमाषतुलया शलाकया वेथयेत् पात्रम् ॥

इति । तिहिषिश्च नारदेनोक्तः—

ताम्रपात्रे जलैः पूर्णे गन्धपुष्पैरलङ्कते ।

तण्डुलस्थे स्वर्णयुते वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते ॥

मण्डलाधींद्यं विक्ष्य रवस्तत्र विनिक्षिपेत् ।

मन्त्रेणानन पूर्वोक्तलक्षणं यन्त्रमुक्तमम् ॥

मुख्यं त्वमिस यन्त्राणां ब्रह्मणा रचितं पुरा ।

मावामावाय दम्पत्थोः कारयेस्सम्यगीक्षणम् ॥

एतदुक्तं भवति—जलसंसिद्धे समे भूतले स्वस्तिकमष्टदलं वा मण्ड-लमालिख्य तत्र शुभानि तण्डुलादीनि न्यस्य तदुपरि ताम्रक- टाहं निधाय तिस्मन् वस्त्रशुद्धमम्भ आनीय गन्धादिभिरलङ्क्त्य बासोम्यामावेष्टच तदन्तः स्वर्णे निक्षिप्य गम्बताम्बूलादिभिरिष्टः देवता ग्रहान् दिगीशांश्च समम्यर्च्ये प्रभाताद्भवेरधेबिम्बोदेय सायमधेबिम्बास्तमये तत्र बटीपात्रं क्षिपेत् । तिस्मन् जलमन्ने घटिकैका स्यात् । एवं लग्नकालं साधयेत् ।

यहा—- राङ्कुच्छायया यथातोयसंसिद्धे समे मूतले प्राग्वत् साधितांशमण्डलमालिल्य तदन्तिरिष्टच्छायाङ्गुलेर्वृत्तं कृत्वा तन्मध्ये शङ्कुं प्रतिष्ठाप्य, यहा तन्मण्डलन्यस्ततण्डुलेषिर निहितं पूर्णकु-म्मं सस्वर्णं वासोम्यामावेष्टच तदुपिर संसाधितांश्वफलकं निधाय तत्र शङ्किष्टच्छायाङ्गुलेर्वृतं कृत्वा तन्मध्यनिहितशङ्कुच्छायया साधिते तत्काले प्राप्ते प्रहेदेवज्ञाद्वेजान् अम्यच्ये स्वेष्टदेवतां स्तुतिपूर्वकं देवज्ञाद्विजमुखोदिताःशीर्वचनैः सह यथाप्रधानं शुभिक्तियां कृ्यात् ॥

अत्र भरद्वाजः--

न भवोत्तिथिनक्षत्रं फछहेतुः स्वयं सदा । ग्रेहेस्सदेवैर्विज्ञेयं तस्मातान् पूर्वभर्चयेत् ॥ ग्रहान् सर्वान् समभ्यच्यं नक्षत्राणां च देवताः । देवज्ञेराशिषं कृत्वा ततः कर्म समारभेत् ॥

तत्काले अभिधेया आशीर्वादा यथा-

अर्थाङ्गे गिरिसम्भवा प्रियतमा श्यामाऽपराङ्गेऽपरा मौलौ चन्द्रकला गले च गरलं फाले त्रयं तेजसाम् । यस्यानन्यसमत्रभाविषशुना चेष्टेटशीति प्रमुः शम्मुस्सोऽम्बिकया सहात्र वरदे मूयाच्छिवो वस्सदा ॥ दुर्गा दुर्गतिहारिणी त्रिनयना दूर्वादलस्यामला गीर्वाणारिविदारिणी मृगपतिस्कन्धाधिरूढा शिवा । चश्चचक्रवरासिखेटकधनुर्बाणत्रिशूलं भुनैः विभ्राणा धृततर्जिनी मगवती सौभाग्यदा साऽस्तु वः ॥

शोणः शोणितगन्धवन्युरतनुः वन्धूकवन्धुस्स्फुर-द्वासोलङ्करणः कराश्रविलसस्पाशाङ्कशेष्टद्विनः । द्वचम्बस्त्रचम्बकनन्दनः त्रिनयनस्स्तम्बेरमास्याम्बुनः तुन्दी चन्द्रधरः स वो मवतु निर्विद्याय विद्याधिपः ॥

साम्भोनिह्मुनोऽम्बुनोद्ररुचः पद्मासनः पद्मिनी-कान्तः कान्ततनुः त्रिमूर्तिररुणस्त्रग्वस्त्रगन्घोज्ज्वस्रः । सप्ताश्वोऽरुणसारिधः दिनमणिमाणिक्यमूषस्स वो देवः काश्यपनन्दनः प्रदिशतु श्रेयश्चिरं मास्करः ॥

श्वेतः श्वेतसुगन्धमारुयवसनः छत्रध्वजाद्युज्जुले दोभ्योमात्तगदाभयोऽमृतमयस्ताराधिपोऽव्धिपियः । अत्रेनेत्रभवो दशाश्वविलसत्पत्राधिस्द्रदस्स वः श्रीमान् मौक्तिकभूषणो वितनुतामानन्दमिन्दुस्सदा ॥

रक्तो रक्तविलेपवस्त्रसुमनोदामातपत्रो द्धत् दोर्भिश्शक्तिगदादि जूलकरवान् विश्वम्भरायाः सुतः । हृद्यो विद्रुमभूषितस्ससुषमो मेषाधिरुद्धिरं भारद्वाजवरः करोतु भवतां सन्मङ्गलं मङ्गलः ॥

सौन्यः सौन्यतनुर्मृगेन्द्रमहितस्कन्धाधिरूढो बुधः पीतस्फीतसुगन्धनस्त्रकुसुमस्सीवर्णवर्णोज्ज्वलः। आत्रेयश्शाशिनन्दनो वरगदाचर्मासिभास्वद्भुजो भूत्ये वो भवतु स्फुरन्मरकतच्छायस्त्विलावङ्कभः ॥

साक्षस्त्रग्वरदण्डमण्डितकरः पीताम्बरालेपनः स्नग्धारी धृतपुष्यरागविलसद्भूषो हरिद्राङ्गरुक् । वागीशोऽङ्गिरसस्मुतो दिविषदामश्वाधिरूढो गुरुः ताराजानिरनारतं स भवताद्वरश्रेयसे भूयसे ॥

शुक्रः शुक्कतनुरसुशुक्कसुमनश्छत्रानुलेपाम्बरो भारवद्वज्वविभूषणिरसतहयाद्धदोऽसुराभ्यार्चतः । आवासो निगमस्य नीतिनिपुणो दण्डी लसत्कुण्डिकः स्साक्षस्रयदः कविभूगुसुतस्सोभाग्यदस्सोऽरतु वः ॥

कृष्णः कृष्णिविलेपनाम्बरसितछत्रोज्ज्वलो मित्रजः प्राग्वकीलविभूषणश्चारधनुश्चूलानि बिभ्रद्भुनैः । भक्तेभ्यो वरदश्च काश्यपवरो गृष्ठाधिस्टढरसुतः छायायाः स दानैश्चरश्चिरतरं नीरोगतां वः क्रियात् ॥

स्वर्मानुमेलिनस्तमोमयतनुस्सिंहास्थितस्सिहिका-सूनुर्भीममुखः पलाशनपरश्रमीसिमास्बद्भुजः । नीलस्त्रग्वसनानुलेपसुर्भिर्गीमेदभूषोज्ज्वलः कौण्डिन्यप्रमवस्तनोतु भवतां भोगी सुभोगोदयम् ॥

धूम्रा धूसरगन्धदामवसनच्छत्रा विचित्राश्चनाः वैडूर्याभरणा विकारिवदना ब्रह्मात्मना निह्मगाः । नैमिन्यार्षभुवश्शतैकतनवे गृष्ठासनाध्यासिनः ते कुर्वन्तु सदा गदावरकराः श्रेयांसि वः केतवः ॥ बेटप्रत्यधिदेवताः शिवशिवाषाण्मातुराधोक्षज-ब्रह्माखण्डलदाण्डकालद्हनास्तेषामधीशाः पुनः । कृष्णाध्वांबुघराम्बुजाक्षमववच्छऋत्रियापद्मम्-सर्पानमोजमुवी भवन्तु भवतामिष्टार्थिसिद्धचै सुराः ॥ ध्यानस्तोत्रजपार्चनप्रणतिभिर्ये संश्रयन्ते ग्रहान् अश्रान्तं प्रदिशन्ति शर्म निरतं तेम्यो नमश्रारिणः । आयुष्यं धनमक्षयं सुमगतामारोग्यमग्रचं यशः सामय्रचं गुणसंपदां रिपुजयं श्रेयो महामङ्गलम् ॥ श्रीमद्भव्यवसिष्ठकाश्यपभरद्वाजात्रिदेवर्षयो गार्थेव्यासबृहस्पतित्रभृतयो येऽन्ये च होराकृतः। सर्वे ते सुमुहूर्तमुत्तमगुणं शंसन्तु सन्तोषिताः सर्वे सन्तु शुभन्रदा दिविचरा ज्यातिर्गणास्तत्रहाः ॥ ईशानद्रुहिणाच्युतप्रभृतयो देवास्सलोकेश्वराः योगीशास्समहर्षया गिरिसुतावागिन्दिराशक्तयः। गङ्गाद्यास्तारितो नगास्तुरभयो विघा त्रहास्तारकाः सर्वे ते वरदा भवन्तु भवतां प्रीताः सुखस्वास्तदाः ॥

इति। अथ दैवज्ञेन त्रिरुचैरुक्तराब्दः सुमुहूर्तमस्विति तेनानुज्ञातः क्रियां कुर्यात् । तत्काललोकप्रीतिजननार्थं दैवज्ञेन चिह्नानि वाच्यानीत्याह—

द्रेक्काणशीतगुनवांशककालहोरा -लग्नग्रहाभ्युदयदृष्टिषु यस्य वीर्यम् । तत्तुल्यवस्तुकथनागमनेक्षणाद्यं तत्काललक्षणमसौ कथयेन्मुहूर्ते ॥ लगाराद्रेकाणे तत्कालचन्द्राक्तान्तनवांशे तत्कालहोरायां तत्काललमे प्रहोदये तहृष्ट्यां च यस्य द्रेकाणाधिपादेरधिकं वीर्यमस्ति तस्य बलवद्रेकाणादेससद्यानि धातुमूलजीवाल्यानि बस्तूनि तेषां वार्तागमनदर्शनानि आद्यशब्देन तत्प्रतिस्तपकतदनुकर-णादिकं गृह्येत, एतानि तत्कालचिद्वानि वदेत्। उक्तं च—

लक्षणानामनन्तत्वात् देशेदेशे विशेषतः । न शक्यमञ्जसा वक्तुं तेन सामान्यमुच्यते ॥ यस्य ब्रह्स्य शीतांशुरंशके व्यवतिष्ठते । यस्य राशिरुपात्तस्स्यादुमयं तस्य लक्षणम् ॥

अन्ये-

अर्कादिकानामुदये नो चेत्तेषां नवांशके । द्रेकाणे द्वादशे त्रिंशत्सप्तांशैर्वा बलान्वितैः । दिग्वर्णजातिदेशादिग्रहराशिबलाबलम् । अवेक्ष्य लक्षणं ब्रूयात् सर्वेषामेव सर्वेदा ॥

अन्ये लक्षणादिशमन्ययाऽऽहुः—

आंशकाधिपतिर्थिस्मिन् राशौ सिल्लिहितस्तदा ।
तस्य राशेदिशि भवेछक्षणं दैवदर्शिनः ॥
राशिर्प्रहोपयुक्तश्चेत्तहुणं न विलक्षयेत् ।
अनेकसम्भवे चापि लक्षणं स्याद्विशेषतः ॥
उच्चांशकगते राशावुत्कर्षमवधारयेत् ।
नीचे नीचबलेनेषां क्षेत्रे तद्देशवासिनः ॥
मैत्रे परिचिता ज्ञेयाः शात्रवे तु विरोधिनः ।
अन्यांशकेष्वनम्यस्ता ज्ञेया लक्षणजन्तवः ॥

भास्करस्यांशके मेषे राजवातीपरः पुमान् । शशिनस्तु द्विजो दुष्टः पशुवातीपरायणः ॥ भौमस्यानुचरो राज्ञो विष्ठो वा व्यसनाकुछः । चान्द्रेः पापचितो मर्त्यः सुस्त्री वा शोककर्शिता ॥ जीवस्य धार्मिको विष्ठो भिक्षार्थी वा गुणान्वितः । शुक्रस्योपचितश्राद्वो विणग्वा रससम्मृतः । मन्दस्य विहगः कृष्णः स्नेहपात्रकरे। द्विजः ॥

इत्यादीनि राश्यंशावशाङ्कक्षणादीनि स्वगुरूक्तानि वाच्यानि । केचि-चन्द्राक्रान्तांशकवशादाहुः । तथाच गार्ग्यः—

अंशकदिगुणं तेषां लोकसंज्ञाप्तदर्शनम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन यथाशास्त्रोदितं पुरा ॥
प्रथमांशेऽश्विनक्षत्रे पूर्वस्यां दिशि दर्शनम् ।
क्षेत्रसाधकयोगं च कर्षणं चापि कारयेत् ॥
द्वितीयांशेऽपि चाश्विन्यां याम्यायां वृषमध्विनः ।
क्रयविक्रययोगं च वाणिज्यं चापि कारयेत् ॥
तृतीयांशेऽश्विनक्षत्रे सोमदिग्मेरिशब्दकम् ।
अथवा विप्रहं चापि पूर्वदिक्च निरुच्यते ॥
सर्वसिद्धिकरी कार्यं वाहनारोहमेव च ।
चतुर्थाशेऽश्विनक्षत्रे नैर्ऋत्यां श्वानशब्दनम् ।
प्रेष्यकारिक्रयां चैव विद्वेषं च यथाविधि ॥

इत्यादि । केचित् कालावयवभूतघटीवरादिक्षः । तथाच गुरुः — सर्वेष्वेव मुहूर्तेषु लक्षणान्यत्र मे शृणु । मुहूर्ते नित्ययोगस्य सङ्कचां कृत्वा चतुर्विधाम्॥

संयोज्याघोर्ध्वतत्स्थानचतुर्थेषु क्रमादिमान् । अर्कातिशकरीपङ्किनवकानि पृथक् पृथक् ॥ सप्तभक्तक्रमात्सर्वेऽघोर्ध्वं निरवशेषिते । मुष्टियुदं रुनं चैव दहनाहिनृपाद्मयम् ॥ सावशेषेण चैतानि यत्रैवं तत्रजं भवेत । उद्यप्रथमा नाडी मृष्टिनीम्ना तु संज्ञिता॥ तस्यां तु सृष्टिकर्मे स्यात् प्राच्यां कर्षणदर्शनम् । अशुमांशे तु कलहश्रोरैवी धनहारणम् ॥ द्वितीया सिद्धिनाम्रचस्यां क्षिप्रकार्याणि कारयेत् । दक्षिणां दिशमाश्रित्य शूद्रस्त्रीपुरुषं तथा ॥ लमुद्रेकाणरूपं वा विग्रहो वाडमिदरीनम्। कलहं दीपवातो वा पापप्रहिनरीक्षणे ॥ तृतीया नाशना नाम नाशकर्माणि कारयेत । महिषी टश्येत कोशकारकः काममेव च ॥ वछमैर्वा तदा पीडा वित्ततापा अथवा भवेत्। पापग्रहदशा युक्ते शुभदृष्टे च शोभनम् ॥

इत्यादि मन्थबाहुल्यभयाम् लिख्यते । तच स्वगुरुतोऽवगन्तव्यमिति । गुणाध्यायमुपसंहरति —

श्लोकैरेभिस्त्रिंशता च त्रिभिश्व प्रोक्तो विद्यामाधवीयाभिधाने ।

¹ इत ऊर्ध्व मातृकाकोशे 'अत्र कानिचिद्वाक्यानि पतितान्यन्तपङ्क्री इष्टब्यानि' इति लिखितमुन्लभ्यते । अन्तपङ्क्री च पतितमन्थमागी नीपलभ्यते । कोशोन्तरेऽपि न दृश्यते ॥

ज्योतिदशास्त्रे सहुणाह्यश्चतुर्थः सम्पूर्णोऽभूत्सहुणाध्याय एषः ॥

इति विद्यामाधवीये गुणाध्यायस्तुरीयः

त्रयस्त्रिशता पद्येरभिहितः गुणैः त्रसादमाधुर्यसौकुमार्यादिभिः आद्यः गुणाध्यायः चतुर्थः सम्पूर्णोऽभूत् ॥

> इत्थं सद्गुणशालिभिर्विराचितैः पद्यैस्त्रयास्त्रिशता विद्यामाधवमूरिणा समुदिते हद्ये मुहूर्तागमे । अध्यायो गुणसांज्ञितः प्रकथितस्वार्थश्चतुर्थो ह्ययं व्याख्यातस्तनयेन तस्य विदुषा विद्वज्जनप्रीतये ॥

इति मुहूर्तदीपिकायां विद्यामाधवीयव्याख्यायां गुणाध्यायस्तुरीयः

अथ बलाबलाध्यायः पश्रमः.

अथ सप्ताङ्गवलावलाध्यायो व्याख्यायते। तत्र तावद्वलज्ञानप्र-योजनपूर्वकं तद्भिधानं प्रतिजानीते—

बलावबोधन विना न कश्चित् विपश्चिदादेष्टुमलं मुहूर्तम् । निसर्गजादीनि ततोऽभिधास्ये क्रमेण सप्ताङ्गबलाबलानि ॥ १ ॥

सर्वेऽपि काला गुणदोषैः संमुष्टाः, तेषां बलिभिर्दुर्बेलानां भङ्गः दर्शनात् तद्वलज्ञानेन विना विद्वानिप मुहूर्तमादेष्टुं नेष्टे यतः, तः स्मान्नसर्गिकादीनि सप्ताङ्गस्य बलाबलानि क्रमेणाहिमिहाध्याये वक्ष्या-मीति । तिथिबलं सोपपात्तिकमाह —-

बलं शशाङ्कस्य हि तिथ्यघीनं
प्रहाश्च सर्वे शशिवीर्यनिष्नाः ।
अतदशुभे कर्मणि तारकादेः
तिथिं बलिष्ठां निजगाद गार्ग्यः ॥ २ ॥

चन्द्रबलं तिथ्यधीनं हि यस्मात्, किंच सर्वे ग्रहाः शिरा-बलाधीनाः तत्त्राबल्यात् बलिनः तहौर्बल्याह्र्बेला इति, अतो हेतो- नेक्षत्रादिभ्यः तिथि बिलिष्ठामाह गार्ग्यः, यतस्तिथिप्रावल्याचन्द्र-प्रावल्यं तत्प्रावल्यादन्यग्रहप्रावल्यम्, तस्मात्तारादितः प्राधान्येन तिथिबल्रमेव ग्राह्ममिति गार्ग्यमतमित्यर्थः । तथाचोक्तः—

> तिथिश्शरीरं तिथिरेव कारणं तिथिः प्रमाणं तिथिरेव साधकम् । तिथिं विना चापि न दृश्यते शशी विनेन्दुना वाऽपि न कर्म सिध्यति ॥

अत्र मतान्तरमाह-

सम्पूर्णा तिथिभेदने यदि भवेतारा बलाह्या तदा भेदे सत्युडुनस्तथैव तिथिरित्येके मुनीन्द्रा जगुः। तिथ्यर्धे तु गते सवीर्यमुदितं नक्षत्रमर्धे तथा नक्षत्रस्य तिथिः समे सति तयोः सैवेति चान्ये जगुः॥३॥

भेदनं खण्डः, मध्येदिनं तिथिखण्डे सित तदा काले तारा यद्यखण्डा स्यात् तिर्हे तारैव बलाव्या स्यात् । तथा ताराखण्डे सिति तिथिरखण्डा स्याचेत्ति।थेरेव बलवतीति केचिन्मुनय आहुः। अत्र अहोरात्रव्यापिनी अखण्डेत्युच्येते। अत उक्तं—

समस्तास्तिथयः त्रोका उदयादोदयाद्रवेः ।

इति । अन्ये त्वाहुः—एवं चेत्र्रतिमासमखण्डास्तिथयस्तारा वा द्वित्रा एव सम्भवेयुरिति तिथिताराणां वारादिम्यो दौर्वल्यमेव प्रायेण सर्वदा स्यात् । अतो नैतत्सारम् । या पुनरकोस्तमयव्यापिनी तदुदयस्पर्शिनी सा अखण्डेत्यत्राहुः—

> यां तिथि समनुत्राप्य अस्तं याति दिवाकरः। सा तिथिस्सकछा ज्ञेया,

इति । नारदः--

मूर्योस्तमयपर्यन्तं यस्मिन् वारे तु या तिथिः । विद्यते सा त्वखण्डा स्यात् न्यूना चेत् खण्डसंज्ञिता ॥

इति । अत्र मतान्तरमाह-

तिथेः पूर्वार्घे गते सित नक्षत्रममुक्तपूर्वार्घे चेत् बलवत् स्यात्, तथा नक्षत्रस्य पूर्वार्घे गते तिथिबलवती, तयोस्तिथिनक्षत्रयोस्समे सम-मोगे सित तिथिरेव बलवतीति रङ्काद्य आहुः । यदुक्तम्—

> तिथ्यर्घे तु गते ज्ञेया तिथिभुक्तिर्विचक्षणैः । तिथौ हीने विजानीयात् नक्षत्रं बलवत्तमम् ।। नक्षत्रोधे गते चापि तिथिस्स्यात् बलवत्तरा । तिथिनक्षत्रयोभेदे तुल्याधिकबला तिथिः ॥

इति । चराब्देन करणस्यापि स्वपूर्वीर्धे प्राबल्यमस्तीति सूचितम् । तथाचोक्तं—

पूर्वार्धे स्वफलं ददाति करणं धिष्णयं च तहत् तिथिः । इति । अत्रेदमुक्तं तिथीनामखण्डत्वे प्रावल्यमिति केचित् । सखण्डेऽपि स्वपूर्वार्धे प्रावल्यमित्यन्ये । उभयत्रापि तिथिदौर्बल्ये ताराणां प्राव-ल्यम् ।

द्वितर्यानां बलसाम्ये तिथीनामेवेति मतान्तरमाह वृत्तार्धेन—

वळक्षे वर्धिष्णुः प्रभवति हि पक्षे तिथिमयो हिमांशुः क्षीणेऽस्मिन्नुडुबर्लामेति श्रीपतिमतम्॥

वळसे शुक्के पसे वर्षिष्णुः आपूर्यमाणश्चन्द्रः प्रभवति प्रभुः पूर्णो भवतीत्वर्थः । स च तिथिमयः तिथ्यधीनाभिवृद्धिमस्वात् हि यस्मादतश्चनद्रस्य प्रावरुये तद्भिनिर्विकास्तिथयोऽपि प्रवल्लास्स्युरित्यु-पपितिसिद्धम् । वल्लं शुक्के तिथीनामस्ति । अस्मिस्तिथिमये चन्द्रे सीणे सित तिथिदौर्बरुयात्ताराप्रावरुयमिति श्रीपतेर्मतम् । यदुक्तं—

मुक्के पक्षे शीतरिश्मर्वकीयान्
न प्राधान्यं तारकायास्तु तत्र ।
शक्तचा युक्ते विद्यमाने च कान्ते
न स्वातन्त्रपं योषितः कापि दृष्टम् ॥
न खलु बहुलपक्षे शीतरश्मेः प्रभावः
कथितमिह हि ताराविर्यमार्थैः प्रधानम् ।
रितिविकलशरीरे प्रेयिस प्रोषिते वा
प्रभवित खलु कर्तु सर्वकार्याणि योषा ॥

इति । एवं तिथिताराप्रावलयवादीनि मतान्युक्त्वा वारप्रावलयवादिमत-माह वृत्तापरार्धेन---

यथोध्वे विन्दन्ते तिथिकरणयोगर्क्षदिवलाः क्रमाप्तद्वेगुण्यं बलमिति भरद्वाजवचनम् ॥ ४॥

योगाश्च ऋक्षाणि च योगर्काणि, गुणसाम्याद्वलसाम्याच एकप-दोक्तिः, तिथयः करणानि योगर्काणि दिवसाश्च तिथिकरणयो - गर्शदिवसाः ते यथोध्वं क्रमेणासद्वेगुण्यं पूर्वस्मादुत्तरोत्तरं द्विगुणं बलं लभन्ते, इदं भरद्वजस्य मतम् । यदुक्तम्—

तिाथिमेकगुणं प्रहुद्धिगुणं करणं भवेत् । चतुर्गुणं तु नक्षत्रं वारमष्टगुणं बुधाः ॥

इति । इह योगस्तुं न पृथगुक्त इति तस्य नक्षत्रसाम्यात् तत्समं वलित्युक्तम् । अन्ये योगस्य पृथगुपादानिमत्याहुः । यथा—तिथयः करणानि योगा ऋक्षाणि दिवसाश्च ति।धिकरणयोगर्कदिवसाः, ते क्रमात् पूर्वपूर्वस्मात् उत्तरोत्तरं द्विगुणं वलं भजन्त इति । स्वाभिमतं गुरुमतमाह—

तिथितिथिइलयोगवारताराः जगति भवन्ति यथोत्तरं बलिष्ठाः । इति गुरुमतमेव साधु मन्ये विविधमिहास्ति मतं महामुनीनाम् ॥५॥

तिथिकरणयोगवारतारा यथोत्तरं बलाधिका भवन्तीति इदं गुरुमतमेव लोके प्रशस्तिमित्यहं मन्ये । इह अस्मिन् तिथ्यादि-प्राबल्याभिधानेऽपि विविधं महामुनीनां मतमस्ति, तिथ्यादिप्राब-ल्यवादीनि मुनिमतानि बहूनि सन्ति, तानि प्रन्थविस्तरभयात् नेहाभि-धीयन्त इत्यर्थः ॥

अत्र वराहमिहिर:-

तिथिकरणादिनर्सल्यविर्ध-प्रतिचयमाह पराशरः क्रमेण । तिथिरतिबलवान् वदन्ति गर्गाः करणबलाद्दिवसोऽपि भागुरिश्च ॥ दिनकरणबलाङ्गगुर्भवीर्यं बलमुदयस्य जगाद जीवदार्मा । प्रतिविषयबलावलं स्वमेषा-मिति मुनयः कथयन्त्यतिप्रभूताः ॥

इति । एतदुक्तं भवति— तिथिरेवान्येभ्यो बलवानिति गार्ग्यः। करणं बलवदिति नारदः। वारो बलवानिति भरद्वाजादयः। योगो बलवानित्यन्ये। तारा बलवतीति गुरुः प्राह् । एषु गुरुक्तं तारा-याः प्रावल्यमेव युक्तामित्याचार्यस्य मतम्। यतिश्वद्वातिथीनां स्वोक्त्यद्वीषु करणानां स्वकाले योगानां स्ववज्येवटीवाराणां अदि प्रावल्यम्, अन्यत्र दौर्बल्यं तिथ्यादीनां विद्यते। ताराणां तु सर्वत्र प्रावल्यं, अतस्तदेव साध्विति मन्यते। ननु यश्चोदयि कथं तिथ्यादीनां दौर्बल्यं वदिस, दश्चोदिषु तेषामेव प्रावल्यादिति तं प्रत्याह सर्वसिन्धौ—

स्वकालः करणं वारो नक्षत्रं तिथयो प्रहाः । राशयो योगताराश्च क्रभादेतेऽष्ट दुर्बलाः ॥ इति ॥

दर्शस्स्वपादर्वसहितोऽहि कुजार्किवारौ विष्टिः स्थिरं च करणं व्यतिपातयोगाः। नक्षत्रतोऽतिबल्जिनस्तिथिवासरादि-प्राबल्यवादिमतमेषु हि सावकाशम्॥६॥ स्वपार्श्वाभ्यां कृष्णचतुर्दशीशुक्कप्रतिपद्भचां सहितो दर्शः अमावास्यातिथिः दिवा कुजमन्द्वारो विष्टिः स्थिरकरणानि च व्यती - पातपोगाः त्रयश्रकार्धवैधृतसार्पमस्तकसंज्ञा एते तिथ्यादीनां समुदायाश्च-त्वारो नक्षत्रादिप बालेनः । एषु तिथ्यादिसमुदायेषु तिथ्यादिप्रा-बल्यवादिनां मुनीनां मतं सावकारां, नान्यत्रेति तन्मतानामौपस-र्जन्यमुक्तम् । यद्वा तन्मतान्यपि स्वपार्श्वदर्शादिसमुदायचतुष्टयावका-राभिधोननादरणीयानीति ॥

पञ्चाङ्गस्य निसर्गवलमुक्त्वा तत्कालवलमाह—

पश्चाङ्गस्य निसर्गजं बलिमदं वृद्धौ तिथीन्द्रो-स्तिथेः पूर्णं तिद्वकलं क्षये सित तयोरेकाभिवृद्धौ समम् । वारस्यापि तिद्दावीयसहरां योगस्य सूर्यन्दुवत् अस्येन्द्रोरिव वर्षते न दलित श्रेयोऽत्र वीर्यान्वितम् ॥ ७॥

इदम्—उक्तं बलं। तस्य पञ्चाङ्गस्य। निसर्गनं। वक्ष्यमाणं तात्का-लिकमित्यर्थः । तत्र तियस्तद्वलं तिथीन्द्वोरिभवृद्धिकाले पूर्णं नायते, तयोः क्षये सित विकलं—शून्यं, तयोरेकस्याभिवृद्धावन्यस्य क्षये सित निसर्भवलसमेव नाधिकं नापि हीनम् । यदुक्तं सर्वसिन्धौ—

तिथिवृद्धिसयौ शुक्करुष्णपससमा मता ।

इति । ततः शुक्कतिथीनां वृद्धिश्चेत्तद्वलं पूर्णं, क्षयश्चेत् समम् । कृष्णे वृद्धिश्चेत् समन् । क्षयश्चेत् हीनमिति । तिध्यर्धस्यापि तद्वत् । वारस्य स्वस्वामिवीयेवत् । तस्मिन् बलाढचे पूर्णं दुर्वले हीनं बलम् ॥ उक्तं च--

बलप्रधानखेटस्य वारे यत् कर्म सिध्यति । तदेव बलहीनस्य दुःखनापि न सिध्यति ।

इति । योगस्य अर्केन्दुबलसदृशं बल्रम्, यथा सूर्येन्द्रोः द्वयोः प्रावल्ये पूर्णं, दौर्बल्ये शून्यं, तयोरेकस्य प्रावल्ये अन्यस्य दौर्बल्ये समं स्यात् । चन्द्रार्कयोगजन्यत्वात् बल्सदृशं योगवलिमत्युक्तम् । नक्षत्रस्य चन्द्रबलसदृशं बल्लं, चन्द्रे बल्लाक्ष्य तद्वर्धते, दुर्बल्ले निस्गवलसमं स्यात् । न दल्लति न हीयते । नन्वत्र चन्द्रदौर्बल्ये ताराप्रावल्यमिति प्रागुक्तं, अधुना चन्द्रबल्वत्तारावलमिति विरुध्यते । न, आश्रयमेदात्, प्रायजन्मादिताराणां बल्लमुक्तम्, अधुना अश्विन्यादीनामिति । अत्र शुक्ते रुष्णे च ताराया बल्लं पूर्णं सत् शुक्ते चन्द्रस्य पक्षवलेनोपचितं पुनर्वर्धते, रुष्णे तद्मावात् नैसार्गकमेव स्थात् । अतो न दल्लतीत्युक्तम् ।अत्र पञ्चाङ्गे यत्तारादिकं बल्लान्वितं तत् श्लेष्ठम्, यदल्पवलं तद्शुभिनत्यर्थः । एवं नक्षत्रवलान्द्रात्रों कर्म तिथिवलादिवा कर्म कार्यामित रह्णः। उक्तं च—

अथ नक्षत्रिमष्टं स्यात् नेष्टस्तिथिगुणो भवेत् । दृश्यमाने तु शीतांशौ रात्रौ कर्म विधीयते ॥ अथ नेष्टं तु नक्षत्रामिष्टस्तिथिगुणो भवेत् । तदाऽहि कर्म कर्तव्यमित्येवमुशनाऽव्रवीत् ॥

इति । राशियहाणां बलमाह-

वदन्ति पश्चाङ्गसमानमेके लग्नं परे तद्विगुणप्रभावम् ।

षडङ्गतोऽपि प्रबलो यहेन्द्रः सर्वेर्मुनीन्द्रैरविवादमुक्तम् ॥ ८॥

एके—भरहानादयः छग्नं राशि पञ्चाङ्गसमानं बलेनेति शेषः, पञ्चाङ्गसमबल्लियिथः । अपरे—नारदाद्याः पञ्चाङ्गाद्विगुणबल्युक्तमाहुः पञ्चाङ्गस्य यत् समुदितं बल्लं तस्मात् द्विगुणं लग्नस्य बल्माहु-रित्यर्थः । ग्रहः षडङ्गात् प्रबल्लं सर्वमुनिभिरुक्तः समु-दितात् षडङ्गबलादपि ग्रहस्यैवाधिकबल्लमिति सर्वेषां मुनीनां मत-मित्यर्थः । अत्र भरहानः—

> लमं तैः सदशं विद्यात् सर्वेषामधिको महः । महादन्यन्न विद्येत लोकेषु हि शुभाशुभे॥

तै:—तिथ्यादिभिरित्यर्थः । नारदश्य— तिथिरेकगुणो वारो द्विगुणस्त्रिगुणं च भम् । योगश्रतुर्गुणः पश्चगुणं तिथ्यर्भसंज्ञितम् ॥ ततो मुहूर्ते। बलवान् ततो लग्नं बलाधिकम् ।

इति । उक्तं प्रहराश्यादिप्रावल्यं दूषयति-

प्राबल्यमुक्तमृषिभिर्यदिह प्रहादे-रङ्गीकृतेऽत्र पतितोऽयमतिप्रसङ्गः । सद्वारयोगतिथिराशिमुहूर्तयोगात् कार्यं भवदविहितेऽप्युडुनीष्टकार्यम् ॥ ९ ॥

इहाँषीभर्यद्रहराइयादीनां प्रावल्यमुक्तं तदङ्गीकरणे अयम-तिप्रसङ्गः प्राप्त इत्याह सद्घारेति । यदि नक्षत्रात् प्रहराश्या- दयः प्रबलाः तार्हे तस्प्रावल्यात् शुभवारयोगतिथिराशिमात्रयोगादे-वानुक्तेऽपि दुष्टे नक्षत्रे शुभकार्यं कार्यं स्यात् । कते को दोषः? कार्यहानिः स्यात् । स्यादेतत्—अनुक्ततिथिराश्यादिषु कृतस्य कर्मणो हानिः केन वार्यते, तदपवादगुणेरिति चेन्न, नक्षत्रेऽपि तथा किं न स्यादिति, उच्यते, नक्षत्रस्य तिथ्यादिवदपवादगुणो न कश्चिदृश्यत इति अनिष्टमासज्यत एव । तदनिष्टपरिहाराय बहुसं-मताद्राश्यादिशावल्यात् ताराष्ट्रावल्यमेव प्राधान्येन ग्राह्ममित्याह—

वदन्तु कामं वहुधा मुनीन्द्रा ब्रूमो वयं चैतदिहोपपन्नम् । षडङ्गमध्ये प्रबल्धेव तारा प्रहेण तुल्या प्रहतोऽधिका वा ॥ १०॥

स्वस्वमतप्रतिष्ठापनाभिनिविष्टबुद्धयो मुनीन्द्राः कामं भवि-प्यदिनष्टप्रसङ्गं निरूप्य तिथेवीरस्य राशेवी प्रावल्यं वदन्तु। वयं तु ताराचन्द्रमसोः पर्यायप्रावल्यकथनेन तयोवीलसाम्यमनुमन्यमानानां मुनीनामिषप्रायं विज्ञानाना मुक्तमेवेह ब्रूमः। किं तद्युक्तमित्यत्राह— पडङ्गमच्य इति । राश्यादीनां तिथ्यन्तानां घण्णां मध्ये तारा बलवत्येव। अपि तु प्रहेण तुल्यवला प्रहादिधकवला वा। न ततो हीनवलेत्यर्थः। एतदुक्तं भवित—राश्यादिम्यो नक्षत्रस्यैत प्राव-ल्यम्। क्वित् प्रहादिष यथा कृष्णे चन्द्रात्। क्वित् प्रहेण

समबलत्वं स्यात् । अथ षडङ्गात्तारा बलाब्येत्यत्रैतिह्यमाह—

अनिष्टयोगे निश्चि पापवारे सिताष्टमीविष्टियुतेऽपि धातृभे ।

मृगे विलये सगुरूदये कचित् विवाहमाहुर्यहतारकावलात् ॥ ११॥

अनिष्टयोग इह विष्क्रम्भाख्यो नित्ययोगः, पापः—कुजः
तस्य दिनं न त्वकीक्योः, तयोः क्रचित् विधानात्। विष्कम्भयोगे कुजदिने रात्रौ शुक्काष्टम्यां विष्टचां रोहिणीनक्षत्रे मकरल्ये गुरावुद्यति क्रचिहेशे प्रहतारयोरेव बलात् विवाहमाहुः। राज्यादौ
पडक्नेऽनुक्तेऽपि तत्तद्पवादैरदुष्टीभूते विहिततारायां गुरूदेये विवाहं कुर्वन्तीति ताराप्रहयोरेव प्रावल्याभिधानं युक्तम् । नन्वत्र
प्रहोद्यबलात् विवाहो दृष्टः न ताराबलादिति यो मन्यते तं प्रत्याह्—

तिथ्यादिष्वपि मध्यमेषु विबले लग्ने विहीने

गुभैः पाथोनेऽपि विधेरुडुन्युडुबलादृष्टो विवाहः

कचित् । तिथ्यादौ गुभदे गुभोदययुते लग्नेऽपि

काश्चिच्छुभं त्याष्यक्षें न करोति विस्फुटमतस्मर्वत्र ताराबलम् ॥ १२॥

तिथिवारयोगकरणेषु मध्यमेषु । सतां तेषां दौर्बल्यमसतां सापवादलं मध्यमत्वम् । यद्वा विधिनिषेषविज्ञतत्वं मध्यमत्वं विधेरुडुनि—रोहिणीनक्षत्रे। विबल्ले—कालदृष्टिबल्लहीने शुमोद्यरहिते पाथोने—कन्यायां लग्ने उडुबल्लात् उडुबल्लमाश्चित्व क्रिचेह्रेशे विवाहः कृतो दृष्टः । उडुबल्लादिति लयङ्लोपे पश्चमी, एतदुक्तं भवति—कार्तिके कृष्णप्रतिपदि मन्दवारे रात्रौ रोहिण्यां सिद्धयोगे बाल्ल-करणे कन्याल्ये प्रहेषु लग्नास्ताम्यामन्यत्र स्थितेषु विवाहं कु-

र्वन्ति । स च राश्यादीनामै।पसजिन्यात् मध्यमेष्विपि तेषु प्रधानं ताराबलमेवाश्रित्य कृत इत्येवं विधिमुखेन ताराबलप्राधान्यमुक्ता प्रतिषेधमुखेन।पि दर्शयति—तिध्यादाविति । तिध्यादिषु शुमेषु प्रहो व्ययुते लग्नेऽपि त्याज्यनक्षत्रे न कश्चिद्विवाहादि करोति । तथा हि—वैशाखे शुक्कदशम्यां गुरुवारे ध्रुवयोगे गजकरणे दिवा मिथुनलग्ने गुरुद्धयेऽपि पूर्वफल्गुनीनक्षत्रे विवाहं न कुर्वन्ति । स च राश्यादिरप्राधान्यात् तेषु शुभेष्विप प्रतिपिद्धभे न कियत इति तारैव प्रधानम् । अतः सर्वशास्त्रे लोके च ताराबलं विस्फुटं विशेषेण व्यक्तम् ।

अथ यः कश्चिदिह मन्यते तिथ्यादेस्त्याज्यत्वमपनादैर्थथा बाध्यते तथा भस्य किं न स्यादिति । तं प्रत्याह—

यथा निहन्ति प्रवलो गुणोऽन्यः त्याज्यत्वदोषं तिथिवासरादेः । तथैव कश्चित्र हि तारकायाः ततश्च नक्षत्रबलं प्रसिद्धम् ॥ १३॥

अन्यो ग्रहादिसंभूतः प्रवलेडिपवादाख्यो गुणस्तिथिवारा-दीनां त्याज्यदोषं यथा वाधते तथा नक्षत्रस्य त्याज्यत्वदेषवा-धकः कश्चन गुणो न दृश्यत इति । ननु यदि तिथ्यादिव-स्नक्षत्रमप्यप्रधानं तर्हि तद्दोषोडिप्यन्यदोषवत् गुणान्तरेण वाध्यत । न च वाध्यते । अतः तिथ्यादिम्यो नक्षत्रस्येत प्राधान्यं सिद्ध-मिति । यद्यपीह नक्षत्रस्येत प्रावल्यमम्यधायि तथाडिप राश्यादि-प्रावल्यमपि बहुमुनिसंमतं क्रचिदुपयुज्यत इति तेषां विषयिव यन्नक्षत्रबलं मया निगदितं प्राग्नं मुहूर्तेषु तत् क्षेयं नष्टिविचिन्तितादिकथने राशिप्रहाणां बलम् । पश्चाङ्गादिप जातकेष्वतिबलो राशिस्ततोऽपि प्रहो योगास्स्युर्प्रहतोऽधिका धुरघुराराजाधियोगादयः॥

यन्नक्षत्रबलमिह मया स्फुटमुक्तं तन्मुहूर्तेषु प्राह्मं, राश्यश्र प्रहाश्र राशिप्रहाः तेषां बलं नष्टद्रव्याणां विविधचिन्तितानां। आदिशब्दान्मुष्टिगतवस्तूनां च कथने प्राह्मं ज्ञेयम्।

यद्वा ¹नष्टनातकिनोदिचिन्तादिसद्सत्फलकथन इति । अत्र तारायाः प्रावल्यं नेष्यते, राशिय्रहैरेव देशकालद्भव्यगुणादिनिरूपणात्। तेष्वपि संयोगे राशिभ्योऽपि य्रहाणां प्रावल्यम् । संयुक्तराशीनां स्वातन्त्रचेण फलप्रदानायोगात् ॥

> अंशकात् ज्ञायते द्रव्यं देकाणैस्तस्कराः समृताः । राशिभ्यः कालदिग्देशाः ।

इत्यादिकमसंयुक्तराशिविषयम् । ननु जातकेषु सप्ताङ्गेन शुभाशुभिनिद्धपणात् तेषां बलसाम्यं स्यादित्यत्राह—पञ्चाङ्गादपीति, जन्मिन तत्कालात् शुभाशुभिनिद्धपणा जातकम् । तच त्रिविधं— ज्ञातजातकं नष्टजातकं प्रश्नजातकं चेति । तेष्वपि पञ्चाङ्गाद्धा-शिरतिबलः । पञ्चाङ्गेनेह कतिपयगुणमात्रं निद्धप्यते । राशीनां-गुणाः शुभाशुभदशाफलानि च निद्धप्यन्त इति । ततो राशरपि प्रहो बलवान्, स्वातन्त्र्येण फलप्रदानात् । नक्षत्रादिशुभाशुभ-ज्ञापनाच । प्रहादपि योगाश्च नाभसाद्या अधिकाः स्युः, बले-नेति शेषः । अशुभदस्यापि प्रहस्य योगेन शुभप्रदानाद्योगस्यैव

¹ नष्टजातके विनोद्धिन्तायां अत्रादि सदसत्प्रश्नकथन इति.

प्राबल्यम् । उक्तं च—

न तिथिने च नक्षत्रं न लग्नं नापि च ग्रहाः । योगमेव प्रशंसान्त वसिछात्रिपराशराः ॥

इति । श्रहाहुर्वछानां वारर्सयोगादीनामपि योगत्वात् वछाधित्रयं स्यादित्याशङ्कच विशेषणमाह—धुरधुराराजाधियोगादयः इन्दोरुमः यस्थैस्ताराश्रेहर्पुरधुरायोगः । त्रचाद्येरुचस्थै राजयोगः । चन्द्रः छप्राभ्यां षट्मप्तमाष्टमंगैरिभयोगः । एतत् प्रतीकदर्शनम् । आविश्रणात् आश्रयनामसादिसंज्ञाः सर्वे योगा गृह्यन्ते । तेन जातके मुहूर्ते अन्यत्र च राश्यादिभ्यो ग्रहो वछवान् श्रहाद्योगा विशेष्टः । तिथिवारक्षयोगानामपि पञ्चाङ्गात्त्रावरुयं सिद्धम् । तेषाः मन्योन्यसंपाते वछावछमाह—

योगहये विप्रतिषेधयुक्ते वारोद्भवस्तिष्युडुजाह्यलिष्ठः । वारक्षयोगस्तिथिवारयोगात् तेषु त्रिषु हो सहशो वलाह्यो ॥ १५ ॥

प्रागुक्तेषु तिथिवारर्शयोगेषु शुभाशुभाक्ये योगद्धेय विप्रति-षेषयुक्ते तुल्यवलावरोधो विप्रतिषेधः । तेन युक्ते शुभाशुभाक्य योगद्धये युगपत् प्राप्ते सतीत्यर्थः । तिथिनक्षत्रयोगात् वारोक्षवः वारेण अन्यस्य तिथिभस्य वा योगः वारतिथियोगो वारर्क्षयोगो वा बलीयान्, तयोश्च तिथिवारयोगो बलीयानिति सिद्धमेव । तेषु तुल्यव लेषु सदशौ सजातीयौ शुभावशुभौ वा द्वौ भलाज्यौ अन्योऽपि सदश एको दुर्बल इत्थरिः ॥ एतदेव स्पष्टियतुमुदाहरणान्याह—

योगी हो रविजाष्टमीद्वृहिणभेः सिद्धो बला-ढचस्तयोः हो पूर्णागुरुरोहिणीभिरुदितौ नाज्ञा-ह्वयोऽत्राधिकः । स्याद्योगित्रतयं शुभाशुभफलं मैत्रहितीयाबुधैः वीर्याढचावशुभौ शुभोऽत्र विब-लः सर्वत्र चैषा गितिः ॥१६॥

मन्दाष्टमीरे।हिणीभिः द्वौ नाशासिद्धाख्यौ योगौ स्तः । अष्टमीरोहिणीभ्यां नाशाख्यः, मन्दरोहिणीभ्यां सिद्धाख्यः । तयोस्सिद्धो
वारक्षयोगो बलवान् । नाशः तिथ्युखुयोगादु बलः । पूर्णागुरुरोहिणीभिद्धौ सिद्धनाशाख्यौ । गुरुपूर्णाभ्यां सिद्धः । गुरुरोहिणीभ्यां नाशः।
अत्रानयोर्नाशाख्यौ वारक्षयोगोऽधिकबलः । मैत्रदितीयाबुधैः योगः
त्रितयं स्यात् । बुधानूराधाभ्यां सिद्धाख्य एकः शुभः । मैत्राद्धितीः
याभ्यां नाशाख्यः, बुधिद्धितीयाभ्यां दग्धाख्यः इति द्वावशुभौ ।
अत्रैष्वशुभौ बलाढ्यौ शुभो दुर्बलः । अत्र संख्याबाहुल्यादशुः
भयोः प्राबल्यम् । शुभस्य संख्याहीनत्वाद्दौर्बल्यम् । स्यादेतत्—
संख्याबाहुल्यान्न प्राबल्यमिति ।

न संख्याभिः बलं चिन्त्यं गुणदोषेषु सूरभिः।
इति वचनात्। नैतत्सारं, विजातीयगुरुगुणदोषविषयत्वात् प्रतिषेघस्य, येऽत्र सजातिया गुणदोषास्तेषां संख्याबाहुल्यात् प्रावल्यम्। संख्यासाम्ये अत्र वचनात् संयोगितारादिसंख्यावशाचा।
यथा द्वियोगजात् त्रियोगजो बली। यथा रविषष्ठीकृत्तिकाभिः
द्वौ योगौ। रविषष्ठीम्यां नाशाख्यः। रविषष्ठीकातिकाभिवंराख्यः।

43

तयोवरयोगो बलाव्यः, अनुक्ते सर्वत्रेषा गतिर्ज्ञेषा । दिङ्मात्रमिहोदाहः तम् । अनुक्तेषु पञ्चाङ्गयोगेषु सर्वेष्वेतं बलाबलवत्वं द्रष्टव्यमित्यर्थः। अथ राज्यादिबलमाह—

द्रेक्काणमाहुर्भवनाइलिष्ठं ततोंऽशमंशादिप कालहोराम् । एषां निसर्गाइलमेतदस्य क्षयोदयौ स्वामिवलानुरूपौ ॥१७॥

राशेर्द्रेकाणं बिष्ठमाहुः । द्रेकाणात्रवांशं, नवांशात्कालहो-रां बलाव्यां मुन्य आहुः । एतदुक्तं वलं राश्यादीनां निसर्गसिद्धं नैसर्गि-कं बलिस्यर्थः । उक्तं च—

> राशेनिलाढचो द्रेकाणो द्रेकाणादंशको नली। अंशकाद्वलिनी कालहोरा तामेन योजयेत्॥

इति। तत्तद्राश्यादिस्वामिबछवशात् नैसर्गिकस्य क्षयोदयौ ह्यासवृद्धी स्तः। एवं दुर्वछे बलाख्ये राश्यादिनैसर्गिकादिषक्रबलः स्यात्। तस्मिन् दुर्वछे नैसर्गिकाद्धीनबल इत्यर्थः। इह स्वामिबलम्रहणमुपलक्षणं स्थानादिबलस्य। अथ राशिबलानां मतभेदेन परिगणनमभिद्धत् तद-भिधानं प्रतिजानीते—

यत् स्थानदृष्ट्युदयकालमवं च राहोः उक्तं वराहमिहिरेण बलं चतुर्घा । यच्छ्रीपतिश्च तद्धीश्वरवीर्ययुक्तं पश्चप्रकारमवदत्तदिहाभिदध्मः ॥१८॥ स्थाननं दृष्टिनं उदयनं कालनं चेति चतुर्विधं राशे-र्वेलं वराहमिहिरेणोक्तं । श्रीपतिश्च तदेव चतुर्विधं बलं स्वामि-वीर्थेण सह पश्चविधमवदत् । तदुभयमतानुगतं राशिबलमिह शास्त्रे वयमिद्ध्मः ब्रूमः । आस्मिन बहुवचनम् । स्थानादिबलान्याह—

व्योमस्थाश्रतुरङ्कृयो जलचरास्तोये दिपादस्तनौ कीटस्थे निखिलाश्च केन्द्रानिरताः स्युः स्थानवीर्या-न्विताः। वीर्यं दृष्टिभवं ज्ञजीवपतिभिर्दृष्टस्य ल-ग्रस्य तैः युक्तस्योदयजं च शुक्रशशभृद्योगाञ्च कैश्चित्समृतम् ॥१९॥

्रिवा हिपादः पशवो निशायां सन्ध्याद्वये वारिचराः सकीटाः। बळाघिकास्स्यः क्रमशोऽथ पृष्ठ-मूर्घोदयानां निशि वाऽह्नि वीर्यम् ॥२०॥

चतुष्पदमंज्ञा राशयो दशमस्थानगताः । जलचरसंज्ञाश्चतुर्थे, द्विपादो नरसंज्ञाः लग्ने स्थिताः स्थानवीर्ययुताः स्युः । कीटः सप्तमस्थाने बलतान् स्यात् । एते चतुष्पादादिराशयः स्वस्थानेषु दश-मादिषु स्थिताः संपूर्णबलाः । तदनन्तरराशिषट्के अनुपाताप्त-बलाश्च स्युः । अत्र वराहमिहिरः ।

कण्टककेन्द्रचतुष्टयसंज्ञाः सप्तमलग्नचतूर्थखभानाम् । तेषु यथाऽभिहितेषु बलाल्याः कीटनराम्बुचराःपरावश्च ॥ इति । अत्रायमनुपातः — द्विपदादिराशीनां लग्नादिषु रूपं वलं। तत् सप्तमे शून्यं। तन्मध्ये तद्वाशिभावं स्ववलशून्यस्थानभावादिशोध्य शिष्टं षद्भाषिकं चक्रान्निपानितं लितीकत्य चक्राधिलप्तामिज्ञानजनकेः विभाज्य आप्तं बलमिति । अपि च सर्वे चतुष्ट्येऽपि राशयः के न्द्रस्थाः स्थानवीर्ययुक्ताः स्युः। केन्द्रे रूपं वलं। पणपरे अधं। आपोक्तिमे पाद इत्यर्थः। एवं राशीनां दितयं स्थानवलं। तेन द्विपदादीनां लग्नादिषु रूपद्वयं बल्प्। सप्तमे रूपं। दृष्टिवल माह—वीर्यं दृष्टिभवमिति । बुधगुरुस्वपतिभिर्दृष्टस्य लग्नस्य राशेः दृष्टिवलं स्थात्। तच्च लग्नादिराशि दृश्यं परिकल्य ज्ञानिपतीनां गणितानीतदृष्टितुल्यम्। अथ तैर्बुधजीवपतिभिः युक्तस्य राशेक्ट्यमं बलं स्थात्। तच्च तेषामुद्दये रूपम्। सप्तमे न किञ्चत्। मध्ये अनुपाताप्तं भवति। अथ शुक्राक्षीणचन्द्रयोयोगात् उद्यवलं। चकारात्तदृष्टे दृष्टिवलं च स्थादिति केश्चिदुक्तं। तद्वृ

शुभावलोकित पुनस्तदीयदृष्टिपादयुक् ।

इति । ननु प्राप्राशीनां प्रहतनत्रत्वमुक्तम् । इह तु प्रहयोने गक्षणाम्यां प्रावल्यमम्यधायीति विरोधः, न, पूर्वं प्रहयोगेक्ष-णाम्यां राशीनां स्वभाविषयीस एवोक्तः । न तु दौर्व-ल्यमिति । कालबलमाह—द्विपाद्राशयो दिवा मध्याहे बलाल्याः, चतुष्पाद्राशयो निशायां मध्यरात्रे, जलचराः प्राक्सन्ध्यायां, कीटः पश्चिमसन्ध्यायां बलाल्यः । एते द्विपदादिराशयः स्वकाले बलाल्याः । ततः त्रिशद्धरीन्यविष्वन्ने काले दुर्वलाः । तदनन्तरे अ-नुपाताप्तवलाः । यथा द्विपादाशयो मध्याहे स्वप्वलाः, निशीधे व- लहीनाः, तन्मध्ये द्विघ्रोन्नतघटीषञ्चचंशतुल्यवलाः, एवमन्येऽप्यूह्याः । अत्र वराहमिहिरः —

होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्येश्च वीर्योत्कटा केन्द्रस्था द्विपदादयोऽिह निश्चि च प्राप्ते च सन्ध्याद्वये ॥ इति । अथशब्दः प्रकारान्तरारम्भार्थः । पृष्ठोदयानां निश्चि बलम् । मूर्घोदयानामिह । चशब्दोऽनुक्तसमुचयार्थः, तेन मिथुनस्य मूर्घोद-यस्यापि निश्चि बल्लं स्यात् । यत उक्तं संज्ञाध्याये—

> धनुःप्रथमकर्कटौ वृषसृगौ च पृष्ठोदयाः त एव सयमा निशावलभृतः ॥

इति । मीनस्योभयोद्यत्वात् सर्वदा रूपबलवत्तुं सिद्धम् । अत्रानुपातः प्राग्वत्कल्प्यः । इदं च कालबलम् । एवमेतानि स्थानदृष्टचुद्यकालः जनीचत्वबलानि वराहमिहिरसंमतानि—

अथ श्रीपतिसंमतं स्थानवलमाह—

लग्नं लग्नपती बलेन सिहते तत्तुल्यवीर्यं स्मृतं तत्रैवोपचयस्थिते च यदि तद्वीर्योत्कटं जायते। पापारातिविलोकनाद्युदययोः लग्नेश्वरे दुर्बले वीर्ये दृष्ट्युदयोद्भवे च रिहते लग्नं स्मृतं दुर्बलम्॥

लगाधिपे बलाको सित लगं तत्समवीर्यं स्यात् । वक्ष्यमाण-स्वाधिपतिग्रह्बलसदशसङ्घयं बलं प्रागुक्ते लग्नवले योज्यमित्यर्थः । तथा च श्रीपितः—

लग्नस्यापि स्वामिवीये हि वीयेम् ।

अपि च तछम्नं स्वाधिपतावृपचयस्थिते सित वलाधिकं स्यात् । लम्मम्यवं चलावयनं व्यतिरेकसिद्धम् । दोर्बल्यमाह—पापारातीत्यादिना—पापाः स्वस्वामि व्यतिरेकसिद्धम् । दोर्बल्यमाह—पापारातीत्यादिना—पापाः स्वस्वामि व्यतिरिक्ताः । अरातयः स्वस्वामिशत्रवः । तेषां दृष्टचुद्ययोः सतोः स्वाधिपे वर्ष्वल्यमहद्यष्टियोगकते दृष्टचुद्यवले च असित चकारात्का लज्बले च असित राशिर्द्वले भवति । पापदृष्टे तदृष्टिचतुर्मागतुल्यं बलं हीयते । यच्छ्रीपितः—

असाधुना विलोकिते तद्दिणा विवानितम् । इति । रात्रुटष्टे च तद्दत्। युतिदृष्टचोस्तुल्यत्वात् तद्योगे ²विरूपवला-दहीनं स्यात् । स्वाधिषे दुर्वेष्ठे तद्दलहीनम् । तथा च संग्रहे—

> लग्ने नीचारिराशौ स्थितवति विरुची चारिटछे स्वनाथे वर्गस्थे निष्फलास्स्युर्विकलपतिवती स्त्री यथा निर्गतश्रीः॥

इति। ननु प्रहटष्टचुदयामाने तद्वलाभावः सिद्धः । कि पुनर्वचनेनेति, अत्रोच्यते—पापटष्टचादिदौर्वल्योपाधिमतो लप्नस्य द्वामेक्षणादिप्राव-ल्योपाधौ सित मध्यबलत्वम् । तर्सिमश्रासित दौर्बल्यमेव स्यादिति द्यो-तनार्थं होरादिवर्गस्यापि स्वाधिपतिवज्ञात्त्रावल्यम् । नैसर्गिकं तु नारहेनोक्तम् ॥

लमात्तु बलिनी होरा द्रेकाणोऽतिवली ततः ततो नवांशो बलवान् द्वादशांशो बली ततः।

त्रिंशांशो बलनान् तस्मात् वीक्षयेत बलावलम् ॥ इति । स्थानादिबलं तु राशिवत् द्रष्टव्यम् । ननु होरादीनां कथं राशिवत् बलम् । अत्रोच्यते—ननांश्वद्वादशांशानां राशिवत् बलं।

¹ दुर्बलपहरष्टियोगक्षते. ² विरूपबलं पादहीनं,

होरात्रचंशित्रंशांशानां ¹राशिनिबन्धनाभावात् स्वस्वामिबलमेव श्राह्मम्, अत्र केचित् षड्वर्गे नवांशोमव बलाधिकमाहुः । एवं षडङ्गबलमाभिधाय शहबलमाह —

मन्दभूमिसुतविद्धुरूशनश्चन्द्रचण्डमहसां निस-र्गजम् । अस्ति वीर्यमधिकाधिकं क्रमात् वीर्यवृ-द्ययुपचयावधिस्तु तत् ॥२२॥

मन्दादिसूर्यान्तानां ऋमेणोत्तरे।त्तरमधिकं बलमस्ति। तच रूप-सप्तांशतुल्यं, मन्द्स्य तावदेव । कुजस्य तावदिधकमित्यादि, तथा च श्रीपतिः—

मन्दावनीसूनुशशाङ्कपुत्रा वागीशसूर्येन्दुदिवाकराणाम् ।
एकोत्तरं रूपमगैर्विभक्तं नैसर्गिकं वीर्यमुदाहरन्ति ॥
तन्नैसर्गिकं बलं तेषां चेष्टादेवीयस्य वृद्धेहासस्य च अवधिभूतं,
तात्कालिकं चेष्टादि बलं नैसर्गिकाद्वधेते । ततो हसति चेल्यथेः ।
बलसङ्ख्यापरिमाणे प्राह—

नैसर्गिकादुपरि चेष्टितकालहिष्दक्-स्थानोद्भवानि विहगस्य बलानि पश्च । चत्वारि पूर्वमुदितानि बलस्य पादाः संपूर्णमन्यदपरे बलसाम्यमाहुः ॥२३॥

नमस्य(१) ²निसर्गबलमविष्ठतुल्यं। ततः परं चेष्टाकालदृष्टिदि-क्स्थानजानि बलानि पञ्च स्युः। तानि नैसर्गिकेण सह पड्बलानि। तथा च श्रीपतिः——

तत्स्थानदिकालनिसर्गचेष्टादरमेदशून्यं कथयाम्यरोषम् ।

¹ त्रिशांशानां ताराबलतः राशि. ² निसर्गबलमवधीकृत्य.

इति । पूर्वमुक्तान्याद्यानि चेष्टाकालदृष्टिदिग्वलानि चत्वारि प्रह्वलस्य पादाः — पादवलानि । अन्यत् स्थानवलं संपूर्ण — पूर्णवलिमे स्थां । चेष्टादेरेकैकस्य सद्भावे नैसर्गिकस्य एकैकपादाभिवृद्धचा अभिधानात् तानि वलं पादा इत्युक्तानि । स्थानवलं तु वलवृद्धिः संपादकतया पूर्णिमित्युक्तं । तच्च परस्ताद्वस्थते, अपरे वराहिमिहिः राद्यः । वलानां साम्यमिविशेषं सर्वाणि वलान्यविशेषतः समान्याहुः । अथ वा अपरे श्रीपत्याद्यः अनुपातिसद्धस्य गाणितानीतेन बलेन सादृश्यं । तत्सदृशं वलमाहुरित्यर्थः । चेष्टावलमाह—

अस्त्युत्तरिमन्नयनेऽपि भानोः पक्षे सिते चेष्टि-तवीर्यमिन्दोः। रणे जयादक्रगतेदशशाङ्कयोगेन वा स्फीतरुचौ ग्रहाणाम् ॥२४॥

भानोरुत्तरायणे राशिषट्क एव चेष्टावलं । चन्द्रस्य ग्रुळपक्ष एव । तयेविक्रगत्याद्ययोगात्ताराम्रहाणां युद्धे विजयाद्वक्रगमनाचन्द्र-समागमाद्वाऽपि फलतेजसा वा चेष्टावलमस्ति । अपिशब्दाचन्द्रादी-नामप्ययनजं बलमास्ति । अत्र वराहमिहिरः—

उदगयने रिवशीतमयूखों वक्तसमागमगाः परिशेषाः ।
विपुलकरा युपि चोत्तरिक्स्थाः चेष्टितवीर्ययुताः परिकल्प्याः॥
इति । अत्र केचिदनुपातन्यायेन गणितमाहुः । यथा सायनां-शाहूहात् क्रान्तिमानीय परमापक्रमे तामुत्तरां स्वं दक्षिणमुत्तरामृणं कृत्वा इन्द्वारैईत्वा आसमयनवलं सूर्यारगुरुशुक्राणां स्यात् । चन्द्रमन्दयोः क्रान्ति परमापक्रमे याम्ये स्वमुदगृणं इतस्य सदा धनं कृत्वा प्राग्वदाप्तमयनवलं तदार्के द्विगुणीकार्यं, चन्द्रादर्कं विशोध्य षड्भाधिकं चर्कानिपात्म कलीकृत्म ज्ञानजनकेहैं(ता)तं आप्तं बल पक्षवलं । तच द्विष्टं कार्यम् । अत्र श्रीपतिः—

द्विन्नं भानोरयनजबलं पक्षवीर्यं तथेन्दोः । इति । कुजादीनां जयाजयौ योगकाले वेदितवयौ । तछक्षण-मुक्तं वराहमिहिरेण—

> दक्षिणदिवस्थः परुषो वेपथुरप्राप्य सिन्नवृते।ऽणुः अधिरुद्धो विकृतो निष्प्रमो विवर्णश्च यस्स जितः । उक्तविपरीतलक्षणसंपन्नो जययुतो विनिर्दिष्टः विपुलस्मिग्यो द्युतिमान् दक्षिणदिवस्थोऽपि विजययुक्तः ॥

इति । शुक्रस्य जय एव । यदुक्तं सूर्येसिद्धान्ते-

उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भागवः प्रायशो जयी ।

इति । योगिनौ प्रहो समिलिप्तीक्रिय तथोर्विक्षेपावानीय तथोर्दिक्साम्ये ¹ अन्तरिद्भोगेद्योगो विम्बान्तरं स्यात्, तात्कालिकयोस्तयोः स्थानिदक्दक्कालबलानि पृथक् संपिण्ड्य तदन्तरं विम्बान्तरेण ह्वा आसं विजयिनो बलम् । विजितस्य बलहानिः
वक्रे तु स्फुटमध्यमान्तरदळसंस्कृतात् स्वशिघोचात् प्रहं विशोध्य
शिष्टं लिप्तीकृत्य ज्ञानजनकैराप्तं बलं रूपाधिकं रूपादिशुद्धं बलं ।
समागमे चन्द्रग्रहयोरासित्तमतोविम्बान्तरमुक्तवत् प्रसाध्य तेन तयोः
स्थानादिबलपिण्डान्तरं ह्वा आप्तग्रहस्य बलं, वक्रायुद्धवेऽपि विपुलतेजस्त्वे रूपं बलम् । कालबलमाह—

वीर्यं व्युत्क्रमवृद्धिमत्समयजं स्वैः कालहोरा-दिनैः मासाब्दैरथ पक्षयोर्बलयुताः सन्तो प्रहाश्च

¹ अन्तरं दिग्मेदे योगो विवान्तरं.